१०

शतक · सप्ततिका · कषायप्राभृत · सत्कर्मप्राभृत · कर्मप्रकृति

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

मूल-शब्दार्थ एवं विवेचन युक्त

हिन्दी व्याख्याकार

मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज

योगोपयोगमार्गणा · बन्धक · बन्धव्य · बन्धहेतु · बन्धविधि

संपादक - देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

[सप्ततिका-प्ररूपणा अधिकार]

(मूल, शब्दार्थ, विवेचन युक्त)

हिन्दी व्याख्याकार

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी

श्री मिश्रीमल जी महाराज

दिशा-निदेशक

मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी म० 'रजत'

सम्प्रेरक

मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

सम्पादक

देवकुमार जैन

प्रकाशक

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत
पंचसंग्रह (१०)
(सप्ततिका-प्ररूपणा अधिकार)

☐ हिन्दी व्याख्याकार
स्व० मरुधरकेसरी प्रवर्तक मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

☐ दिशा निदेशक
मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी म० 'रजत'

☐ संयोजक-संप्रेरक
मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

☐ सम्पादक
देवकुमार जैन

☐ प्राप्तिस्थान
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

☐ प्रथमावृत्ति
वि० सं० २०४२ पौष; जनवरी १९८६
[गुरुदेवश्री की द्वितीय पुण्य तिथि]

☐ मूल्य
लागत से अल्पमूल्य २०/- बीस रुपया सिर्फ

☐ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निदेशन में
शक्ति प्रिंटर्स, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जैनदर्शन का मर्म समझना हो तो 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अत्यावश्यक है। कर्मसिद्धान्त का सर्वांगीण तथा प्रामाणिक विवेचन 'कर्मग्रन्थ' (छह भाग) में बहुत ही विशद रूप से हुआ है, जिनका प्रकाशन करने का गौरव हमारी समिति को प्राप्त हुआ। कर्मग्रन्थ के प्रकाशन से कर्मसाहित्य के जिज्ञासुओं को बहुत लाभ हुआ तथा अनेक क्षेत्रों से आज उनकी मांग बराबर आ रही है।

कर्मग्रन्थ की भाँति ही 'पंचसंग्रह' ग्रन्थ भी जैन कर्मसाहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें भी विस्तारपूर्वक कर्म-सिद्धान्त के समस्त अंगों का विवेचन हुआ है।

पूज्य गुरुदेव श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमल जी महाराज जैनदर्शन के प्रौढ़ विद्वान और सुन्दर विवेचनकार थे। उनकी प्रतिभा अद्‌भुत थी, ज्ञान की तीव्र रुचि अनुकरणीय थी। समाज में ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अत्यधिक रुचि रखते थे। यह गुरुदेवश्री के विद्यानुराग का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि इतनी वृद्ध अवस्था में भी पंचसंग्रह जैसे जटिल और विशाल ग्रन्थ की व्याख्या, विवेचन एवं प्रकाशन का अद्‌भुत साहसिक निर्णय उन्होंने किया और इस कार्य को सम्पन्न करने की समस्त व्यवस्था भी करवाई।

जैनदर्शन एवं कर्मसिद्धान्त के विशिष्ट अभ्यासी श्री देवकुमार जी जैन ने गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में इस ग्रन्थ का सम्पादन कर प्रस्तुत किया है। इसके प्रकाशन हेतु गुरुदेवश्री ने प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को जिम्मेदारी सौंपी और वि० सं० २०३९ आश्विन मास में इसका प्रकाशन-मुद्रण प्रारम्भ कर दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। गुरुदेवश्री ने श्री सुराना जी को दायित्व सौंपते हुए फरमाया —'मेरे शरीर का कोई भी भरोसा नहीं है, इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर लो।' उस समय यह बात सामान्य लग रही थी। किसे ज्ञात था कि गुरुदेवश्री हमें इतनी जल्दी छोड़कर चले जायेंगे। किंतु क्रूर काल की विडम्बना देखिये कि ग्रन्थ का प्रकाशन चालू ही हुआ था कि १७ जनवरी १९८४ को पूज्य गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से सर्वत्र एक स्तब्धता व रिक्तता-सी छा गई। गुरुदेव का व्यापक प्रभाव समूचे संघ पर था और उनकी दिवंगति से समूचा श्रमणसंघ ही अपूरणीय क्षति अनुभव करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस महाकाय ग्रन्थ पर इतना श्रम किया और जिसके प्रकाशन की भावना लिये ही चले गये, वह ग्रन्थ अब दस भागों में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रधान शिष्य मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी महाराज के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो गया है, यह प्रसन्नता का विषय है। श्रीयुत सुराना जी एवं श्री देवकुमार जी जैन ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन-मुद्रण सम्बन्धी सभी दायित्व निभाया है और इसे शीघ्र ही पूर्ण कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया, यह अतीव आनन्द का विषय है।

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान अपने कार्यक्रम में इस ग्रन्थ को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करवाने में प्रयत्नशील रहा है।

आशा है, जिज्ञासु पाठक लाभान्वित होंगे।

मन्त्री

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान

जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

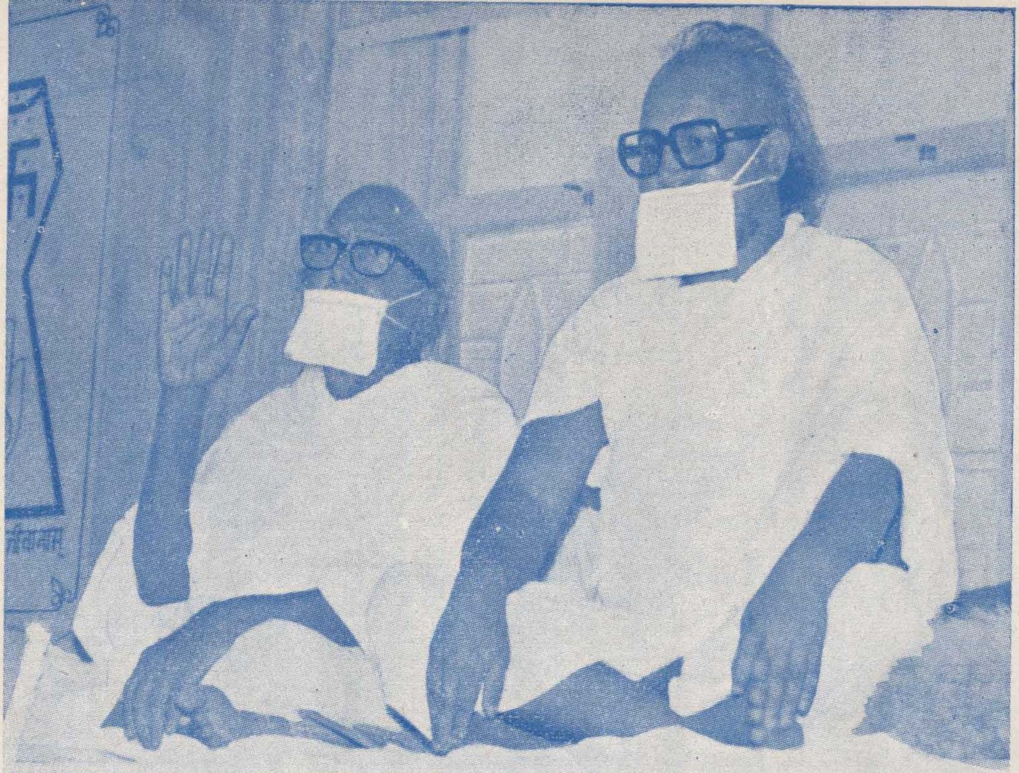

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरूदेव
श्री मिश्रीमल जी महाराज

विद्याभिलाषी श्री सुकन मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसंघ के भीष्म-पितामह

श्रमणसूर्य स्व० गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

स्थानकवासी जैन परम्परा के ५०० वर्षों के इतिहास में कुछ ही ऐसे गिने-चुने महापुरुष हुए हैं जिनका विराट व्यक्तित्व अनन्त-असीम नभोमण्डल की भांति व्यापक और सीमातीत रहा हो। जिनके उपकारों से न सिर्फ स्थानकवासी जैन, न सिर्फ श्वेताम्बर जैन, न सिर्फ जैन किन्तु जैन-अजैन, बालक-वृद्ध, नारी-पुरुष, श्रमण-श्रमणी सभी उपकृत हुए हैं और सब उस महान् विराट व्यक्तित्व की शीतल छाया से लाभान्वित भी हुए हैं। ऐसे ही एक आकाशीय व्यक्तित्व का नाम है श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज !

पता नहीं वे पूर्वजन्म की क्या अखूट पुण्याई लेकर आये थे कि बाल सूर्य की भांति निरन्तर तेज-प्रताप-प्रभाव-यश और सफलता की तेजस्विता, प्रभास्वरता से बढ़ते ही गये, किन्तु उनके जीवन की कुछ विलक्षणता यही है कि सूर्य मध्यान्ह बाद क्षीण होने लगता है, किन्तु यह श्रमणसूर्य जीवन के मध्यान्होत्तर काल में अधिक-अधिक दीप्त होता रहा, ज्यों-ज्यों यौवन की नदी बुढ़ापे के सागर की ओर बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका प्रवाह तेज होता रहा, उसकी धारा विशाल और विशालतम होती गई, सीमाएँ व्यापक बनती गईं, प्रभाव-प्रवाह सौ-सौ धाराएँ बनकर गांव-नगर-वन-उपवन सभी को तृप्त-परितृप्त करता गया। यह सूर्य डूबने की अन्तिम घड़ी, अंतिम क्षण तक तेज से दीप्त रहा, प्रभाव से प्रचण्ड रहा और उसकी किरणों का विस्तार अनन्त-असीम गगन के दिक्कोणों के छूता रहा।

जैसे लड्डू का प्रत्येक दाना मीठा होता है, अंगूर का प्रत्येक अंश मधुर होता है, इसी प्रकार गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा। उनके जीवन-सागर की गहराई में उतरकर गोता लगाने से गुणों की विविध बहुमूल्य मणियां हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव जीवन का ऐसा कौनसा गुण है जो इस महापुरुष में नहीं था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्‌भुत नेतृत्व क्षमता, संघ-समाज की संरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण उनके व्यक्तित्व सागर में छिपे थे। उनकी गणना करना असंभव नहीं तो दुःसंभव अवश्य ही है। महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दों में—

कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्नन् रत्नराशेः

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचालें खाकर बाहर भूमि पर गिरी समुद्र की असीम अगणित मणियां सामने दीखती जरूर हैं, किन्तु कोई उनकी गणना नहीं कर सकता, इसी प्रकार महापुरुषों के गुण भी दीखते हुए गिनती से बाहर होते हैं।

जीवन रेखाएँ

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० सं० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर में हुआ।

पांच वर्ष की आयु में ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्ष की अवस्था में भयंकर बीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरुदेव श्री मानमलजी म. एवं स्व. गुरुदेव श्री बुधमलजी म. ने मंगलपाठ सुनाया और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। काल का ग्रास बनते-बनते बच गये।

गुरुदेव के इस अद्‌भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की असीम श्रद्धा उमड़ आई। उनका शिष्य बनने की तीव्र उत्कंठा जग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ी। इसी बीच गुरुदेवश्री मानमलजी म. का वि. सं. १९७४, माघ वदी ७ को जोधपुर में स्वर्गवास हो गया। वि. सं० १९७५ अक्षय तृतीया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलों से आपने दीक्षारत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बड़ी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति अद्भुत थी। छोटी उम्र में ही आगम, थोकड़े, संस्कृत, प्राकृत, गणित, ज्योतिष काव्य, छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि विविध विषयों का अधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और प्रभावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते गये और यों सहज ही आपका वर्चस्व, तेजस्व बढ़ता गया।

वि. सं० १९८५ पौष बदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म. का स्वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की सप्रदाय का समस्त दायित्व आपश्री के कंधों पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो सर्वथा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त संप्रदाय-परम्परा को सदा विकासोन्मुख और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानांगसूत्रवर्णित चार शिष्यों (पुत्रों) में आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य ही कहा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना बढ़ाता रहता है।

वि.सं. १९९३, लोंकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरुधर-केसरी पद से विभूषित किया गया। वास्तव में ही आपकी निर्भीकता और क्रान्तिकारी सिंह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप ही थीं।

स्थानकवासी जैन समाज की एकता और संगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसंघ के इतिहास में सदा अमर रहेंगे। समय-समय पर टूटती कड़ियाँ जोड़ना, संघ पर आये संकटों को दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, संत-सतियों की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर में उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री की ही क्षमता का नमूना है कि बृहत श्रमणसंघ का निर्माण हुआ, बिखरे घटक एक हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि आपने संगठन और एकता के साथ कभी सौदेबाजी नहीं की। स्वयं सब कुछ होते हुए भी सदा ही पदमोह से दूर रहे। श्रमणसंघ का पदवी-रहित नेतृत्व आपश्री ने किया और जब सभी का पद-ग्रहण के लिए आग्रह हुआ तो आपश्री ने उस नेतृत्व चादर को अपने हाथों से आचार्य सम्राट (उस समय उपाचार्य) श्री आनन्दऋषिजी महाराज को ओढ़ा दी। यह है आपश्री की त्याग व निस्पृहता की वृत्ति।

कठोर सत्य सदा कटु होता है। आपश्री प्रारम्भ से ही निर्भीक वक्ता, स्पष्ट चिन्तक और स्पष्टवादी रहे हैं। सत्य और नियम के साथ आपने कभी समझौता नहीं किया, भले ही वर्षों से साथ रहे अपने कहलाने वाले साथी भी साथ छोड़कर चले गये; पर आपने सदा ही संगठन और सत्य का पक्ष लिया। एकता के लिए आपश्री के अगणित बलिदान श्रमणसंघ के गौरव को युग-युग तक बढ़ाते रहेंगे।

संगठन के बाद आपश्री की अभिरुचि काव्य, साहित्य, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में बढ़ती रही है। आपश्री की बहुमुखी प्रतिभा से प्रसूत सैंकड़ों काव्य, हजारों पद छन्द आज सरस्वती के शृंगार बने हुए हैं। जैन राम यशोरसायन, जैन पांडव यशोरसायन जैसे महाकाव्यों की रचना, हजारों कवित्त, स्तवन की सर्जना आपकी काव्यप्रतिभा के बेजोड़ उदाहरण हैं। आपश्री की आशुकवि-रत्न की पदवी स्वयं में सार्थक है।

कर्मग्रन्थ (छह भाग) जैसे विशाल गम्भीर ग्रन्थ पर आपश्री के निदेशन में व्याख्या, विवेचन और प्रकाशन हुआ जो स्वयं में ही एक अनूठा कार्य है। आज जैनदर्शन और कर्मसिद्धान्त के सैंकड़ों अध्येता उनसे लाभ उठा रहे हैं। आपश्री के सान्निध्य में ही पंचसंग्रह (दस भाग) जैसे विशालकाय कर्मसिद्धान्त के अतीव गहन ग्रन्थ का सम्पादन, विवेचन और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में आपश्री की अनुपस्थिति में आपश्री के सुयोग्य शिष्य श्री सुकनमुनि जी के निदेशन में सम्पन्न हो गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन, जैन उपन्यास आदि की आपश्री की पुस्तकें भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। लगभग ६-७ हजार पृष्ठ से अधिक परिमाण में आप श्री का साहित्य आँका जाता है।

शिक्षा-क्षेत्र में आपश्री की दूरदर्शिता जैन समाज के लिये वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई। जिस प्रकार महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में एक नई क्रान्ति—नया दिशादर्शन देकर कुछ अमर स्थापनाएँ की हैं, स्थानकवासी जैन समाज के शिक्षा क्षेत्र में आपको भी स्थानकवासी जगत का 'मालवीय' कह सकते हैं। लोकाशाह गुरुकुल (सादड़ी), राणावास की शिक्षा संस्थाएँ, जयतारण आदि के छात्रावास तथा अनेक स्थानों पर स्थापित पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन संस्थाएं शिक्षा और साहित्य-सेवा के क्षेत्र में आपश्री की अमर कीर्ति गाथा गा रही हैं।

लोक-सेवा के क्षेत्र में भी मरुधरकेसरी जी महाराज भामाशाह और खेमा देदराणी की शुभ परम्पराओं को जीवित रखे हुए थे। फर्क यही है कि वे स्वयं धनपति थे, अपने धन को दान देकर उन्होंने राष्ट्र एवं समाज सेवा की, आप एक अकिंचन श्रमण थे, अतः आपश्री ने धन-पतियों को प्रेरणा, कर्तव्य-बोध और मार्गदर्शन देकर मरुधरा के गांव-गांव, नगर-नगर में सेवाभावी संस्थाओं का, सेवात्मक प्रवृत्तियों का व्यापक जाल बिछा दिया।

आपश्री की उदारता की गाथा भी सैकड़ों व्यक्तियों के मुख से सुनी जा सकती है। किन्हीं भी संत, सतियों को किसी वस्तु की, उप-करण आदि की आवश्यकता होती तो आपश्री निःसंकोच, बिना किसी भेदभाव के उनको सहयोग प्रदान करते और अनुकूल साधन-स मग्री की व्यवस्था कराते। साथ ही जहाँ भी पधारते वहां कोई रुग्ण, असहाय, अपाहिज, जरूरतमन्द गृहस्थ भी (भले वह किसी वर्ण, समाज का हो) आपश्री के चरणों में पहुंच जाता तो आपश्री उसकी दयनीयता से द्रवित हो जाते और तत्काल समाज के समर्थ व्यक्तियों द्वारा उसकी उपयुक्त व्यवस्था करा देते। इसी कारण गांव-गांव में किसान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्हार, ब्राह्मण, सुनार, माली आदि सभी कौम के व्यक्ति आपश्री को राजा कर्ण का अवतार मानने लग गये और आपश्री के प्रति श्रद्धावनत रहते। यही सच्चे संत की पहचान है, जो किसी भी भेदभाव के बिना मानव मात्र की सेवा में रुचि रखे, जीव मात्र के प्रति करुणाशील रहे।

इस प्रकार त्याग, सेवा, संगठन, साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में सतत प्रवाहशील उस अजर-अमर यशोधारा में अवगाहन करने से हमें मरुधरकेसरी जी म० के व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट अनुभूतियां होती हैं कि कितना विराट्, उदार, व्यापक और महान था वह व्यक्तित्व !

श्रमणसंघ और मरुधरा के उस महान संत की छत्र-छाया की हमें आज बहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु भाग्य की विडम्बना ही है कि विगत १७ जनवरी १९८४, वि० सं० २०४०, पौष शुदि १४, मंगलवार को वह दिव्यज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती हुई इस धराधाम से उठकर अनन्त असीम में लीन हो गयी थी।

पूज्य मरुधरकेसरी जी के स्वर्गवास का उस दिन का दृश्य, शवयात्रा में उपस्थित अगणित जनसमुद्र का चित्र आज भी लोगों की स्मृति में है और शायद शताब्दियों तक इतिहास का कीर्तिमान बनकर रहेगा। जैतारण के इतिहास में क्या, संभवतः राजस्थान के इतिहास में ही किसी सन्त का महाप्रयाण और उस पर इतना अपार जन-समूह (सभी कौमों और सभी वर्ण के) उपस्थित होना, यह पहली घटना थी। कहते हैं, लगभग ७५ हजार की अपार जनमेदिनी से संकुल शवयात्रा का वह जलूस लगभग ३ किलोमीटर लम्बा था, जिसमें लगभग २० हजार तो आस-पास व गांवों के किसान बन्धु ही थे जो अपने ट्रेक्टरों, बैलगाड़ियों आदि पर चढ़कर आये थे। इस प्रकार उस महापुरुष का जीवन जितना व्यापक और विराट रहा उससे भी अधिक व्यापक और श्रद्धा परिपूर्ण रहा उसका महाप्रयाण !

उस दिव्य पुरुष के श्रीचरणों में शत-शत वन्दन !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

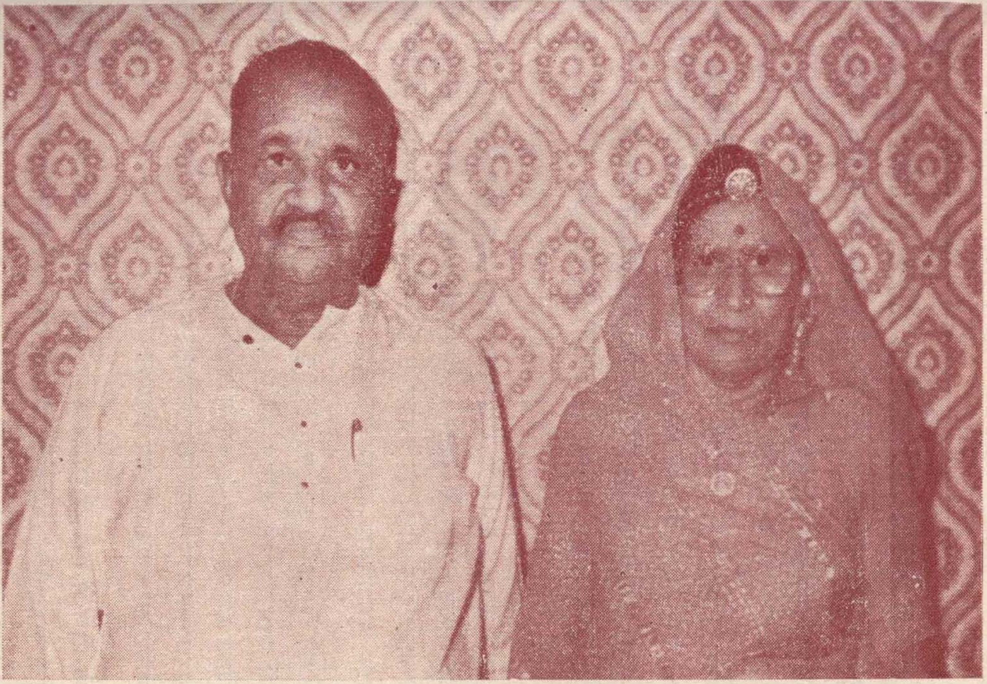

समाजरत्न सेठ श्री बादलचन्द जी सा. कांकरिया

श्राविकारत्न धर्मशीला सौ. बादामकुंवर बाई कांकरिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन समाज के चमकते सितारे, धर्मनिष्ठ, समाज रत्न,
पूज्य गुरुदेव श्री मरुधर केसरी जी म० सा० के अनन्य भक्त

श्री बादलचन्द जी सा० कांकरिया

सुडौल बदन, लम्बा कद, हंसमुख, राजसी दमक, साफे के खिंचे हुए पेच, वाणी में ओज और बात के धनी सेठ सा० श्री बादलचन्दजी कांकरिया उन चमकते हुए सितारों में से एक हैं जो विकास के क्षेत्र में धरती से उठे और आसमान को छूकर रहे। जीवन में संघर्षों के साथ खेले और हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की।

आपका जन्म संवत् १९८१ में राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में प्रसिद्ध पीपाड़ सिटी के निकट चौकड़ीकला में हुआ। पिता श्री हस्तीमलजी कांकरिया की गोद में आपने बहुत कुछ सीखा। बचपन से ही आप में खानदानी सुसंस्कार पड़े हैं। आपका शुभ विवाह बादामकंवर बाई जी से हुआ।

साधारण सी शिक्षा के बाद सन् १९६३ में आप मद्रास पधारे एवं इन्श्योरेन्स कम्पनी में साधारण सी सर्विस की। अपनी प्रखर बुद्धि, उच्च शालीन व्यवहार, विशिष्ट सम्पर्क तथा मेहनत और ईमानदारी से कार्य करते रहे। भाग्य ने भी पूरा-पूरा साथ दिया और सन् १९८४ में आपने नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी में मैनेजर का पद प्राप्त कर लिया।

हजारों के बीच में एक ही व्यक्तित्व के धनी श्री कांकरिया जी ने जीवन में भारी उतार-चढ़ाव देखे, पर कभी भी हिम्मत नहीं हारी। आगे ही बढ़ते रहे। धर्म का रंग रग-रग में समाया हुआ था। श्रमणसूर्य मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म० सा० के प्रति आपकी पूरी आस्था एवं निष्ठा रही है। सम्पूर्ण परिवार गुरुदेव श्री का अनन्य भक्त है एवं गुरुदेव श्री के संकेत मात्र पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये सदैव आगे रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप सदैव ही कहते रहते हैं कि आज जो कुछ भी हम हैं, वह सब पूज्य गुरुदेव श्री का ही प्रताप है।

पूज्य गुरुदेव श्री के सान्निध्य में आपने सर्वप्रथम पाली स्थानक में सत्तावन हजार (५७ हजार) रुपये भेंट किये। मेडतासिटी में आचार्य रघुनाथ चतुर्दश चातुर्मास स्मृति भवन में हाल बनाने हेतु एक लाख, ग्यारह हजार, एक सौ ग्यारह रुपये (१ लाख ११ हजार १ सौ ११ रु०) भेंट कर भवन निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बिलाड़ा चिकित्सालय को पच्चीस हजार रुपये (२५ हजार रुपयों) का योगदान दिया।

जोधपुर के विशाल महावीर भवन का उद्घाटन आपके ही कर-कमलों से हुआ है। इस भवन निर्माण में एक लाख एक हजार रुपयों (१ लाख १ हजार रु०) का महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मद्रास जैन कॉलेज में इक्कीस हजार (२१ हजार) व वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत पर ग्यारह हजार रुपये (११ हजार) रुपयों का योगदान दिया है।

इनके अतिरिक्त छोटी-मोटी राशियाँ तो सदैव ही स्थान-स्थान पर अर्पित करते रहते हैं। आपके यहाँ से सहायता की आशा लेकर आने वाला कभी निराश नहीं जाता।

'पुण्यवान के पग-पग नव निधान' कहावत के अनुसार आपको सुयोग्य, होनहार एवं आज्ञाकारी पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई। श्री शांतिलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं और बंगलौर में व्यवसाय कर रहे हैं।

श्री गौतमचन्दजी आपके द्वितीय प्रतिभाशाली सुपुत्र हैं। आपका मद्रास में भारी कारोबार व वर्चस्व है। अभी जयतारण में मरुधर केसरी जी के प्रथम स्मृति दिवस पर आपने अपने साथियों के साथ दो लाख से भी ऊपर की बोलियां छुड़ाकर समाधि स्थल पर कलश चढ़ाया है। आप धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत, गुरुदेव श्री के अगाध श्रद्धालु भक्त, सेवाभावी होनहार नवयुवक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री उत्तमचन्द जी तृतीय सुपुत्र हैं। ये भी पिताश्री के कार्यों में पूरा-पूरा योगदान देते हैं।

आपके चार पुत्रियाँ हैं जिनकी ससुराल मद्रास में ही है।

आपका स्वयं का व्यक्तित्व ही आपका परिचय है। आपका निजी प्रभाव एवं ओज ही इतना प्रखर है कि आप जहाँ भी खड़े हो जाते हैं वहाँ हर समस्या आसानी से हल हो जाती है। धार्मिक साधना, सामायिक एवं दयादान आदि आपका नित्य का कार्यक्रम हैं। हजारों में स्पष्ट एवं निष्पक्ष भाव से बोलना, सत्य पर डट जाना आपकी विशेषता रही है। सचमुच में आप समाज के एक स्तम्भ हैं, धर्मनिष्ठ श्रावक एवं प्रतिभाशाली श्रीमंत हैं।

वर्तमान में स्व० पूज्य गुरुदेव श्री मिश्रीमलजी म० सा० के शिष्य एवं आज्ञानुवर्ती मरुधरारत्न श्री रूपचन्दजी म० सा० 'रजत' एवं मरुधरा भूषण, पं० रत्न श्री सुकनमलजी म० सा० पर आपकी पूरी निष्ठा है और हर मौके पर आपकी उपस्थिति अनिवार्यतः रही है एवं उनके ही प्रशंसनीय मार्गदर्शन से कार्यरत हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में आपकी रुचि बढ़ती रहे, समाज में आपका योगदान प्रगति लाये, आपकी भावी पीढ़ी आपका अनुसरण कर सोने में सुहागा भरे, आपकी आस्था, निष्ठा जीवन में और अधिक प्रकाश लाये, आप सदैव स्वस्थ एवं दीर्घायु हो यही हमारी हार्दिक मंगल कामना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

'पंचसंग्रह' ग्रन्थ का यह सप्ततिका नामक अन्तिम अधिकार है। 'पंचसंग्रह' जैन कर्मसिद्धान्त की विवेचक कृति है। इसके रचयिता श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तर हैं।

उपलब्ध प्रमाणों से यह तो स्पष्ट है कि वार्तमानिक कर्म साहित्य के आलेखन के आधार अग्रायणीय पूर्व और कर्मप्रवाद पूर्व हैं। अग्रायणीय पूर्व की पांचवी वस्तु के चौथे प्राभृत में कार्मिक विवेचन 'किया गया है और नामानुरूप कर्मप्रवाद पूर्व में तो मुख्य रूप से कर्म सिद्धान्त का ही वर्णन है। लेकिन काल-प्रभाव तथा बौद्धिक प्रगल्भता के अभाव में पूर्वज्ञान एवं पूर्वज्ञों की परंपरा का विच्छेद हो जाने से पूर्वगत ज्ञाननिधि भी विलुप्त सी हो गई। जिससे वर्तमान में उपलब्ध कर्म साहित्य आकर और प्राकरणिक इन दो रूपों में विभाजित हो गया।

इन दो रूपों में से आकर ग्रन्थों में पूर्वोद्धृत यत्किंचित् अंश समाहित है और प्रकरण ग्रन्थ तृतीय साहित्य उद्धार के समय लिखे गये पाठकों को सुगमता से बोध कराने वाले अपने अधिकृत विषय के विवेचक हैं। आकर ग्रन्थों के रूप में शतक, सप्ततिका, कषायप्राभृत, सत्कर्म प्राभृत, कर्मप्रकृति आदि ग्रन्थ माने जाते हैं।

पूर्वज्ञान की विलुप्ति की तरह जैन परंपरा भी श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो भागों में विभाजित हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रन्थों के नामकरण में एकरूपता रहने पर भी कुछ पाठ-भेदों द्वारा कतिपय अंशों में भिन्न वर्णन किया गया है। जिसका कारण यह है कि दैशिक, कालिक परिस्थितियों के कारण विज्ञ आचार्यों का संपर्क नहीं रहा और जब चर्चा-वार्ता का प्रसंग आया तब तक भिन्न-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तायें इतनी रूढ़ हो चुकी थीं कि जिनको तत्काल बदला जाना संभव नहीं हो सका।

इस सामान्य भूमिका के आधार पर अब संक्षेप में सर्वप्रथम पंचसग्रह नामकरण के कारण को स्पष्ट करते हैं।

पंचसंग्रह परिचय

जैन वाङ्‌मय की श्रीवृद्धि में दोनों जैन परम्पराओं के आचार्य प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भी ग्रन्थों की रचना की और समय की आवश्यकता तथा अनुकूलता देखकर विभिन्न ग्रन्थों का संकलन कर नये नाम से भी ग्रन्थों की रचना की। पंचसंग्रह इसी प्रकार का एक सग्रह ग्रन्थ है। इसमें बंध, बंधक आदि पांच द्वार हैं, जो जैनदर्शन के लक्ष्यभूत मुख्य विषय हैं। इनके आधार पर दोनों ही परंपरा के आचार्यों ने पंचसंग्रह यही नाम देकर तदाधार से स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचनाएँ कीं और उत्तरवर्ती काल में उन पर अनेक टीका, टिप्पण, चूर्णियों का लेखन किया गया। जिससे मूलग्रन्थगत विशेषताओं का सरलता से स्पष्टीकरण हो सका।

वर्तमान में पंचसंग्रह नाम के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ प्राकृत में और कुछ संस्कृत में रचे गये हैं। इनकी रचना दोनों परम्पराओं के आचार्यों द्वारा हुई है। इनके सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि दोनों परंपराओं द्वारा रचित या संकलित पंचसंग्रह में जिन पांच ग्रन्थों या प्रकरणों का उल्लेख किया जाता है, उनमें से एकाध को छोड़कर प्रायः सभी ग्रन्थों या मूल प्रकरणों के रचयिताओं के नामादि अभी तक भी अज्ञात हैं। मूल ग्रन्थों की प्राचीनता तो सुतरां प्रमाणित है और अध्ययन करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि उनकी रचना उस समय हुई, जबकि जैन परम्परा अक्षुण्ण थी, उसमें श्वेताम्बर-दिगम्बर जैसे भेद उत्पन्न नहीं हुए थे। कालान्तर में जब इन दोनों भेदों ने अपना-अपना अस्तित्व सुदृढ़ कर लिया तब अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार पूर्व परम्परा से चले आये श्रुत को निबद्ध करना प्रारम्भ किया। उदाहरणार्थ – संस्कृत ग्रन्थों में जैसे तत्वार्थ सूत्र अपनी-अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्यतानुरूप पाठ-भेदों के साथ दोनों सम्प्रदायों को मान्य है और दोनों ही संप्रदाय के आचार्यों ने टीका-टिप्पण-भाष्य आदि लिखे। यही स्थिति पचसंग्रह की भी है जिसके मूल प्रकरण दोनों सम्प्रदायों में थोड़े से पाठ-भेदों के साथ समान रूप से मान्य हैं और दोनों ही सम्प्रदाय के आचार्यों ने प्राकृत भाषा में भाष्य, गाथायें, चूर्णियां और टीका-टिप्पण ग्रन्थ लिखे हैं।

दोनों सम्प्रदायों के पंचसंग्रहों में निबद्ध, संकलित या संगृहीत पांच ग्रन्थों और प्रकरणों के नाम इस तरह दो प्रकार से मिलते हैं—

श्वेताम्बर पंचसंग्रह—

प्रथम प्रकार—१ सत्कर्मप्राभृत, २ कर्मप्रकृति, ३ कषायप्राभृत ४ शतक ५ सप्ततिका।

द्वितीय प्रकार—१ योगोपयोग मार्गणा २ बंधक ३ बधव्य ४ बंधहेतु ५ बंधविधि।

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता चन्द्रर्षि महत्तर हैं। अतः रचयिता आचार्य ने स्वयं ही दोनों प्रकार के नाम दिये हैं। जिनमें प्रथम प्रकार के नामों का उल्लेख करते हुए कहा है—इस ग्रन्थ में शतक आदि पांच ग्रन्थ यथास्थान संक्षिप्त करके संग्रह किये गये हैं, इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम पंचसंग्रह है अथवा इसमें बंधक आदि पांच अधिकार वर्णित हैं, इसलिये भी इसका पंचसंग्रह यह नाम सार्थक या यथार्थ है।

दिगम्बर पंचसंग्रह में पांचों प्रकरणों के नाम इस प्रकार से बतलाये हैं—

प्रथम प्रकार—१ जीवसमास २ प्रकृति समुत्कीर्तन, ३ बंधस्तव ४ शतक ५ सप्ततिका।

द्वितीय प्रकार—१ बंधक, २ बध्यमान, ३ बंधस्वामित्व ४ बंधकारण ५ बंधभेद।

दोनों प्रकार के नामों के विषय में यह ज्ञातव्य है कि संग्रहकार ने प्रथम प्रकारगत पांचों प्रकरणों के संक्षिप्त सूत्रात्मक रूप को सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखते हुए भाष्य गाथाओं की रचना द्वारा पल्लवित किया और दूसरे प्रकार के नाम अमितगति के संस्कृत पंचसंग्रह के आधार से उल्लिखित हैं। उन्होंने प्राचीन प्राकृत पंचसंग्रह का संस्कृत भाषा में कुछ पल्लवित पद्यानुवाद किया जिसमें उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में नामों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार से संक्षेप में दोनों जैन परंपराओं गत पंचसंग्रह का नामकरण के कारणोल्लेखपूर्वक परिचय जानना चाहिये।

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है कि संप्रदाय-भेद के कारण ग्रन्थ के वर्ण्य विषय में भी भिन्नतायें आ गईं। इस दृष्टि से श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के पंचसंग्रहों में वर्णन की भिन्नतायें हैं। लेकिन अभी प्रसंग नहीं होने से यहां कुछ भी संकेत किया जाना अनुपयोगी है, ऐसा हम मानते हैं। विज्ञ पाठकगण जिज्ञासुवृत्ति से अध्ययन कर अपना मत निर्धारित करें, यह अधिक समुचित होगा।

अब प्रस्तुत अधिकार के विषय में विचार करते हैं।

सप्ततिका के संकलन का आधार

पूर्व में यह संकेत किया जा चुका है कि उपलब्ध जैन कर्म साहित्य के सकलन के आधार पूर्व हैं। अग्रायणीय पूर्व की पांचवीं वस्तु के चौथे प्राभृत के आधार से षट्खंडागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका इन ग्रन्थों का संकलन हुआ। इनमें से कर्मप्रकृति यह ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में और षट्खंडागम दिगम्बर परम्परा में माना जाता है तथा कुछ पाठ-भेदों के साथ शतक और सप्ततिका, ये दो ग्रन्थ दोनों परम्पराओं में माने जाते हैं।

प्राचीनकाल में ग्रन्थों या अधिकारों के नामकरण के विषय में विभिन्न दृष्टियाँ रही हैं। कभी तो वर्ण्य विषय को आधार बनाकर प्रकरण का नामकरण कर लिया जाता था और कभी गाथाओं या श्लोकों की संख्या के आधार पर भी नामकरण कर लिया जाता था। उदाहरण के रूप में आचार्य शिवशर्म कृत 'शतक', आचार्य सिद्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेन कृत द्विंत्रिशिका प्रकरण, आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पंचाचक प्रकरण, विंशति-विंशतिका प्रकरण, षोडशक प्रकरण, अष्टक प्रकरण, आचार्य जिनवल्लभ कृत षड्शीति प्रकरण आदि अनेक रचनाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है। कभी-कभी इच्छानुसार वर्तमान में पुस्तकों के नामकरण की तरह भी ग्रन्थ या प्रकरण का नामकरण कर लिया जाता था। इस तरह नामकरण के लिये कोई भी दृष्टि हो परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वर्तमान में जो पांच ग्रन्थ माने जाते हैं और जिन्हें कर्म विषयक मूल साहित्य कहा जा सकता है उनमें सप्ततिका भी एक है। क्योंकि सप्ततिका की गाथाओं में कर्म साहित्य का समग्र सार भर दिया गया है जिससे मूल साहित्य का कहा जाना उचित ही है।

कदाचित सप्ततिका यह नाम गाथाओं की संख्या के आधार से रखा गया मान लिया जाये, तथापि इसकी गाथाओं की सख्या के बारे में मतभेद है। अभी जो संस्करण उपलब्ध हैं, उन सब में इसकी गाथाओं की अलग-अलग संख्या दी गई है। श्री जैन श्रेयष्कर मंडल मेहसाना की ओर से प्रकाशित संस्करण में ९१ गाथायें हैं। बंबई से प्रकाशित प्रकरण रत्नाकर चौथा भाग में इसकी गाथाएँ ९४ दी गई हैं। आचार्य मलयगिरि की टीका के साथ श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित में इसकी गाथाओं की संख्या ७२ दी गई है और चूर्णि के साथ श्री ज्ञान मन्दिर डभोई से प्रकाशित संस्करण में गाथाओं की सख्या ७१ बताई है। परन्तु यह चूर्णि ७१ गाथाओं पर न होकर ८९ गाथाओं पर है, इससे चूर्णिकार के मत से सप्ततिका की गाथाओं की संख्या ८९ सिद्ध होती है। दिगम्बर पंचसंग्रह में जो सप्ततिका प्रकरण संकलित है उसमें भाष्य सहित ५०७ गाथायें हैं। उनमें ७२ मूल गाथायें हैं। चन्द्रर्षि महत्तर द्वारा रचित पंचसंग्रह में इस प्रकरण की कुल गाथायें १५६ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक सस्करण में गाथाओं की संख्या में भिन्नता है। इस भिन्नता के कारण के रूप में निम्न द्रष्टव्य है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपिकारों द्वारा अन्तर्भाष्य गाथाओं को मूल गाथा के रूप में अथवा प्रकरणोपयोगी अन्य गाथाओं को मूल गाथा के रूप में स्वीकार किया जाना।

इस स्थिति में हम यह मानकर चलें, प्रकरण के नामकरण के लिए गाथा संख्या पर भार न दें, परन्तु पूर्वकालीन नाम का बोध कराने के लिये ही सप्ततिका यह नाम रखा गया है और पूर्व में सप्ततिका में जो वर्णन था उसका गाथा प्रमाण बढ़ाकर भी यहाँ प्रतिपादन कर दिया गया है। ऐसा करने से गाथाओं की संख्या एवं नाम के बारे में विवाद को अवकाश नहीं रहता है।

सप्ततिका और चन्द्रर्षि महत्तर

आचार्य चन्द्रर्षि महत्तर ने अपने पंचसंग्रह में सप्ततिका नामक ग्रन्थ संगृहीत किया है और उस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी लिखी है। लेकिन इसके पूर्व ग्रन्थकार आचार्य एक अज्ञातकर्तृक सप्ततिका पर २३०० श्लोक प्रमाण चूर्णि का आलेखन कर चुके थे। चूर्णि लिखते समय सम्भवतः उन्हें यह स्पष्ट हो चुका था कि संख्या के आधार पर ग्रन्थ का नामकरण करने की दृष्टि से अधिकृत वर्ण्य विषय से सम्बन्धित बहुत सा अंश छूट गया है। जिसका खुलासा करने के लिए अनेक ग्रन्थों के उद्धरण दिये एवं उद्धरण देते समय शतक, सत्कर्म प्राभृत, कषायप्राभृत और कर्मप्रकृति संग्रहणी का भरपूर उपयोग किया। अब यदि उसी त्रुटि को पुनः दुहरा दिया जाये तो श्रम निष्फल है तथा पाठकों और ग्रन्थ के प्रति भी न्याय नहीं होगा। इसीलिए इसकी पूर्ति हेतु गाथा संख्या में वृद्धि करना अपेक्षित है। यह कार्य चूर्णि की रचना करते समय तो नहीं किया जा सकता था, लेकिन अपने रचित पंचसंग्रह के सप्ततिका प्रकरण में उन विषयों का समावेश करने के लिए गाथाओं की संख्या में वृद्धि करना उचित समझा और वैसा किया।

ऐसा करके भी आचार्य ने सप्ततिका नाम इसीलिये रखा कि पाठकों को यह ध्यान रहे कि पूर्व परम्परा से सप्ततिका प्रकरण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये निर्धारित विषय का ही यहाँ प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार गाथाओं की संख्या में भिन्नता होने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ग्रन्थकार आचार्य का लक्ष्य पंचसंग्रह में वर्णन की क्रमबद्धता रहा है और इसलिए ग्रन्थान्तरों में आगत गाथाओं का समावेश भी कर लिया। वे गाथाएँ किन ग्रन्थान्तरों से ली हैं, यह अनुसन्धानीय है।

इस प्रकार से पंचसंग्रहगत सप्ततिका के बारे में यत्किंचित संकेत करने के बाद अब प्रस्तुत सप्ततिका के विषय का परिचय कराते हैं।

वर्ण्य विषय परिचय

पूर्व के प्रकरणों में मूल और उत्तर प्रकृतियों के जिस बंधविधान का वर्णन किया है और प्रासंगिक होने से बंधनकरण आदि आठ करणों की व्याख्या की है, अब उसी बंधविधान के संवेध का यहाँ विचार किया गया है।

संक्षेप में यह वर्ण्य विषय की रूपरेखा है। जिसका कुछ विस्तार के साथ परिचय इस प्रकार से जानना चाहिए—

प्रारम्भ में प्रकरण के प्रतिपाद्य विषय का संकेत करके सर्वप्रथम मूलप्रकृतियों विषयक बंध का बंध के साथ संवेध का निरूपण किया है। अनन्तर इसी क्रम में मूलप्रकृतियों सम्बन्धी उदय और सत्ता का, फिर उदय का बंध के साथ संवेध बतलाया और इसी तरह बंध के साथ सत्ता के एवं बंध के साथ उदय के संवेध का विचार किया है। जिसका सारांश यह हुआ कि मूल प्रकृतियों सम्बन्धी बंध के साथ बंध के, उदय के साथ उदय के, सत्ता के साथ सत्ता के, बंध के साथ उदय और सत्ता के, उदय और सत्ता के साथ बंध के संवेध का सयुक्तिक विचार किया है।

तदनन्तर सामान्य से किये गये उक्त संवेध विचार को गुणस्थान और जीवस्थान भेदों में घटित किया है।

तत्पश्चात् उत्तरप्रकृतियों के संवेध का विचार करने की भूमिका के रूप में दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्म के सिवाय शेष पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल प्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियों के स्थानों का निरूपण किया है कि प्रत्येक कर्म की कितनी-कितनी उत्तरप्रकृतियां एक साथ एक जीव को बंध, उदय और सत्ता में प्राप्त हो सकती हैं।

अनन्तर आयुकर्म के बंध, उदय और सत्ता के संवेध की प्ररूपणा की है। इसी तरह दर्शनावरण कर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थानों, बंध और सत्ता स्थानों का काल प्रमाण बतलाकर उनके संवेध का विचार किया है। फिर गोत्र और वेदनीय कर्म के संवेध भंगों का विवेचन किया है। यह समग्र वर्णन आदि की अठारह गाथाओं में पूर्ण हुआ है।

इस प्रकार सामान्य से छह कर्मों की उत्तरप्रकृतियों सम्बन्धी संवेध का विचार करने के बाद गाथा १९ से ४६ तक विस्तार से संसार के प्रमुख कारण मोहनीय कर्म के संबेध से सम्बन्धित बिन्दुओं की चर्चा की है। इसके लिए सर्वप्रथम मोहनीय कर्म के बंधस्थानों की संख्या, प्रकृतिभेद से बंधस्थानों के प्रकार, बंधस्थानों का काल प्रमाण बतलाकर फिर उदयस्थानों का वर्णन किया है और प्रत्येक गुणस्थान में सम्भव उदयस्थानों एवं उनसे सम्बन्धित भगों की चौबीसियाँ आदि को बतलाया है। यथाप्रसंग सम्बन्धित मतान्तरों का भी संकेत किया है फिर गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदय (उदीरणा) विकल्पों को बतलाकर मोहनीय कर्म के उदयविच्छेदक गुणस्थानों का संकेत करके उदय सम्बन्धी वर्णन समाप्त किया है। इसी तरह सत्ता सम्बन्धी वर्णन करने के लिए सत्तास्थानों की संख्या बतलाकर गुणस्थानों में उन सत्तास्थानों की प्ररूपणा की है। यह सब वर्णन हो जाने के बाद संवेध का विचार किया है। अन्त में मोहनीय कर्म के सत्तास्थानों के अवस्थानकाल बतलाकर वक्तव्यता पूर्ण हुई है।

मोहनीय की तरह नामकर्म की विचारणा भी व्यापक है। अतएव प्रारम्भ में बंधादि स्थानों का सरलता से बोध कराने के लिए जिन प्रकृतियों के साथ नामकर्म की बहुत सी प्रकृतियाँ बंध अथवा उदय में प्राप्त होती हैं, उनके निर्देशक सूत्र का संकेत करके देवगति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध-उदय सहचारी, तीर्थंकरनाम की बंध सहभावी, नरकगति-बंध-सहचारी, अपर्याप्त बंधयोग्य, त्रस, पर्याप्त एकेन्द्रियादि के बंधयोग्य प्रकृतियों को बतलाया है।

तत्पश्चात् नामकर्म के बंधस्थानों और प्रत्येक गति, गुणस्थान, एकेन्द्रियादि योग्य बंधस्थानों का कथन किया है। फिर गुणस्थानों में नामकर्म की बंध और विच्छेद योग्य प्रकृतियों का उल्लेख करके बंध विषयक प्ररूपणा पूर्ण की। इसी प्रकार उदय विषयक वर्णन प्रारम्भ करने के लिए उदयसम्बन्धी विशेष कथनीय, नामकर्म के उदयस्थान तथा गति, गुणस्थान, इन्द्रियभेद, केवली भगवान की अपेक्षा उदय-स्थानों का उल्लेख करके नामकर्म के उदयस्थानों का वर्णन पूर्ण किया है।

अनन्तर क्रमप्राप्त सत्तास्थानों की प्ररूपणा प्रारम्भ की और चतुर्गतियों, गुणस्थानों में सत्तास्थानों को बतलाकर बंधादि स्थानों के संवेध का विचार किया है।

इसके बाद ज्ञानावरणादि प्रत्येक की उत्तरप्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के संवेध का गुणस्थानापेक्षा विचार किया है। इसी प्रसंग में मोहनीय कर्म के संवेध का विस्तार से विचार करने के लिए उसमें पद प्रमाण, गुणस्थानापेक्षा उदयपद संख्या, उपयोग, लेश्या, योग की अपेक्षा उदयपद और उनके भंगों का भी उल्लेख किया है। इसी तरह पूर्व में किये गये नामकर्म के वर्णन से शेष रहे विशेष विवेचन का निरूपण किया है। यह निरूपण गुणस्थान, जीवस्थान, गति, इन्द्रिय भेदों को माध्यम बनाकर किया है।

इसके बाद जीवस्थान भेदों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, वेदनीय, गोत्र, आयु, मोहनीय और नामकर्म के बंधादि स्थानों का विचार किया है। फिर मार्गणास्थान के भेदों में बंधादि स्थानों की सत्पद प्ररूपणा की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सत्पद प्ररूपणा को करने के बाद प्रकरण के उपसंहार रूप में गुणस्थानों और मार्गणास्थानभेदों में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या और नामों का उल्लेख करके अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए श्रुत-देवी को नमस्कार करके ग्रन्थकार ने अधिकार समाप्ति का संकेत किया है—

समईविभवाणुसारेण पगरणमेयं समासओ भणियं ।

उपसंहार : आभार प्रदर्शन

इस सप्ततिका प्रकरण की समाप्ति के साथ पंचसंग्रह जैसे महान ग्रन्थ के सम्पादन के दायित्व की पूर्णता होने से सन्तोष का अनुभव कर रहा हूँ कि अपनी अक्षमताओं के रहते हुए भी यह कार्य कर सका ।

पंचसंग्रह जैसे महान् ग्रन्थ के सम्पादन, विवेचन आदि का कार्य कितना कठिन है, यह उसके अभ्यासियों को ज्ञात ही है । मैंने शक्ति भर पूरी सावधानी रखी है, फिर भी यदि कहीं स्खलना हो गई हो तो विद्वज्जन संशोधित करने की कृपा करें ।

सम्पादन, विवेचन के लिए जिन आचार्यों, विद्वानों के साहित्य का उपयोग किया, उनके प्रति सविनम्र आभारी हूं । उनके परोक्ष मार्ग-दर्शन ने मुझे प्रति समय प्रोत्साहित किया है । उनका उपकार सदैव स्मरणीय रहेगा ।

आवश्यक ग्रन्थों की उपलब्धि के लिये ब्रज मधुकर पुस्तकालय ब्यावर के अधिकारियों को साधुवाद देता हूँ और मुद्रण कार्य का यथोचित संशोधन आदि दायित्व निर्वाह के लिए भाई श्री श्रीचन्दजी सुराना तथा डा० बृजमोहन जी जैन धन्यवादार्ह हैं । साथ ही इस बात के लिए प्रसन्नता है कि परोक्षतावश समय-समय पर दृष्टि-भिन्नता रहने पर भी मनभिन्नता का कोई प्रसंग नहीं आया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव श्री मरुधर केसरी जी महाराज का शत-शत वन्दन-नमनपूर्वक स्मरण करता हूँ। मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी महाराज 'रजत', मरुधराभूषण मुनि श्री सुकनमुनि जी महाराज एवं उनके सहगामी श्रमण मण्डल का अभिनन्दन करता हूं कि उनका अपेक्षित सहयोग, सहकार सर्वदा प्राप्त हुआ है।

अन्त में विज्ञजनों से यही अपेक्षा रखता हूं—

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसन्धिविवर्जितरेफं।
साधुभिरत्र मम क्षन्तव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

साथ ही यह भावना है कि अर्जित बोध का स्वोत्कर्ष के लिये उपयोग करने में सक्षम होऊं।

खजान्ची मोहल्ला,
बीकानेर, ३३४००१

देवकुमार जैन
सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

गाथा १ ३

संवेध का लक्षण ३

गाथा २ ४—६

मूलप्रकृतियों के बंधस्थान ४

मूलप्रकृतियों के बंधस्थानों का ज्ञापक प्रारूप ६

गाथा ३ ७—६

मूलप्रकृतियों के उदयस्थान व सत्तास्थान ७

उदय और सत्ता की अपेक्षा मूलप्रकृतियों का सम्बन्ध ८

गाथा ४ ६—१२

मूलप्रकृतियों का उदय-बंध संवेध १०

मूलप्रकृतियों का बंध-सत्ता संवेध ११

गाथा ५ १२—१८

मूलप्रकृतियों का बंध-उदय संवेध १२

मूलप्रकृतियों का बंध के साथ बंध आदि के संवेधों संक्षिप्त सारांश १३

मूलप्रकृतियों के बंध के साथ बंध आदि संवेधों का गुणस्थानों और जीवस्थानों की अपेक्षा स्वामित्व १६

उक्त कथन का दर्शक प्रारूप १७

गाथा ६ १८—१६

मोहनीय और नामकर्म व्यतिरिक्त ५ कर्मों के स्थान १८

गाथा ७ १६—२०

ज्ञानावरण, अंतराय के बंध, उदय, सत्ता स्थान २०

आयुभेदों के बंध के गुणस्थान २०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ८ २०—२१

आयुभेदों के उदय व सत्ता के गुणस्थान २१

गाथा ९ २१—२६

नरकायु के बंध आदि का संवेध २२

देवायु के बंध आदि का संवेध २३

तिर्यंचायु के बंध आदि का संवेध २३

मनुष्यायु सम्बन्धी बंध आदि का संवेध २५

गाथा १० २६—२८

दर्शनावरण कर्म के बंधादि स्थान और स्वामित्व २७

गाथा ११ २८—३०

दर्शनावरण के बंधस्थानत्रिक के बंधकाल का प्रमाण २८

दर्शनावरण के सत्तास्थानों का प्रमाण २९

गाथा १२ ३०—३२

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थान ३१

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थानों का स्वामित्व ३१

गाथा १३, १४ ३२—३६

दर्शनावरण कर्म के बंधादि स्थानों का संवेध ३२

दर्शनावरण कर्म के बंधादि स्थानों के संवेध का प्रारूप ३५

गाथा १५, १६ ३६—३८

गोत्र कर्म के बंधादि स्थानों का गुणस्थानापेक्षा स्वामित्व ३६

गोत्र कर्म के बंधादि स्थानों का संवेध ३७

गोत्र कर्म के संवेध का प्रारूप ३८

गाथा १७, १८ ३९—४२

वेदनीय कर्म के बंधादि स्थानों का स्वामित्व ४०

वेदनीय कर्म के बंधादि स्थानों का संवेध ४०

वेदनीय कर्म के संवेध का दर्शक प्रारूप ४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा १९ ४२—४३

मोहनीय कर्म के बंधस्थान ४२

गाथा २०, २१ ४३—४६

प्रकृतिभेद से मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रकार ४४

गाथा २२ ४६—४९

मोहकर्म के बंधस्थानों का काल प्रमाण ४७

गाथा २३ ४९—५०

मोहनीय कर्म के उदयस्थान ४९

गाथा २४, २५ ५०—५२

मोहनीय कर्म के उदयस्थान प्रकार बोधक सूत्र ५०

गाथा २६ ५३—६१

मिथ्यात्व गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग व उनकी प्रकृतियाँ ५३

सासादन गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ५७

मिश्र गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ५८

अविरतसम्यक्दृष्टि गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ५८

देशविरत गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ५९

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में मोहनीन कर्म के उदयस्थानों के भंग ६०

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ६०

अपूर्वकरण गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंग ६१

गाथा २७ ६१—६२

मोहनीय कर्म के दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों की चौबीसियों का प्रमाण ६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा २८ ६२—६४

मोहनीय कर्म के पाँच प्रकृतिक आदि बंधस्थानों के उदय-विकल्प ६३

गाथा २९, ३० ६४—६६

उपर्युक्त बंधस्थानों के उदयविकल्प सम्बन्धी मतान्तर ६५

गाथा ३१, ३२, ३३ ६६—६९

गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदय (उदीरणा) विकल्प ६७

गाथा ३४ ६९—७०

मोह प्रकृतियों के उदयविच्छेदक गुणस्थान ६९

गाथा ३५ ७०—७१

मोहनीय कर्म के सत्तास्थान ७१

गाथा ३६, ३७ ७१—७४

मोहनीय कर्म के सत्ताविच्छेद के गुणस्थान ७२

प्रत्येक गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सत्तास्थान ७३

गाथा ३८ ७४—७५

मोहनीय कर्म के छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थानों का स्वामित्व सम्बन्धी विशेष ७५

गाथा ३९ ७६—७७

मोहनीय कर्म प्रकृतियों के उद्वलक ७६

अनन्तानुबंधि कषाय के उदय का स्वामित्व ७६

गाथा ४० ७७—७९

मिथ्यात्व गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ७७

सासादन गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ७९

गाथा ४१ ७९—८१

मिश्र गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८०

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ४२ ८३—८६

देशविरत गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८३

प्रमत्त संयत, अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८५

अपूर्वकरण गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८५

गाथा ४३, ४४ ८६—९१

अनिवृत्तिबादरसम्पराय गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८६

सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८७

उपशांतमोह गुणस्थान में मोहनीय कर्म का संवेध ८७

गाथा ४५, ४६ ९२—९६

मोहनीय कर्म के सत्तास्थानों का अवस्थानकाल ९२

गाथा ४७, ४८ ९६—९८

नामकर्म की बंधोदय सहचारिणी प्रकृतियाँ ९६

गाथा ४९ ९८—९९

देवगति-बंध-उदय सहचारी नाम प्रकृतियाँ ९९

गाथा ५० ९९—१०१

तीर्थंकरनाम की बंध सहभावी नाम प्रकृतियाँ १००

गाथा ५१ १०१

नरकगति बंध सहचारिणी नाम प्रकृतियाँ १०१

गाथा ५२ १०२—१०३

अपर्याप्त-बंधयोग्य नाम प्रकृतियाँ १०२

गाथा ५३, ५४ १०३—१०५

त्रस तथा पर्याप्त एकेन्द्रियादि योग्य नाम बंध प्रकृतियाँ १०४

गाथा ५५ १०५—१०६

नाम कर्म के बंधस्थान १०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ५६ १०६—१०८

मनुष्यादि गतियों में नाम कर्म के बंधयोग्य स्थान १०६

गाथा ५७ १०८—१०९

प्रत्येक गतियोग्य नाम कर्म के बंधस्थान १०९

गाथा ५८ १०९—११४

मिथ्यात्व गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११०

सासादन गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११०

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११०

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान १११

देशविरत और प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान १११

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११२

अपूर्वकरण गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११२

अनिवृत्तिबादर, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में नाम कर्म के बंधस्थान ११२

नौवें, दसवें गुणस्थान में तीर्थंकर, आहारकद्विक आदि जैसी पुण्य प्रकृतियों के बंध न होने का कारण ११२

गाथा ५९, ६० ११४—११९

एकेन्द्रिययोग्य नाम कर्म के बंधस्थान और उनके भंग ११५

गाथा ६१ १२०—१२४

द्वीन्द्रियादि योग्य नाम कर्म के बंधस्थान और उनके भंग १२०

गाथा ६२ १२४—१२६

मनुष्य गति योग्य नाम कर्म के बंधस्थान और उनके भंग १२४

नरकगति योग्य नाम कर्म के बंधस्थान और उनके भंग १२६

गाथा ६३ १२७—१२९

देवगति योग्य नाम कर्म के बंधस्थान और उनके भंग १२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ६४ १२६—१३०

मिथ्यात्व गुणस्थान में नाम कर्म की बंध एवं विच्छेद योग्य प्रकृतियां १३०

गाथा ६५ १३०—१३१

सासादन, मिश्र, अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में नाम कर्म की बंधयोग्य प्रकृतियाँ १३१

गाथा ६६, ६७, ६८ १३२—१३५

मिश्र और अविरतसम्यक्‌दृष्टि गुणस्थानों में नाम कर्म की बंधयोग्य प्रकृतियों के नाम व बंध कारण १३३

देशविरत, प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नाम कर्म की बंधयोग्य प्रकृतियाँ १३३

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंधयोग्य नाम कर्म की प्रकृतियाँ १३४

अपूर्वकरण से सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त बंधयोग्य नाम कर्म की प्रकृतियाँ १३४

गाथा ६९, ७०, ७१, ७२ १३५—१३८

विधि-निषेधमुखेन नामकर्म की प्रकृतियों के सहचारी उदय की संभवासंभवता का विचार १३७

गाथा ७३ १३८—१३९

नामकर्म के उदयस्थान १३९

गाथा ७४ १३९—१४०

चारों गतियों में नामकर्म के उदयस्थान १४०

गाथा ७५, ७६, ७७ १४०—१४७

मिथ्यात्व गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४२

सासादन गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४२

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४४

सयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४४

देशविरत गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४५
मिश्र गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४५
अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४६
अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादर संपराय, सूक्ष्म-संपराय, उपशांत-मोह, क्षीणमोह गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४६
सयोगि केवली, अयोगि केवली गुणस्थान में नामकर्म के उदयस्थान १४६

गाथा ७८ १४७—१४८

तिर्यंच और मनुष्यों में नामकर्म के उदयस्थानों का सामान्य कथन १४८

गाथा ७९, ८०, ८१ १४८—१५४

एकेन्द्रियों के नामकर्म के उदयस्थान और उनके भंग १४९
विकलत्रिकों के नामकर्म के उदयस्थान और उनके भंग १५३

गाथा ८२ १५४—१५९

सामान्य से तिर्यंच और मनुष्यों के नामकर्म के उदयस्थान और उनके भंग १५५
सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच के नामकर्म के उदयस्थान और उनके भंग १५७

गाथा ८३ १५९—१६५

वैक्रिय शरीरी तिर्यंच, मनुष्य व आहारक शरीरी मनुष्य के नामकर्म सम्बन्धी उदयस्थान व उनके भंग १६०

गाथा ८४ १६५—१६७

देवों के नामकर्म सम्बन्धी उदयस्थान व उनके भंग १६६
नारकों के नामकर्म के उदयस्थान व उनके भंग १६७

गाथा ८५, ८६, ८७ १६९—१७४

केवली भगवन्तों के नामकर्म सम्बन्धी उदयस्थान व उनके भंग १७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ८८ १७४—१७५

केवली भगवन्तों के अट्ठाईस से इकत्तीस प्रकृतिक तक के उदयस्थानों सम्बन्धी विशेष १७४

गाथा ८९ १७५—१७६

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७५

गाथा ९० १७६—१७७

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७७

देशविरत गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७७

गाथा ९१, ९२ १७८—१७९

प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७८

अपूर्वकरण से उपशान्तमोह गुणस्थान पर्यन्त नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७९

क्षीणमोह, सयोगि केवली गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७९

अयोगि केवली गुणस्थान में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियाँ १७९

गाथा ९३, ९४ १८०—१८३

नामकर्म के सत्तास्थानों का निरूपण १८०

गाथा ९५ १८३—१८४

नौवें गुणस्थान में सत्ताविच्छिन्न नामकर्म की तेरह प्रकृतियाँ १८३

गाथा ९६ १८४—१८५

नामकर्म के अध्रुव सत्तास्थानों के स्वामी १८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ९७ — १८५—१८७
चतुर्गति में प्राप्त नामकर्म के सत्तास्थान — १८६
गाथा ९८ — १८७—१८९
गुणस्थानों में प्राप्त नामकर्म के सत्तास्थान — १८८
गाथा ९९, १०० — १८९—२०७
नामकर्म के बंधादि स्थानों का संवेध — १९०
गाथा १०१ — २०७—२०८
ज्ञानावरण, अन्तराय कर्म का गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्तास्थानों का संवेध — २०८
गाथा १०२, १०३, १०४ — २०८—२११
दर्शनावरण कर्म के त्रिक का गुणस्थानों में संवेध — २१०
गाथा १०५ — २११—२१३
गुणस्थानों में वेदनीय कर्म का संवेध — २११
गाथा १०६, १०७, १०८ — २१३—२१७
गुणस्थानों में आयु कर्म के संवेध भग — २१५
गाथा १०९, ११० — २१७—२२०
गुणस्थानों में गोत्रकर्म के संवेध भंग — २१८
गाथा १११, ११२, ११३ — २२०—२२४
गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के पदप्रमाण — २२१
गाथा ११४, ११५, ११६ — २२४—२२७
गुणस्थानापेक्षा मोहनीय कर्म की उदयपद-संख्या — २२५
गाथा ११७ — २२७—२२८
योग, उपयोग, लेश्यादि के भेद से मोहनीय कर्म के भंग और पद जानने का विधि सूत्र — २२७
गाथा ११८ — २२८—२३१
उपयोगापेक्षा गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदय भंग — २२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ११६ — २३१—२३४

लेश्यापेक्षा गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदयभंग और उदयपद — २३२

गाथा १२० — २३४—२४१

योग द्वारा संभव गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदयभंग और उदयपद — २३४

गाथा १२१, १२२, १२३, १२४ — २४१—२४४

योग द्वारा संभव गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदयभंग और उदयपद कम करने का सूत्र — २४३

गाथा १२५ — २४४—२४६

मोहनीय कर्म के उदयभंगों और पदों की संख्या प्राप्ति का उपाय — २४५

गाथा १२६, १२७ — २४६—२४६

असंभव उदय भंगों व पदों को प्राप्त करने का उपाय — २४६

गाथा १२८ — २४६—२५०

कम करने योग्य पदों को प्राप्त करने का उपाय — २४६

गाथा १२६ — २५१—३०८

मिथ्यात्व गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन — २५१

सासादन गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन — २६८

मिश्र गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन — २७८

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन — २८१

देशविरत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन — २८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन २९०
अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन २९२
अपूर्वकरण गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन २९३
अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विवेचन २९५
सूक्ष्मसंपराय, उपशांतमोह आदि गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थान २९६
नरकगति में नामकर्म के बंधादि स्थान २९९
तिर्यंचगति में नामकर्म के बंधादि स्थान ३०१
मनुष्यगति में नामकर्म के बंधादि स्थान ३०३
देवगति में नामकर्म के बंधादि स्थान ३०७

गाथा १३० ३०८—३१०
इन्द्रिय मार्गणा के भेदों में नामकर्म के बंधादि स्थान ३०८

गाथा १३१ ३१०—३११
जीवस्थानों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्म के बंधादि स्थान ३१०

गाथा १३२ ३११—३१२
जीवभेदों में वेदनीय और गोत्रकर्म के बंधादि स्थान ३११

गाथा १३३, १३४ ३१२—३१४
जीवस्थानों में आयुकर्म के बंधादि स्थान ३१३

गाथा १३५, १३६ ३१४—३१७
जीवस्थानों में मोहनीयकर्म के बंधादि स्थान ३१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा १३७, १३८, १३९	३१७—३२४
जीवस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थान	३१८
गाथा १४०	३२४—३२५
मार्गणाओं में मूलकर्म प्रकृतियों के बंधादि स्थानों की सत्पदप्ररूपणा	३२५
गाथा १४१, १४२	३२५—३३०
मार्गणा भेदों में उत्तर प्रकृतियों के बंधादि स्थानों की सत्पदप्ररूपणा	३२५
गाथा १४३, १४४, १४५	३३०—३३४
गुणस्थानों में बंध प्रकृतियों की संख्या	३३१
गाथा १४६, १४७	३३५—३३७
नरकगति में बंधयोग्य प्रकृतियाँ	३३५
गाथा १४८, १४९	३३७—३३९
देवगति में बंधयोग्य प्रकृतियाँ	३३७
गाथा १५०, १५१, १५२	३३९—३४१
तिर्यंच और मनुष्यगति योग्य बंध प्रकृति	३४०
गाथा १५३, १५४, १५५	३४१—३४४
पूर्वोक्त से शेष मार्गणाओं में बंध योग्य प्रकृतियाँ	३४२
गाथा १५६	३४४—३४५
उपसंहारपूर्वक ग्रन्थ समाप्ति का संकेत	३४५

परिशिष्ट

१ सप्ततिका अधिकारकी मूल गाथाएँ	३४६
२ मोहनीय कर्म के बंधस्थानों का प्रारूप	३५९
३ मोहनीय कर्म के उदयस्थानों का प्रारूप	३६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. गुणास्थानापेक्षा मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के संभव भंगों का प्रारूप ३६२
५. गुणस्थानापेक्षा मोहनीय कर्म के पूर्वोक्त उदयस्थानों की चौबीसी की प्राप्ति का प्रारूप ३६६
६. मोहनीय कर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप ३६७
७. गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के सत्तास्थान दर्शक प्रारूप ३६९
८. मोहनीय कर्म के बंध-उदय-सत्तास्थानों का संवेध दर्शक प्रारूप ३७१
९. गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप ३७४
१०. तत् तत् गति प्रायोग्य नामकर्म के बंधस्थानों के भंग ३७७
११. जीवस्थानों में नामकर्म के उदयस्थान और भंगों का प्रारूप ३८२
१२. दिगम्बर सप्ततिकानुसार मूल एवं उत्तर प्रकृतियों के बंध-उदय-सत्व के संवेध भंगों का प्रारूप ३९६
१३. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्व का संवेध ३९७
१४. दिगम्बर सप्ततिकानुसार चौदह जीवस्थानों में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्व स्थान ३९८
१५. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थान ३९९
१६. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में दर्शनावरण कर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थान ४००
१७. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में वेदनीय कर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थान ४०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बंधादि स्थान ४०२
१९. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में नामकर्म की उत्तर-प्रकृतियों के बंधादि स्थानों का प्रारूप ४०३
२०. दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में गोत्र कर्म के बंधादि स्थानों के भंग ४०५
२१. दिगम्बर सप्ततिकानुसार मार्गणास्थान भेदों में नाम कर्म के बंधादि स्थानों का प्रारूप ४०६
२२. ग्रन्थानुसार मार्गणाभेदों में नाम कर्म के बंधादि स्थानों का प्रारूप ४१३
२३. मार्गणाभेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप ४२६
२४. मार्गणाभेदों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्मों के संवेध का प्रारूप ४३४
२५. मार्गणाभेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप ४३८
२६. मार्गणाभेदों में वेदनीय कर्म के संवेध का प्रारूप ४५४
२७. मार्गणाभेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप ४६२
२८. मार्गणाभेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप ४७१
२९. मार्गणाभेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप ४७८
३०. मार्गणाभेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप ४८६
३१. मार्गणाभेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप ५१८
३२. गाथाओं की अकारादि अनुक्रमणिका ५२६

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षिमहत्तर-विरचित

पंचसंग्रह

[मूल, शब्दार्थ तथा विवेचनयुक्त]

सप्ततिका प्ररूपणा अधिकार

१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ततिका-प्ररूपणा अधिकार

अष्ट करणों की प्ररूपणा करने के पश्चात् अब सप्ततिका प्रकरण द्वारा संवेधगत बंधविधान का कथन करने के लिए ग्रन्थकार निर्देश करते हैं—

मूलुत्तरपगईणं, साइ-अणाई-परूवणाणुगयं ।
भणियं बंधविहाणं, अहुणा संवेहगं भणिमो ।।१।।

शब्दार्थ—**मूलुत्तरपगईणं**—मूल एवं उत्तर प्रकृतियों का, **साइ-अणाई-परूवणाणुगयं**—सादि-अनादि प्ररूपणागत, **भणियं**—कथन किया, **बंधविहाणं**—बंधविधान, **अहुणा**—अब, **संवेहगं**—संवेध को, **भणिमो**—कहूँगा ।

गाथार्थ—पूर्व में सादि-अनादि प्ररूपणानुगत मूल और उत्तर प्रकृतियों के बंधविधान का कथन किया, अब संवेधगत(बंधविधान) को कहूँगा ।

विशेषार्थ—प्रकरणगत प्रतिपाद्य विषय का संकेत करने से यह गाथा प्रस्तावना रूप है कि अभी तक मूल एवं उत्तर प्रकृतियों के बंधविधान—प्रकृतिबंध, स्थितिबंधादिक के स्वरूप का सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवादि प्ररूपणा के अनुरूप कथन किया तथा प्रासंगिक होने से बंधनकरण आदि आठ करणों की भी विस्तृत व्याख्या की । अब इसी बंधविधान के संवेध का यहाँ विचार करते हैं । तथा—

जिस किसी मूल या उत्तर प्रकृति के बंध आदि होने पर अविरोधी रूप से जितनी मूल या उत्तर प्रकृतियों का उदय आदि होने एवं इसी प्रकार उदय होने पर संभव मूल और उत्तर प्रकृतियों के बंध आदि होने के निर्देश करने को संवेध कहते हैं ।

अब प्रतिज्ञानुसार सर्वप्रथम ग्रन्थकार मूल प्रकृतियों विषयक बंध का और बंध के साथ संवेध का निरूपण करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधसंवेध—

आउम्मि अट्ठ मोहेट्ठ सत्त एक्कं च छाइ वा तइए।
बज्झंतयंमि बज्झंति सेसएसुं छ सत्तट्ठ ॥२॥

शब्दार्थ—आउम्मि—आयु का बंध हो, **अट्ठ**—आठ, **मोहेट्ठ**—मोहनीय के बंध में आठ, **सत्त**—सात, **एक्कं**—एक, **च**—और, **छाइ**—छह आदि, **वा**—अथवा, **तइए**—तीसरे (वेदनीय) कर्म का, **बज्झंतयंमि**—बंध होने पर, **बज्झंति**—बंध होता है, **सेसएसुं**—शेष कर्मों के बंध होने पर, **छ सत्तट्ठ**—छह, सात, आठ।

गाथार्थ—आयु का बंध हो, तब आठ, मोहनीय का बंध हो तब आठ अथवा सात, तीसरे वेदनीय कर्म के बंधकाल में छह, सात अथवा आठ और शेष कर्मों का बंध होने पर छह, सात अथवा आठ कर्म बंधते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मूल कर्मप्रकृति सम्बन्धी बंधसंवेध का निर्देश किया है। सम्बन्धित स्पष्टता करने के पूर्व मूल प्रकृति सम्बन्धी बंधस्थानों का निर्देश करते हैं—

आठप्रकृतिक, सातप्रकृतिक, छहप्रकृतिक और एकप्रकृतिक, इस प्रकार मूल प्रकृतियों के चार बंधस्थान होते हैं। इनमें आठप्रकृतिक बंधस्थान सब मूल प्रकृतियों का, सातप्रकृतिक बंधस्थान आयुकर्म के बिना सात का, छहप्रकृतिक बंधस्थान आयु एवं मोहनीय कर्म के बिना छह का तथा एकप्रकृतिक बंधस्थान में मात्र एक वेदनीय कर्म का ग्रहण होता है।

उक्त चार बंधस्थानों में से जब आयुकर्म बंधता हो तब अवश्य आठों कर्म बंधते हैं। क्योंकि तीसरे गुणस्थान के अतिरिक्त पहले से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक आयुकर्म का बंध होता है, वहाँ तक बंध में से एक भी कर्म कम नहीं होता है। अतएव शेष सात कर्म जब बंधते हों, तभी आयु का बंध होता है और जिन गुणस्थानों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक आयुकर्म का बंध संभव है उनमें शेष सात कर्म भी बंधते हैं। यही आशय 'आउम्मि अट्ठ' पद में गर्भित है।

'मोहेट्ठसत्त'—अर्थात् जब मोहनीय कर्म का बंध होता हो तब आठ अथवा सात कर्म बंधते हैं। उक्त विकल्पद्वय का कारण यह है कि जिस समय आयुकर्म के साथ सभी कर्म बंधते हैं तब आठ और आयु का बंध न हो उस समय उसके बिना सात कर्मों का बंध होता है।

आयुकर्म का निरन्तर बंध नहीं होता, परन्तु भुज्यमान आयु के तीसरे आदि भाग शेष हों तभी होता है। मोहनीय कर्म का बंध नौवें गुणस्थान पर्यन्त निरन्तर होता है। तीसरे गुणस्थान को छोड़कर सातवें तक आयु का बंध हो तब उसके साथ आठ कर्म का और आयु बंध न हो तब उसके बिना सात कर्म का बंध होता है। मिश्र, अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानों में आयु के बिना सात कर्मों का ही बंध होता है। इस प्रकार दोनों बंधस्थानों में मोहनीय के बंध का समावेश होता है। इसीलिये मोहनीय कर्म के बंधकाल में 'मोहेट्ठसत्त'—आठ और सात प्रकृतिक बंधस्थान के विकल्प का संकेत किया है।

तीसरा वेदनीयकर्म बंधता हो तब आठ, सात, छह या एक—इन चार बंधस्थानों में से किसी का भी बंध होता है। जिसका आशय यह है कि एक मात्र सातावेदनीय उपशान्तमोह आदि तीन गुणस्थान में, मोहनीय और आयु के बिना छह का दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में, मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में आयु के बिना सात तथा मिश्र के बिना आदि के सात गुणस्थानों तक जब आयु का बंध हो तब आठ और आयु-बंध न हो तब उसके बिना सात कर्म बंधते हैं। इन सभी बंधस्थानों में वेदनीय का बंध होता ही है।

शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म का बंध होता हो तब छह, सात और आठ प्रकृतिक इस प्रकार तीन बंधस्थानों में से किसी का भी बंध होता है। इन पांचों कर्मों का बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवें गुणस्थान तक होता है। इसमें मिश्र के सिवाय सातवें गुणस्थान तक जब आयु का बंध होता है तब आठ, उसके सिवाय सात, तथा तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होने से सात और दसवें गुणस्थान में आयु एवं मोह के बिना छह कर्म का बंध होता है। इन तीनों बंधस्थानों में उक्त पांच कर्मों के बंध का समावेश है ही।

उक्त समग्र कथन का संक्षेप में आशय इस प्रकार है—

मिश्रगुणस्थान के बिना अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त छह गुणस्थानों में जीव आयु के बिना सात अथवा आयु सहित आठ प्रकार के कर्म बांधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादर इन तीन गुणस्थानों में आयु बिना सात प्रकार के ही कर्म बंधरूप होते हैं। एक सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में आयु व मोहनीय के बिना छह कर्मों का बंध होता है। उपशांतमोह आदि तीन गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म का ही बंध होता है तथा अयोगिकेवलिगुणस्थान बंधरहित है—उसमें किसी प्रकृति का भी बंध नहीं होता है। दिग्दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

मूल कर्मों के बंधस्थानों का ज्ञापक प्रारूप

बंधस्थान	प्रकृति	अधिकारी
८ प्रकृतिक	ज्ञानावरणादि सब	मिश्र बिना अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त
७ प्रकृतिक	आयु बिना शेष सब	आदि के नौ गुणस्थान
६ प्रकृतिक	मोह और आयु बिना शेष छह	सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान
१ प्रकृतिक	मात्र वेदनीयकर्म	११वां, १२वां, १३वां गुणस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रकार से किस कर्म के बंध के साथ कितने कर्म के बंध होने का निर्देश करने के पश्चात् अब किस कर्म के उदय के साथ कितने कर्म का उदय एवं सत्ता होने का कथन करते हैं।

उदयसत्तासंवेध—

मोहस्सुदए अट्ठवि सत्तय लब्भन्ति सेसयाणुदए।
सन्तोइण्णाणि अघाइयाणं अड सत्त चउरो य ॥३॥

शब्दार्थ—मोहस्सुदय—मोहनीय का उदय हो, **अट्ठवि**—आठ भी, **सत्त**—सात, **य**—और, **लब्भन्ति**—होते हैं, **सेसयाणुदए**—शेष प्रकृतियों के उदय में, **सन्तोइण्णाणि**—सत्ता और उदय, **अघाइयाणं**—अघाति कर्मों के, **अड सत्त चउरो**—आठ, सात, चार, **य**—और।

गाथार्थ—मोहनीय का उदय हो तब आठ कर्म उदय और सत्ता में होते हैं। शेष (तीन घाति) कर्म के उदय में आठ और सात तथा अघातिकर्मों का उदय होने पर आठ, सात या चार कर्म उदय और सत्ता में होते हैं।

विशेषार्थ—मूल कर्मप्रकृतियों में से किस प्रकृति के उदय रहते कितने मूलकर्म उदय एवं सत्ता में सम्भव हैं ? इसका गाथा में संकेत किया है। विशेषता के साथ जिसका स्पष्टीकरण करने के पूर्व उनके उदयस्थानों एवं सत्तास्थानों का निर्देश करते हैं।

उदयस्थान—मूल प्रकृतियों की अपेक्षा आठप्रकृतिक, सातप्रकृतिक एवं चारप्रकृतिक इस प्रकार तीन उदयस्थान होते हैं। आठप्रकृतिक उदयस्थान में ज्ञानावरणादि सब मूल प्रकृतियों का, सातप्रकृतिक में मोहनीय के बिना शेष सात का और चारप्रकृतिक उदयस्थान में चार अघातिकर्मों का ग्रहण होता है।

सत्त्वस्थान—उदयस्थान की तरह मूलकर्म प्रकृतियों के आठ-प्रकृतिक, सातप्रकृतिक और चारप्रकृतिक ये तीन सत्त्वस्थान होते हैं। आठप्रकृतिक सत्त्वस्थान में सब मूलकर्मों की, सातप्रकृतिक सत्त्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में मोहनीय के बिना सात की और चारप्रकृतिक सत्त्वस्थान में चार अघातिकर्मों की सत्ता है।

अब इनके उदयसत्तासंवेध का विचार करते हैं—

मोहनीयकर्म का उदय सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त होता है, अतएव मोहनीय का जब उदय हो तब आठों कर्मों का उदय और सत्त्व होता है। एक भी कर्म कम नहीं होता है।

मोहनीयकर्म यह घातिकर्म है। अतएव उक्त से शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन में से किसी भी कर्म का उदय हो तब आठ और सात कर्म उदय एवं सत्ता में होते हैं। इन तीन घाति-कर्मों का उदय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है, वहाँ तक आठ और सात ये दो उदयस्थान और सत्तास्थान होते हैं। उनमें भी दसवें गुणस्थान पर्यन्त आठ का उदय और सत्त्व होता है। ग्यारहवें गुण-स्थान में सात का उदय एवं आठ की सत्ता तथा बारहवें गुणस्थान में सात का उदय और सात का सत्त्व होता है।

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र में से किसी भी अघातिकर्म का उदय होने पर आठ, सात और चार इन तीन में से कोई भी स्थान उदय और सत्ता में होता है। अघातिकर्मों का उदय चौदहवें गुण-स्थान पर्यन्त होता है, वहाँ तक उक्त तीन उदयस्थान संभव हैं। उनमें से दसवें गुणस्थान पर्यन्त आठ का उदय और सत्त्व, ग्यारहवें में सात का उदय एवं आठ का सत्त्व, बारहवें में मोहनीय के बिना सात का उदय तथा सात का सत्त्व एवं तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में घातिचतुष्क सिवाय शेष चार अघातिकर्म का उदय और सत्त्व होता है।

इस प्रकार उदय का उदय तथा सत्ता के साथ संवेध जानना चाहिये। अब उदय और सत्ता के साथ सत्ता के संवेध का विचार करते हैं—

मोहनीयकर्म की जहाँ तक सत्ता होती है वहाँ तक उदय आठ अथवा सात कर्मों का होता है। वह इस प्रकार—सूक्ष्मसंपरायगुण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर्यन्त आठ का और उपशान्तमोहगुणस्थान में सात का उदय होता है, सत्ता में तो आठों कर्म होते हैं। क्योंकि मोहनीयकर्म की सत्ता रहने तक दूसरे सब कर्म सत्ता में अवश्य होते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय की सत्ता होने पर सात अथवा आठ कर्मों का उदय एवं सत्त्व होता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त आठ का उदय और सत्त्व, उपशांतमोह में सात का उदय और आठ का सत्त्व तथा क्षीणमोह-गुणस्थान में सात का उदय और सात का सत्त्व होता है।

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघातिकर्मों में से किसी भी कर्म की जहाँ तक सत्ता होती है, वहाँ तक आठ, सात अथवा चार का उदय और सत्त्व होता है। इनमें से आठ और सात के उदय एवं सत्ता का विचार पूर्ववत् कर लेना चाहिए और चार का उदय एवं सत्त्व तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में होता है।

इस प्रकार से उदय और सत्ता का संवेध जानना चाहिये। उक्त समस्त कथन का सारांश इस प्रकार है—

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तक आठ मूलकर्म प्रकृतियों का, उपशांत-मोह और क्षीणमोह इन दो गुणस्थानों में मोहनीय के बिना सात का तथा सयोगि और अयोगि इन दोनों गुणस्थानों में चार अघातिकर्मों का उदय जानना चाहिये।

उपशांतमोहगुणस्थान पर्यन्त आठों प्रकृतियों की, क्षीणमोह गुणस्थान में मोहनीय के बिना सात कर्मों की तथा सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन दोनों गुणस्थानों में चार अघातिकर्मों की सत्ता होती है।

अब उदय का बंध के साथ संवेध का निरूपण करते हैं।

उदय-बंध संवेध

बंधइ छ सत्त अट्ठ य मोहुदए सेसयाण एक्कं च।
पत्तेयं संतेहिं बंधइ एगं छ सत्तट्ठ ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**बंधइ**—बंध होता है, **छ सत्त अट्ठ**—छह, सात, आठ कर्म, **य**—और, **मोहुदए**—मोहनीय का उदय होने पर, **सेसयाण**—शेष का, **एक्कं**—एक के, **च**—और, **पत्तेयं**—प्रत्येक की, **संतेहिं**—सत्ता होने पर, **बंधइ**—बंध होता है, **एगं छ सत्तट्ठ**—एक, छह, सात, आठ।

गाथार्थ—मोहनीय का उदय होने पर छह, सात और आठ कर्म का बंध होता है और शेष कर्मों का उदय होने पर एक, छह, सात और आठ का भी बंध होता है। एक के बंध में मोह के बिना शेष (सात) का उदय होता है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में से किसी भी कर्म (प्रत्येक) की सत्ता होने पर एक, छह, सात और आठ में से किसी भी बंधस्थान का बंध होता है।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म का जब उदय हो तब यथायोग्य गुणस्थानानुसार छह, सात अथवा आठ इन तीन बंधस्थानों में से किसी भी एक का बंध होता है। जिसका आशय यह है कि मोहनीय का उदय दसवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। उसमें से तीसरे गुणस्थान के बिना आदि के सात गुणस्थान पर्यन्त आयु के बंधकाल में आठ का और आयु का बंध न हो तब तथा तीसरे, आठवें, नौवें गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होने से सात का बंध होता है और दसवें गुणस्थान में आयु एवं मोहनीय के बिना छह का बंध होता है।

मोहनीय के बिना शेष सात कर्मों में से किसी भी कर्म का उदय हो तब एक का बंध होता है तथा गाथोक्त 'य—च' कार द्वारा ग्रहण किये गए छह, सात और आठ में से किसी का भी बंध होता है।

ज्ञानावरणादि तीन घातिकर्मों का उदय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त और चार अघातिकर्मों का उदय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है जिससे चारों बंधस्थान घटित हो सकते हैं। उनमें से मोह के बिना सात कर्मों में से किसी का भी उदय होने पर छह, सात और आठ का बंध पूर्वकथनानुसार जानना चाहिये।

तीन घातिकर्मों का उदय होने पर एक का बंध ग्यारहवें और

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

बारहवें गुणस्थान में और अघाति चार कर्मों में से किसी का उदय रहते एक का बंध ग्यारहवें से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है।

इस प्रकार उदय का बंध के साथ संवेध का अभिप्राय जानना चाहिये। अब विभक्ति का व्यत्यय करके गाथा के पूर्वार्ध द्वारा बंध का उदय के साथ संवेध का दिग्दर्शन कराते हैं—

छह, सात अथवा आठ के बंध में मोहनीय का उदय होता है। क्योंकि आठ का बंध (मिश्र के अलावा) पहले मिथ्यात्व से सातवें अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त, सात का बंध अनिवृत्तिबादरसंपराय-गुणस्थान तक और छह का बंध सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में होता है और मोहनीय का उदय दसवें सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त अवश्य होता है, अतएव छह, सात अथवा आठ के बंध में मोहनीय का उदय होता है तथा आठ, सात, छह या एक के बंध में शेष कर्मों में से किसी का भी उदय होता है। उनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का उदय क्षीणमोह पर्यन्त एवं वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र का उदय अयोगिकेवलीगुणस्थान पर्यन्त होता है तथा एक का बंध उपशांतमोहादि में होता है, जिससे शेष कर्मों का उदय सात, आठ, छह और एक के बंध में भी होता है।

इस प्रकार बंध का उदय के साथ संवेध का कथन जानना चाहिये।

अब गाथा के उत्तरार्ध द्वारा बंध के साथ सत्ता के संवेध का विचार करते हैं—

आठ कर्मों में से किसी भी कर्म की सत्ता होने पर आठ, सात, छह या एक प्रकृतिक इन चार में से किसी भी बंधस्थान का बंध होता है। तात्पर्य यह है कि किसी भी एक कर्म की सत्ता होने पर कौनसा बंधस्थान होता है इसका जब विचार किया जाये तब कहा जा सकता है कि एक-एक कर्म की सत्ता होने पर एक, छह, सात और आठ प्रकृतिक यह चारों प्रकार का बंध संभव है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय की सत्ता उपशान्तमोहगुणस्थान तक, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की सत्ता क्षीणमोह पर्यन्त और वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र की सत्ता अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त होती है तथा आठों कर्मों का बंध मिश्र के बिना अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त, सात का बंध अनिवृत्तिबादरसंपराय पर्यन्त, छह का बंध सूक्ष्मसंपराय में और एक का बंध ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक होता है। इसलिये सभी कर्मों की सत्ता होने पर चारों प्रकृतिक बंध-प्रकार सम्भव है। उदाहरणार्थ मोहनीय की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक होने से और वहां तक यथासंभव चारों बंधस्थान होने से मोहनीय की सत्ता होने से चारों बंधस्थान घटित होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये।

इस तरह बंध का सत्ता के साथ संवेध का विचार जानना चाहिये। अब बंध का उदय के साथ संवेध का निरूपण करते हैं।

बन्ध-उदय संवेध—

सत्तट्ठ छ बंधेसु उदओ अट्ठण्ह होइ पयडीणं।
सत्तण्ह चउण्हं वा उदओ सायस्स बंधंमि ॥५॥

शब्दार्थ—**सत्तट्ठ छ बंधेसु**—सात, आठ और छह का बन्ध होने पर, **उदओ**—उदय, **अट्ठण्ह**—आठ का, **होइ**—होता है, **पयडीणं**—मूलकर्म प्रकृतियों का, **सत्तण्ह चउण्हं**—सात का, चार का, **वा**—अथवा, **उदओ**—उदय, **सायस्स**—सातावेदनीय का, **बंधमि**—बंध हो।

गाथार्थ—सात, आठ अथवा छह का बंध होने पर आठ कर्म प्रकृतियों का उदय होता है और मात्र सातावेदनीय का बन्ध हो तब सात या चार का उदय होता है।

विशेषार्थ—सात, आठ या छह प्रकृतिक इन तीन बंधस्थानों में से किसी भी एक का बंध होने पर आठों कर्म प्रकृतियों का अवश्य उदय होता है। क्योंकि आठों कर्मों का उदय दसवें गुणस्थान पर्यन्त होता है और उक्त तीनों बंधस्थान भी वहीं तक संभव हैं तथा मात्र साता-वेदनीय का बंध होने पर सात या चार प्रकृतियों का उदय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि सात कर्म का उदय ग्यारहवें तथा बारहवें और चार का उदय तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में होता है। अतएव मात्र साता का बंध होने पर यही दो उदयस्थान सम्भव हैं।[1]

इस प्रकार से मूल प्रकृतियों सम्बन्धी बंध, उदय और सत्ता के संवेध का कथन जानना चाहिये। इस कथन में बंध के साथ बंध के संवेध, उदय के साथ उदय के संवेध, सत्ता के साथ सत्ता के संवेध, बंध के साथ उदय और सत्ता के संवेध, उदय और सत्ता के साथ बंध के संवेध का विचार किया है। जिनका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है—

१. बंध के साथ बंध का संवेध

नौवें गुणस्थान तक प्रति समय आयु के बिना सातों कर्म बंधते हैं और आयुकर्म तीसरे गुणस्थान के सिवाय आदि के सात गुणस्थानों तक भुज्यमान भव की आयु के तीसरे आदि भागों के प्रारम्भ में ही बंधता है, अतएव जब आयु का बंध हो तब तीसरे के सिवाय एक से लेकर सात गुणस्थानों में आठों कर्म अवश्य बंधते हैं।

मोहनीयकर्म का नौवें गुणस्थान तक बंध होता है। इसलिये मोहनीय का बंध हो तब मिश्र के सिवाय पहले से सातवें गुणस्थान तक आयु के बंधकाल में आठ तथा शेष काल एवं तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु के बिना सात कर्मों का बंध होता है।

वेदनीयकर्म तेरहवें गुणस्थान तक बंधता है। जिससे जब वेदनीयकर्म का बंध होता हो तब तीसरे के सिवाय आयु के बंधकाल में आदि के सात गुणस्थानों के आठ, शेष काल एवं तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु के बिना सात तथा दसवें गुणस्थान में मोहनीय का भी बंध न होने से आयु और मोहनीय के बिना छह एवं ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक एक वेदनीय का ही बंध होता है।

---

१ यहाँ मात्र सातावेदनीय का बंध ही विवक्षित है। वैसे तो सामान्यतः साता का बंध पहले से तेरहवें गुणस्थान तक होता है और वहाँ तक तो तीनों उदयस्थान संभव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष ज्ञानावरणादि पाँचों कर्म दशवें गुणस्थान तक बंधते हैं। अतएव इन पाँच में से ज्ञानावरण आदि किसी भी एक कर्म का बंध हो तब तीसरे के सिवाय पहले से लेकर सातवें गुणस्थान तक आठ अथवा सात और तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु के बिना सात और दशवें गुणस्थान में मोहनीय और आयु के बिना छह कर्म बंधते हैं।

२. उदय के साथ उदय का संवेध

आठों मूलकर्मों का उदय दसवें गुणस्थान तक होता है, इसलिये मोहनीय कर्म का उदय हो वहाँ तक आठों कर्मों का और ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं अंतराय का उदय बारहवें गुणस्थान तक होता है, जिससे इन तीन में से किसी भी कर्म का उदय हो तब दसवें गुणस्थान तक आठ का तथा ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय का उदय न होने से शेष सात कर्मों का उदय होता है।

वेदनीय आदि चार अघातिकर्मों का उदय चौदहवें गुणस्थान तक होने से इन चार में के किसी भी कर्म का उदय हो तब दसवें तक आठ का, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय के बिना सात का तथा तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में वेदनीय आदि चार अघातिकर्मों का ही उदय होता है।

३. सत्ता के साथ सत्ता का संवेध

ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्मों की सत्ता होती है। अतएव मोहनीय की सत्ता हो वहाँ तक आठों की और शेष तीन घाति कर्मों की सत्ता बारहवें गुणस्थान तक होती है। इसलिये उनमें के ज्ञानावरण आदि किसी की भी सत्ता हो तब ग्यारहवें गुणस्थान तक आठ की और बारहवें में मोहनीय के सिवाय सात की सत्ता होती है।

चारों अघातिकर्मों की सत्ता चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होने से उनमें के किसी भी कर्म की सत्ता हो तब ग्यारहवें गुणस्थान तक आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की, बारहवें में मोहनीय के सिवाय सात की और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाति कर्मों की ही सत्ता होती है।

४. बन्ध के साथ उदय और सत्ता का संवेध

दसवें गुणस्थान तक उदय और सत्ता में आठ, ग्यारहवें में उदय में मोहनीय के बिना सात और सत्ता में आठ एवं बारहवें में उदय एवं सत्ता में मोहनीय के बिना सात और बाद के दो गुणस्थानों (तेरहवें, चौदहवें) में उदय और सत्ता में चार कर्म होते हैं।

उनमें तीसरे के सिवाय पहले से सातवें गुणस्थान तक में आयु के बंधकाल में आठ के बंध में और इन्हीं गुणस्थानों में शेष काल एवं तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में सात के बंध में और दसवें गुणस्थान में मोहनीय एवं आयु के बिना छह के बन्ध में आठ का उदय और आठ की ही सत्ता होती है।

एक का बन्ध ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक होने से एक के बन्ध में ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय के बिना सात का उदय और आठ की सत्ता, बारहवें में मोहनीय के बिना सात का उदय और सात की सत्ता तथा तेरहवें गुणस्थान में चार का उदय और चार की सत्ता होती है।

५. उदय और सत्ता के साथ बन्ध का संवेध

दसवें गुणस्थान तक उदय और सत्ता में आठों कर्म होने से आठ के उदय में आयुष्य के बन्धकाल में तीसरे के सिवाय पहले से सातवें गुणस्थान तक आठ और इन्हीं गुणस्थानों में शेष काल में एवं तीसरे, आठवें और नौवें में सात तथा दसवें में मोहनीय व आयु के बिना छह कर्मों का बन्ध होता है। जिससे आठ के उदय में यह तीन बन्धस्थान होते हैं।

आठ की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान में भी होती है। इसलिये आठ की सत्ता में दसवें गुणस्थान तक उपर्युक्त तीन तथा ग्यारहवें में वेदनीय रूप एक कर्म का, इस तरह कुल चार बन्धस्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय के बिना सात के उदय में ग्यारहवें और बारहवें में तथा सात की सत्ता केवल बारहवें गुणस्थान में होने से सात की सत्ता में वेदनीय कर्म रूप एक प्रकृति का एक ही बन्धस्थान होता है।

तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में उदय और सत्ता चार की होती है। अतएव तेरहवें गुणस्थान में चार का उदय तथा सत्ता में एक प्रकृति रूप वेदनीय का एक बन्धस्थान होता है और चौदहवें गुणस्थान में बन्ध का अभाव है।

उक्त समग्र कथन का दर्शक स्वामी एवं काल सहित प्रारूप पृष्ठ १७ पर देखिए।

मूल प्रकृतियों के उक्त संवेधों के गुणस्थानों और जीवस्थानों की अपेक्षा स्वामित्व विकल्प इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थानापेक्षा—तीसरे के सिवाय पहले से लेकर सातवें इस तरह छह गुणस्थानों में जब आयु का बन्ध हो तब आठ का बन्ध, आठ का उदय, आठ की सत्ता तथा शेष काल में सात का बन्ध, आठ का उदय और आठ की सत्ता, इस प्रकार दो-दो भंग होने से कुल बारह तथा तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में सात का बन्ध, आठ का उदय और आठ की सत्ता, दसवें गुणस्थान में छह का बन्ध, आठ का उदय और आठ की सत्ता, ग्यारहवें गुणस्थान में एक का बन्ध, सात का उदय, आठ की सत्ता, बारहवें गुणस्थान में एक का बन्ध, सात का उदय और सात की सत्ता, तेरहवें गुणस्थान में एक का बन्ध, चार का उदय और चार की सत्ता एवं चौदहवें गुणस्थान में अबन्ध, चार का उदय, चार की सत्ता। इस तरह इन आठ गुणस्थानों में प्रत्येक का एक-एक भंग होने से कुल आठ। इस प्रकार चौदह गुणस्थानों सम्बन्धी मूल कर्मों के कुल संवेध विकल्प १२+८= २० बीस होते हैं।

जीवस्थानापेक्षा—जीवस्थानों के चौदह भेदों के नाम पूर्व में बताये जा चुके हैं। उनमें से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में सभी गुणस्थान मानें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	बन्ध	उदय	सत्ता	स्वामी	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
१	८ का	८ का	८ की	तीसरे के बिना आयु के बन्धकाल में एक से सात गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
२	७ का आयु बिना	८ का	८ की	आयुष्य के अबन्धकाल में, तीसरे के सिवाय सात और तीसरे, आठवें नौवें गुणस्थान में।	,,	अन्तमुहूर्त न्यून पूर्व-कोटि का तीसरा भाग अधिक, छह मास न्यून तेतीस साग-रोपम
३	६ का मोह और आयु के बिना छह	८ का	८ की	१०वां गुणस्थान	एक समय	अन्तमुहूर्त
४	१ का वेदनीय का	७ का	८ की	११वां गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	,,
५	,,	,,	७ की	१२वां गुणस्थान	,,	,,
६	,,	४ का अघाति कर्मों का	४ की	१३वां गुणस्थान	,,	देशोनपूर्वकोटि वर्ष
७	अबंध	,,	,,	१४वाँ गुणस्थान	पंच ह्रस्वाक्षर प्रमाण	जघन्यवत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो सात और भावमन न होने से केवली भगवन्तों को संज्ञा में ग्रहण न करें तो प्रथम पाँच संवेध विकल्प संभव हैं।

शेष तेरह जीवस्थानों में आयु के बन्धकाल में आठ का बन्ध, आठ का उदय और आठ की सत्ता तथा शेषकाल में सात आठ का उदय, आठ की सत्ता ये दो-दो भंग घटित होने से कुल छब्बीस। इस तरह चौदह जीवस्थानों संबन्धी कुल ७+२६=३३ अथवा ५+२६=३१ संवेध विकल्प होते हैं।

इस प्रकार मूल कर्म प्रकृतियों सम्बन्धी बंध, उदय और सत्ता विषयक संवेध निरूपण करने के पश्चात् अब मूल कर्मों का स्थान रूप में विचार करते हैं।

मोहनीय, नाम कर्म व्यतिरिक्त शेष छह कर्मों के स्थान

दो संतट्ठाणाइं बंधे उदए य ठाणयं एक्कं।
वेयणियाउयगोए एगं नाणंतराएसु ॥६॥

शब्दार्थ— **दो**—दो, **संतट्ठाणाइं**—सत्तास्थान, **बंधे उदए**—बंध और उदय में, **य**—और, **ठाणयं**—स्थान, **एक्कं**—एक, **वेयणियाउयगोए**—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में, **एगं**—एक, **नाणंतराएसु**—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म में।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में सत्तास्थान दो और बंध तथा उदय में एक-एक स्थान है। ज्ञानावरण और अंतराय का तीनों में एक स्थान होता है।

विशेषार्थ—एक साथ दो, तीन आदि प्रकृतियों के समुदाय को बंधादि में होने को स्थान कहते हैं।

वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में से प्रत्येक के दोप्रकृतिक, एकप्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—वेदनीय की दोनों प्रकृतियाँ अयोगिकेवली के द्विचरम समय तक सत्ता में होती हैं और द्विचरम समय में दोनों में से किसी भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक की सत्ता नष्ट होती है तब चरम समय में एक की सत्ता होती है। इस प्रकार वेदनीय में दो और एक प्रकृतिक यह दो सत्तास्थान होते हैं।

आयुकर्म में परभवायु का बंध न होने तक एक की सत्ता और परभवायु का बंध होने के पश्चात् बंधी हुई आयु का जब तक उदय न हो, वहाँ तक आयुद्वय की सत्ता होती है।

गोत्रकर्म में तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव उच्चगोत्र की उद्वलना करे तब अथवा अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में नीचगोत्र का क्षय करे तब एक (उच्च) गोत्र की सत्ता होती है। इसके अतिरिक्त सर्वदा दोनों गोत्र कर्म प्रकृतियों की सत्ता होती है।

उक्त तीनों कर्मों के बंध एवं उदय में तो उनकी एक-एक प्रकृति का ही बंध और उदय होने से एक-एक ही स्थान होता है। क्योंकि उन कर्मों की एक साथ दो, तीन प्रकृतियों का बंध या उदय नहीं होता है।

ज्ञानावरण और अंतराय इन दोनों का बंध, उदय और सत्ता में पाँच-पाँच प्रकृति रूप एक ही स्थान होता है। क्योंकि इन दोनों कर्मों की पाँचों प्रकृतियाँ एक साथ बंध, उदय और सत्ता को प्राप्त होती है।

अब उक्त स्थानों के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार करते हैं—

नाणंतरायबंधा आसुहुमं उदयसंतया खीणं।
आइमदुगचउसत्तम नारयतिरिमणुसुराऊणं ॥७॥

शब्दार्थ—**नाणंतरायबंधा**—ज्ञानावरण और अंतराय का बंध, **आसुहुमं**—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानपर्यन्त, **उदयसंतया**—उदय और सत्ता, **खीणं**—क्षीणमोहगुणस्थान तक, **आइमदुगचउसत्तम**—पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और सातवें गुणस्थान तक **नारयतिरिमणुसुराऊणं**—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवायु का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—ज्ञानावरण और अंतराय का बंध सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त तथा उदय और सत्ता क्षीणमोहगुणस्थान पर्यन्त होती है। पहले, दूसरे, चौथे और सातवें गुणस्थान तक अनुक्रम से नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवायु का बंध होता है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण और अंतराय इन दोनों कर्मों की पाँच-पाँच प्रकृतियों का बंध सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त ही होता है—'नाणंतरायबंधा आसुहुमं।' इन दोनों कर्मों की पाँच-पाँच प्रकृतियों का एक साथ बंध होने एवं एक साथ ही बंधविच्छेद होने से पाँच-पाँच प्रकृति रूप एक-एक ही बंधस्थान होता है तथा दोनों कर्मों की पाँचों प्रकृतियों का उदय एवं सत्ता क्षीणमोह पर्यन्त होती है, आगे के गुणस्थानों में नहीं। इस प्रकार उदय और सत्ता में पाँचों प्रकृतियाँ साथ ही होने से और साथ ही क्षय होने से इन दोनों कर्मों का उदयस्थान एवं सत्तास्थान भी पाँच-पाँच प्रकृति रूप ही होता है।

आयुकर्म के विषय में गुणस्थानापेक्षा बंध, उदय और सत्ता सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस प्रकार है—पहले मिथ्यादृष्टिगुणस्थानपर्यन्त नरकायु का, तिर्यंचायु का सासादन गुणस्थान पर्यन्त, मनुष्यायु का चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त और देवायु का सातवें अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त बंध होता है तथा उदय एवं सत्ता विषयक स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नारयसुराउ उदओ चउ पंचम तिरि मणुस्स चोद्दसमं।
आसम्मदेसजोगी उवसंता संतयाऊणं ॥८॥

शब्दार्थ—**नारयसुराउ**—नरकायु और देवायु का, **उदओ**—उदय, **चउ**—चौथे गुणस्थान, **पंचम**—पाँचवें, **तिरि**—तिर्यंचायु, **मणुस्स**—मनुष्यायु, **चोद्दसमं**—चौदहवें गुणस्थान, **आसम्मदेसजोगी**—सम्यक्त्व, देशविरत, अयोगिकेवली, **उवसंता**—उपशांतमोह, **संतयाऊणं**—आयु की सत्ता।

गाथार्थ—नरकायु और देवायु का चौथे गुणस्थान तक, तिर्यंचायु का पाँचवें गुणस्थान तक और मनुष्यायु का चौदहवें गुणस्थान तक उदय होता है तथा नरकायु की सम्यक्त्व गुणस्थान तक, तिर्यंचायु

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

की पाँचवें गुणस्थान तक, मनुष्यायु की अयोगिकेवली गुणस्थान तक और देवायु की उपशांतमोह गुणस्थान तक सत्ता होती है।

विशेषार्थ—गाथा में आयुकर्म के भेदों के उदय एवं सत्ता का निर्देश किया है—

देवों और नारकों के आदि के चार गुणस्थान होने से नरकायु और देवायु का उदय चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक तथा तिर्यंचायु का उदय पाँचवें देशविरत गुणस्थान पर्यन्त होता है। क्योंकि तिर्यंचों में आदि के पाँच गुणस्थान होते हैं और मनुष्यों में सभी गुणस्थान सम्भव होने से मनुष्यायु का उदय चौदहवें अयोगिकेवलीगुणस्थान पर्यन्त होता है।

अब आयुचतुष्क की सत्ता का निरूपण करते हैं—

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान पर्यन्त नरकायु की, देशविरत पर्यन्त तिर्यंचायु की, अयोगिकेवली पर्यन्त मनुष्यायु की और उपशांतमोह गुणस्थान पर्यन्त देवायु का सत्ता[1] हो सकती है।

इस प्रकार से आयु के बंध, उदय और सत्ता का निर्देश करने के पश्चात् अब संवेध का निरूपण करते हैं।

आयुकर्म के संवेध—

अब्बंधे इगि संतं दो दो बद्धाउ बज्झमाणाणं।
चउसुवि एक्कस्सुदओ पण नव नव पंच इइ भेया ॥६॥

शब्दार्थ—**अब्बंधे**—आयु का बंध न हुआ हो, **इगि**—एक ही, **संतं**—सत्ता, **दो-दो**—दो-दो की, **बद्धाउ**—बद्धायुष्क के, **बज्झमाणाणं**—बध्यमान के,

१ ग्यारहवें गुणस्थान तक जो देवायु की सत्ता कही है, वह विवक्षाप्रधान दृष्टि की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि देवायु का बंध करके मनुष्य उपशम श्रेणी मांड़ सकता है और ग्यारहवें गुणस्थान तक जाता है। इसलिये देवायु की सत्ता की ग्यारहवें गुणस्थान तक विवक्षा की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउसुवि—चारों गतियों में, **एक्कस्सुदओ**—एक का उदय, **पण नव नव पंच**—पाँच, नौ, नौ, पाँच, **इइ**—यह, **भेया**—भेद, विकल्प, भंग।

गाथार्थ—आयु का बंध न हुआ हो वहाँ तक एक की तथा बद्धायुष्क के और बध्यमान के दो-दो आयु की सत्ता होती है। चारों गतियों में भुज्यमान एक-एक आयु का ही उदय होता है तथा चारों गति के अनुक्रम से पाँच, नौ, नौ, और पाँच संवेध-विकल्प होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में आयुकर्म के संवेधविकल्पों का संकेत करने के लिये कहा है कि चारों गति में जब तक परभव की आयु का बंध न हुआ हो, तब तक जीवों के उदय-प्राप्त भुज्यमान एक ही आयु सत्ता में होती है। किन्तु जिन्होंने परभव की आयु का बंध कर लिया हो अथवा जो बंध कर रहे हैं उनके अपनी भुज्यमान आयु एवं परभव की आयु इस तरह दो आयु सत्ता में होती हैं।

चारों गतियों में से जो जीव जिस-जिस गति में हो, उस गति के अनुरूप एक ही आयु का उदय होता है, किसी भी समय एक साथ दो आयु का उदय नहीं होता है। परभव की जिस आयु का बंध हुआ हो, उस गति में जाने पर उस आयु का उदय होता है।

तिर्यंच और मनुष्य सर्वत्र—चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं। अतएव उनके चारों आयु का तथा देव और नारक मनुष्य तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनको दो आयु का ही बंध होता है। उक्त कारण से नरक गति में आयु के पाँच, तिर्यंच गति में नौ, मनुष्य गति में नौ और देवगति में पाँच संवेधविकल्प होते हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नरकगति—नारकों के पारभविक आयु का बंध होने से पूर्व—

१. नरकायु का उदय और नरकायु की सत्ता यह विकल्प होता है और यह विकल्प नारकों के आदि के चार गुणस्थान होने से प्रथम चार गुणस्थानों में संभव है।

२. परभवायु का बंध करता हो तब तिर्यंचायु का बंध, नरकायु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उदय और तिर्यंच, नरकायु की सत्ता यह विकल्प होता है। यह विकल्प मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानों में संभव है। क्योंकि तिर्यंचायु का बंध आदि के दो गुणस्थानों में ही होता है।

३. मनुष्यायु का बंध, नरकायु का उदय और मनुष्यायु-नरकायु की सत्ता, यह विकल्प तीसरे गुणस्थान में आयु का बंध ही नहीं होने से पहले, दूसरे और चौथे, इन तीन गुणस्थानों में होता है। मनुष्यायु का बंध वहाँ तक ही होता है। इस प्रकार बंधकाल के दो विकल्प हुए।

आयु का बंध संपूर्ण होने के बाद—

४. नरकायु का उदय, तिर्यंच नरकायु की सत्ता, यह विकल्प पहले से चौथे गुणस्थान तक के चार गुणस्थानों में होता है। क्योंकि तिर्यंचायु का बंध करने के पश्चात् तीसरे या चौथे गुणस्थान में जाना सम्भव है।

५. नरकायु का उदय, मनुष्यायु-नरकायु की सत्ता यह विकल्प भी आदि के चार गुणस्थानों में होता है।

इस प्रकार नारकों के बंधकाल के पूर्व एक, बंधकाल के दो और बंधकाल के बाद के दो, इस तरह कुल पाँच विकल्प होते हैं।

देवगति—इसी प्रकार देवों में भी नरकायु के स्थान पर देवायु का प्रक्षेप करके पाँच भंगों पर विचार कर लेना चाहिये। वे इस प्रकार हैं—

१. देवायु का उदय, देवायु की सत्ता।

२. तिर्यंचायु का बंध, देवायु का उदय, तिर्यंच-देव आयु की सत्ता।

३. मनुष्यायु का बंध, देवायु का उदय, मनुष्य-देवायु की सत्ता।

४. देवायु का उदय, तिर्यंच-देवायु की सत्ता।

५. देवायु का उदय, मनुष्य-देवायु की सत्ता।

तिर्यंचगति—सम्बन्धी विकल्प इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. पारभविक आयु का बंध होने के पहले तिर्यंचों के तिर्यंचायु का उदय, तिर्यंचायु की सत्ता, यह विकल्प होता है और यह विकल्प आदि के पाँच गुणस्थानों में संभव है। क्योंकि तिर्यंचों के आदि के पाँच गुणस्थान होते हैं, शेष गुणस्थान नहीं होते हैं।

२. परभवायु के बंधकाल में नरकायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता। यह भंग मिथ्यादृष्टि के ही होता है। क्योंकि नरकायु का बंध, पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही होता है, अथवा

३. तिर्यंचायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंच आयु की सत्ता, यह विकल्व मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुण-स्थानों में होता है। इसका कारण यह है कि तिर्यंचायु का बंध आदि के दो गुणस्थानों में हो सकता है।

४. मनुष्यायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता। यह विकल्प भी आदि के दो गुणस्थानों में हो सकता है। क्योंकि अविरतसम्यग्दृष्टि या देशविरत तिर्यंच के देवायु का ही बंध होता है।

५. देवायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और देवायुतिर्यंचायु की सत्ता, यह विकल्प मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरतसम्यग्दृष्टि और देशविरत के होता है।

यह दो से पाँच तक के चार विकल्प परभव की आयु का बंध होता हो तब बंधकाल में होते हैं। सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुण-स्थान में आयु का बंध हो न होने से, उसके आयु के बंधकाल का कोई विकल्प नहीं होता है।

६. परभव की आयु का बंध हो जाने के बाद तिर्यंचायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता, यह विकल्प पहले से पाँचवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। इसका कारण यह है कि नरकायु का बंध होने के बाद सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति संभव है।

७. तिर्यंचायु का उदय तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. तिर्यंचायु का उदय, मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता।

९. तिर्यंचायु का उदय, देव-तिर्यंचायु की सत्ता।

ये तीनों विकल्प भी पहले से पांचवें गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। क्योंकि किसी भी आयु का बंध होने के बाद तिर्यंच सम्यक्त्व आदि प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार तिर्यंचों के आयु सम्बन्धी नौ विकल्प जानना चाहिये। अब मनुष्य सम्बन्धी विकल्पों का निर्देश करते हैं।

मनुष्यगति—सम्बन्धी विकल्प इस प्रकार हैं—

१. मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता। यह विकल्प अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त होता है। क्योंकि मनुष्यों के चौदह गुणस्थान हो सकते हैं।

२. परभवायु के बंधकाल में नरकायु का बंध, मनुष्यायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, यह विकल्प मिथ्यादृष्टि के होता है। इसका कारण यह है कि अन्यत्र नरकायु का बंध नहीं होता है।

३. तिर्यंचायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और तिर्यंच-मनुष्यायु की सत्ता, यह विकल्प मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के होता है, क्योंकि तिर्यंचायु का बंध प्रथम दो गुणस्थानों में ही होता है।

४. मनुष्यायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु की सत्ता, यह विकल्प भी आदि के दो गुणस्थानों तक ही होता है। क्योंकि मनुष्य को मनुष्यायु का बंध भी आदि के दो गुणस्थान तक ही होता है।

५. देवायु का बंध, मनुष्यायु का उदय, देव-मनुष्यायु की सत्ता, यह विकल्प सातवें अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त होता है। क्योंकि देवायु का बंध तीसरे गुणस्थान को छोड़कर सातवें तक होता है।

यह २ से ५ तक के चार विकल्प परभवायु के बंधकाल में होते हैं।

उपरत बंधकालापेक्षा शेष चार विकल्प इस प्रकार हैं—

६. परभवायु का बंध होने के बाद मनुष्यायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. मनुष्यायु का उदय, तिर्यंच-मनुष्यायु की सत्ता।

८. मनुष्यायु का उदय, मनुष्य-मनुष्यायु की सत्ता।

ये तीनों विकल्प अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त होते हैं। क्योंकि नरक, तिर्यंच या मनुष्य आयु का बंध करने के पश्चात् मनुष्य को, सम्यक्त्व देश-विरति अथवा सर्वविरति प्राप्त होना संभव है।

९. मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु की सत्ता, यह विकल्प उपशांतमोह गुणस्थान पर्यन्त होता है। क्योंकि देवायु का बंध होने के बाद मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और ग्यारहवां गुणस्थान उपशमश्रेणि की अन्तिम मर्यादा है।

इस प्रकार मनुष्यगति सम्बन्धी नौ भंग जानना चाहिये।

पूर्वोक्त देव-नारकाश्रयी पांच, पांच तथा तिर्यंच-मनुष्याश्रयी नौ-नौ विकल्पों को मिलाने पर आयुकर्म के अट्ठाईस भंग होते हैं।

अब दर्शनावरणकर्म के संवेध विकल्पों का प्रतिपादन करने के लिये, उसके बंध, उदय और सत्तास्थानों का कथन करते हैं।

दर्शनावरणकर्म के बंधादि स्थान

नव छच्चउहा बज्झइ दुगट्ठदसमेण दंसणावरणं।
नव बायरम्मि सन्तं छक्कं चउरो य खीणम्मि ॥१०॥

शब्दार्थ—**नव छच्चउहा**—नौ, छह और चार प्रकार से, **बज्झइ**—बंधता है, **दुगट्ठदसमेण**—दो, आठ और दसवें तक, **दंसणावरणं**—दर्शनावरणकर्म, **नव**—नौ, **बायरम्मि**—बादरसंपरायगुणस्थान में, **संतं**—सत्ता में, **छक्कं चउरो**—छह और चार, **य**—और, **खीणम्मि**—क्षीणमोहगुणस्थान में।

गाथार्थ—नौ, छह और चार प्रकार से दर्शनावरण कर्म अनुक्रम से दो, आठ और दसवें गुणस्थान तक बंधता है। नौ प्रकृतियाँ बादरसंपरायगुणस्थान में सत्ता में होती हैं तथा छह और चार की सत्ता क्षीणमोह गुणस्थान में होती है।

विशेषार्थ—गाथा में दर्शनावरणकर्म के बंध और सत्तास्थानों को बतलाकर उनके स्वामियों का निर्देश किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनावरण कर्म के नौ, छह और चार प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं। इनमें से नौ प्रकृति रूप बंधस्थान में दर्शनावरण कर्म की सभी उत्तर प्रकृतियां हैं और यह पहले मिथ्यादृष्टि एवं दूसरे सासादन-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती प्रत्येक जीव के बंधता है। स्त्यानर्द्धित्रिक रहित शेष छह प्रकृति रूप दूसरा बंधस्थान तीसरे सम्यक्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले भाग पर्यन्त होता है। क्योंकि इन गुणस्थानों में स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध नहीं होता है। स्त्यानर्द्धित्रिक और निद्राद्विक के बिना शेष चक्षुदर्शनावरण आदि चार प्रकृति रूप तीसरा बंधस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त होता है। यहाँ निद्राद्विक का भी बंध नहीं होता है। इस प्रकार दर्शनावरणकर्म के तीन बंधस्थान होते हैं और वे अनुक्रम से दूसरे, आठवें और दसवें गुणस्थान तक बंधते हैं।

बंधस्थान की तरह दर्शनावरणकर्म के नौ, छह और चार प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं। उनमें से नौ प्रकृतिक सत्तास्थान नौवें अनिवृत्तिबादरगुणस्थान के प्रथम भाग पर्यन्त सत्ता में होता है। यह कथन क्षपकश्रेणि की अपेक्षा जानना चाहिये। क्योंकि उपशम-श्रेणि में तो उपशांतमोहगुणस्थान पर्यन्त नौ प्रकृतियों की सत्ता होती है। क्षपकश्रेणि में नौवें गुणस्थान के पहले भाग में स्त्यानर्द्धि-त्रिक का क्षय होने के बाद नौवें के दूसरे भाग से लेकर क्षीणमोह-गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त छह प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। क्षीणमोह के द्विचरम समय में निद्राद्विक का सत्ता में से क्षय होने पर अंतिम समय में चक्षुदर्शनावरण आदि दर्शनावरण कर्म की चार प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं और वे चारों प्रकृतियाँ भी उसी क्षीणमोह-गुणस्थान के चरम समय में सत्ता में से क्षय हो जाने से, उसके अनन्त-रवर्ती गुणस्थानों (सयोगि, अयोगि केवली गुणस्थानों) में दर्शनावरण-कर्म सत्ता में नहीं रहता है।

इस प्रकार से दर्शनावरणकर्म के तीन बंधस्थान एवं तीन सत्ता-

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्थान और उनके स्वामियों को जानना चाहिये। अब इसी कर्म के तीन बंधस्थानों का जघन्य-उत्कृष्ट बंध का काल प्रमाण बतलाते हैं।

दर्शनावरणत्रिक का बंधकाल प्रमाण

नवभेए भंगतियं बे छावट्ठिउ छव्विहस्स ठिई।
चउ समयाओ अंतो अंतमुहुत्ताउ नव छक्के ॥११॥

शब्दार्थ—**नवभेए**—नौ के स्थान के, **भंगतियं**—तीन भंग, **बे**—दो, **छावट्ठिउ**—छियासठ, **छव्विहस्स**—छह प्रकार के, **ठिई**—स्थिति, **चउ**—चार के, **समयाओ**—समय से लेकर, **अंतो**—अन्तर्मुहूर्त, **अंतमुहुत्ताउ**—अन्तर्मुहूर्त से, **नव-छक्के**—नौ और छह में।

गाथार्थ—नौ के स्थान के अन्तर्मुहूर्त से लेकर अनादि-अनन्त आदि तीन भंग रूप, छह के स्थान का अन्तर्मुहूर्त से दो छियासठ सागरोपम और चार के स्थान का एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल होता है।

विशेषार्थ—गाथा में दर्शनावरणकर्म के तीन बंधस्थानों का जघन्य, उत्कष्ट बंधकाल प्रमाण इस प्रकार बताया है—

दर्शनावरणकर्म के नौप्रकृतिक बंधस्थान के कालापेक्षा तीन भंग होते हैं—१ अनादि-अनन्त, २. अनादि-सांत और ३. सादि-सांत। इनमें से अभव्य जीवों के कभी भी मिथ्यात्वभाव छोड़ने वाले नहीं होने से अनादि-अनन्त प्रमाण बंधकाल है। जिन भव्यों ने अभी तक मिथ्यात्वभाव नहीं छोड़ा है, किन्तु कालान्तर में मिथ्यात्वभाव को छोड़कर ऊपर के गुणस्थान को प्राप्त करेंगे, उनकी अपेक्षा अनादि-सांत बंधकाल है और सम्यक्त्व से गिरकर जो मिथ्यात्व को प्राप्त हुए उनकी अपेक्षा सादि-सान्त बंधकाल है और वह सादि-सांत काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तन प्रमाण जानना चाहिये। क्योंकि सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व को प्राप्त जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल और उत्कृष्ट से देशोन अर्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल परावर्तन जितने काल के अनन्तर पुनः सम्यक्त्वादि प्राप्त कर सकता है।

छह-प्रकृतिक बंध-स्थान का उत्कृष्ट निरन्तर बंधकाल एक सौ बत्तीस सागरोपम प्रमाण है। इसका कारण यह है कि मिश्र से अन्तरित क्षयोपशम सम्यक्त्व का उतना अवस्थान काल है। उतने काल के अनन्तर कोई क्षपकश्रेणि पर आरोहण करता है और कोई मिथ्यात्व को प्राप्त होता है और मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर अवश्य नौ-प्रकृतिक बंधस्थान का ही बन्ध होता है। छह के बंधस्थान का जघन्य बंधकाल अन्तर्मुहूर्त है।

चार-प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य बंधकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार-प्रकृतिक बंधस्थान जघन्य से एक समय उपशमश्रेणि में होता है। क्योंकि उपशमश्रेणी में अपूर्वकरण के दूसरे भाग के प्रथम समय में चार का बंधस्थान बाँध कर बाद के समय में कोई काल करके देवलोक में जाये तो वहाँ अविरत होकर छह प्रकृतियों का बंध करता है। इस अपेक्षा चार के बंधस्थान का एक समय जघन्यकाल है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होने का कारण यह है कि चार का बंध अपूर्वकरण के दूसरे भाग से दसवें गुणस्थान तक ही होता है और उसका समुदित काल भी अन्तर्मुहूर्त जितना ही है। इस प्रकार चार के बंधस्थान की जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त स्थिति है।

इस प्रकार दर्शनावरणकर्म के बंधस्थानों का काल प्रमाण जानना चाहिये। अब सत्तास्थानों के काल प्रमाण का निर्देश करते हैं।

दर्शनावरण के सत्तास्थानों का काल प्रमाण

दर्शनावरणकर्म का नौ-प्रकृतिक सत्तास्थान कालापेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त इस तरह दो प्रकार का है। किसी भी समय व्यवच्छेद होना संभव नहीं होने से अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और भव्यों के कालान्तर में क्षपकश्रेणि मांड़े, तब नौ की सत्ता का विच्छेद संभव होने से अनादि-सात काल है। किन्तु बंध की तरह सत्ता में सादि-सांत भंग संभव नहीं है। क्योंकि नौ के सत्तास्थान का विच्छेद स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय हो तब क्षपकश्रेणि में होता है और क्षपकश्रेणि से प्रतिपात नहीं होने से सादि-सांत भंग संभव नहीं है।

छह-प्रकृतिक सत्तास्थान का काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि क्षपकश्रेणि के नौवें गुणस्थान में स्त्यानर्द्धित्रिक की सत्ता का विच्छेद होने से बारहवें गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त छह की सत्ता होती है। उसका समुदित काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। क्षपकश्रेणि में मरण नहीं होने से छह की सत्ता का अन्तर्मुहूर्त से कम काल ही नहीं है। जघन्य और उत्कृष्ट काल समान ही है।

चार की सत्ता का एक समय जितना ही काल है और वह भी बारहवें गुणस्थान का चरम समय है।

इस प्रकार दर्शनावरण कर्म के बन्धस्थानों और सत्तास्थानों का काल प्रमाण है।

अब दर्शनावरणकर्म के उदयस्थानों का प्रतिपादन करते हैं।

दर्शनावरणकर्म के उदयस्थान

दंसण सनिद्ददंसणउदओ समयं तु होइ खीणो।
जाव पमत्तो नवण्ह उदओ छसु चउसु जा खीणो ॥१२॥

शब्दार्थ—**दंसण**—दर्शनावरणचतुष्क का, **सनिद्ददंसण**—निद्रासहित दर्शनावरण का, **उदओ**—उदय, **समयं**—एक समय, तु—अथवा, **होइ**—होता है, **जा**—पर्यन्त, **खीणो**—क्षीणमोह, **जाव**—तक, **पमत्तो**—प्रमत्तसंयत, **नवण्हं**—नौ का, **उदओ**—उदय, **छसु चउसु**—छह और चार का, **जा**—तक, **खीणो**—क्षीणमोह।

गाथार्थ—दर्शनावरणचतुष्क अथवा निद्रा सहित दर्शनावरण का एक साथ उदय क्षीणमोह पर्यन्त होता है। प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक नौ का तथा छह और चार का उदय क्षीणमोह तक होता है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—गाथा में दर्शनावरणकर्म के उदयस्थान और एक अनेक जीवापेक्षा उनके उदय होने के गुणस्थानों का निर्देश किया है जो इस प्रकार है—

दर्शनावरणकर्म के दो उदयस्थान हैं—एक साथ एक जीव के चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण इन चार का उदय होता है अथवा पाँच निद्राओं में से किसी भी एक निद्रा के साथ पाँच का उदय होता है। एक जीव के एक साथ दो आदि निद्राओं का उदय नहीं होता है। इस प्रकार चार का और पाँच[1] का यह दो उदयस्थान होते हैं। ये दोनों उदयस्थान क्षीणमोहगुणस्थान तक होते हैं।

इस प्रकार चार प्रकृति का समूह रूप अथवा निद्रा के साथ पाँच का समूह रूप उदयस्थान एक समय में एक जीव की अपेक्षा जानना चाहिये।

अब सामान्यतः अनेक जीवों की अपेक्षा उदयस्थानों का विचार करते हैं—

प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त दर्शनावरणकर्म की 'नवण्ह उदओ' —नौ प्रकृतियाँ उदय में होती हैं और उसके बाद स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय नहीं होने से छह का उदय क्षीणमोहगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त होता है और द्विचरम समय में निद्रा एवं प्रचला का उदय-विच्छेद होने पर चरम समय में चार का उदय होता है— 'छसु चउसु जा खीणो।'

---

१. यह विशेष समझना चाहिये कि क्षीणमोहगुणस्थान के चरम समय में निद्रा का उदय न होने से चारप्रकृतिक उदयस्थान ही होता है तथा निद्रा के उदय के साथ पाँच का उदयस्थान कर्मस्तव ग्रन्थ के अभिप्राया-नुसार कहा गया है। सत्कर्म ग्रन्थ आदि के अभिप्रायानुसार तो क्षपक-श्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान में चक्षुदर्शनावरण आदि चार प्रकृतियों का उदय होता है, निद्रा के साथ पाँच का नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से दर्शनावरणकर्म के उदयस्थानों का निर्देश करने के बाद अब बन्ध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध का कथन करते हैं।

दर्शनावरणकर्म का संवेध—

चउ पण उदओ बंधेसु तिसुवि अब्बंधगेवि उवसंते।
नव संतं अट्ठेवं उइण्ण संताइं चउ खीणे ॥१३॥
खवगे सुहुमंमि चउ बंधगंमि अबंधगंमि खीणम्मि।
छस्संतं चउरुदओ पंचण्हवि केइ इच्छंति ॥१४॥

शब्दार्थ—**चउ पण उदओ**—चार और पाँच का उदय, **बंधेसु तिसुवि**—तीनों ही बन्धस्थानों में, **अब्बंधगेवि**—अबंधक में भी, **उवसंते**—उपशांतमोह गुणस्थान में, **नव**—नौ, **संतं**—सत्ता, **अट्ठेवं**—इस प्रकार आठ भंग, **उइण्ण संताइं**—उदय और सत्ता, **चउ**—चार की, **खीणे**—क्षीणमोहगुणस्थान में।

खवगे—क्षपक श्रेणि में, **सुहुमंमि**—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में भी, **चउ बंधगंमि**—चार के बंध में, **अबंधगंमि**—अबंधक में, **खीणम्मि**—क्षीणमोह में, **छस्संतं**—छह की सत्ता, **चउरुदओ**—चार का उदय, **पंचण्हवि**—पाँच का भी, **केइ**—कोई, **इच्छंति**—मानते हैं।

गाथार्थ—तीनों ही बंधस्थानों में तथा अबंधक उपशांतमोह गुणस्थान में भी चार और पाँच का उदय तथा नौ की सत्ता होती है, जिससे आठ संवेध भंग होते हैं। चार का उदय और चार की सत्ता क्षीणमोहगुणस्थान में होती है।

क्षपकश्रेणि में चार के बंधक, सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तथा अबंधक क्षीणमोहगुणस्थान में छह की सत्ता एवं चार का उदय होता है। कोई आचार्य पाँच का भी उदय मानते हैं।

विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओं में दर्शनावरणकर्म के संवेध भंगों का निर्देश किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनावरणकर्म की नौ, छह और चार प्रकृतियों का जहाँ तक बंध होता है, वहाँ तक चक्षुदर्शनावरण आदि चार या निद्रा के साथ पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। जिससे छह भंग हो जाते हैं तथा दर्शनावरण कर्म के अबन्धक को उपशांतमोहगुणस्थान में चार या पाँच का उदय एवं नौ की सत्ता होती है। जिससे इन दो विकल्पों को पूर्वोक्त छह में मिलाने से कुल आठ भंग होते हैं। वे इस प्रकार—

१. नौ का बंध, चार का उदय और नौ की सत्ता, यह विकल्प निद्रा का उदय न होने की स्थिति में होता है।

२. नौ का बंध, पाँच का उदय और नौ की सत्ता, यह विकल्प निद्रा के उदय में होता है।

यह दोनों विकल्प मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान में होते हैं।

३. छह का बंध, चार का उदय और नौ की सत्ता, अथवा

४. छह का बंध, पाँच का उदय और नौ की सत्ता।

यह दोनों विकल्प तीसरे गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थान के पहले संख्यातवें भाग पर्यन्त होते हैं।

५. चार का बंध, चार का उदय और नौ की सत्ता, अथवा

६. चार का बंध, पाँच का उदय और नौ की सत्ता।

यह दो विकल्प उपशमश्रेणि में अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर दसवें गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होते हैं तथा उपशांतमोहगुणस्थान में बंध नहीं होने से—

७. चार का उदय, नौ की सत्ता, अथवा

८. पाँच का उदय, नौ की सत्ता,

यह दो विकल्प होते हैं।

इस प्रकार आठ विकल्प हुए और क्षीणमोहगुणस्थान के चरम समय में—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. चार का उदय, चार की सत्ता यह एक विकल्प होता है। यह नौवाँ भंग है।

क्षपकश्रेणि में दर्शनावरणकर्म की चार प्रकृतियों के बंधक को अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय होने के बाद और सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में छह की सत्ता और चार का उदय होता है, एवं दर्शनावरणकर्म के अबंधक क्षीणमोही के भी छह की सत्ता और चार का उदय होता है। जिससे यह दो विकल्प होते हैं—

१०. चार का बंध, चार का उदय, छह की सत्ता। यह विकल्प स्त्यानर्द्धित्रिक का सत्ता में से क्षय होने के बाद सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होता है तथा—

११. चार का उदय, छह की सत्ता। यह विकल्प क्षीणमोहगुण-स्थान में द्विचरम समय पर्यन्त होता है।

इस प्रकार ग्रन्थकार के मतानुसार दर्शनावरणकर्म के ग्यारह भंग जानना चाहिये।

अब एक मतान्तर का उल्लेख करते हैं कि कर्मस्तवकार आदि कितने ही आचार्य क्षपकश्रेणि के नौवें गुणस्थान में और द्विचरम समय पर्यन्त बारहवें गुणस्थान में निद्रा के साथ पाँच का उदय भी मानते हैं। जिससे उनके मतानुसार और भी दो विकल्प इस प्रकार होते हैं—

१२. चार का बंध, पांच का उदय, छह की सत्ता। यह विकल्प स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय होने के बाद सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त होता है।

१३. बंधविच्छेद के बाद पाँच का उदय, छह की सत्ता क्षीणमोह-गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त होती है।

इस तरह उनके मत से तेरह विकल्प होते हैं।

उक्त समग्र कथन का दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	बंध प्र०	उ० प्र०	स० प्र०	गुणस्थान
१	६	४	६	१, २
२	६	५	६	१, २
३	६	४	६	३, ४, ५, ६, ७, तथा ८वें के पहले संख्यात भाग
४	६	५	६	३, ४, ५, ६, ७ तथा ८वें के पहले संख्यात भाग
५	४	४	६	उपशम श्रेणि में ८वें के दूसरे भाग से लेकर १०वें के चरम समय पर्यन्त दोनों विकल्प
६	४	५	६	
७	×	४	६	उपशांतमोह गुणस्थान
८	×	५	६	,,
९	×	४	४	क्षीणमोह के चरम समय में
१०	४	४	६	क्षपक श्रेणि के नौवें दसवें गुण-स्थान में
११	×	४	६	क्षीणमोह के द्विचरम समय पर्यन्त
मतान्तर				
१२	४	५	६	क्षपकश्रेणि में स्त्यानर्द्धित्रिक के क्षय बाद अनिवृत्तिबादरसंपराय, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त
१३	×	५	६	क्षपकश्रेणि में क्षीणमोह के द्विचरम समय पर्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से दर्शनावरणकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का संवेध जानना चाहिये। अब गोत्रकर्म के संवेध विकल्पों का कथन करते हैं।

गोत्रकर्म के संवेध भंग—

बंधो आदुग दसमं उदओ पण चोद्दसं तु जा ठाणं।
निच्चुच्चगोत्तकम्माण संतया होइ सव्वेसु ॥१५॥
बंधइ ऊइण्णयं चिय इयरं वा दोवि संत चउ भंगा।
नीएसु तिसुवि पढमो अबंधगे दोण्णि उच्चुदए ॥१६॥

शब्दार्थ—बंधो—बंध, **आदुग दसमं**—दूसरे और दसवें गुणस्थान तक, **उदओ**—उदय, **पण**—पांचवें, **चोद्दसं**—चौदहवें, **तु**—और, **जा ठाणं**—गुणस्थान तक, **निच्चुच्चगोत्तकम्माण**—नीच और उच्च गोत्र कर्म का, **संतया**—सत्ता, **होइ**—होती है, **सव्वेसु**—सभी गुणस्थानों में।

बंधइ—बांधे, **ऊइण्णयं**—उदय-प्राप्त, **चिय**—इसी प्रकार, **इयरं**—इतर (उदय-अप्राप्त), **वा**—अथवा, **दोवि**—दोनों ही, **संत**—सत्ता, **चउभंगा**—चार भंग, **नीएसु**—नीच गोत्र में, **तिसुवि**—तीनों में, **पढमो**—पहला, **अबंधगे**—अबंधक के, **दोण्णि**—दो, **उच्चुदए**—उच्च गोत्र के उदय में।

गाथार्थ—नीच और उच्च गोत्र का बंध अनुक्रम से, दूसरे और दसवें गुणस्थान पर्यन्त और उदय पाँचवें तथा चौदहवें गुणस्थान तक होता है और सत्ता सभी गुणस्थानों में होती है।

उदयप्राप्त अथवा इतर गोत्रकर्म बांधे और दोनों गोत्र सत्ता में हों, उसके चार भंग होते हैं। तीन में नीचगोत्र और पहला भंग होता है, और अबंधक के उच्चगोत्र के उदय में दो भंग होते हैं।

विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओं में गोत्रकर्म के संवेध का निर्देश करने के प्रसंग में पहले बंध, उदय और सत्ता के स्वामियों को गुणस्थानापेक्षा बतलाकर फिर संवेध भंगों को बतलाया है।

बंध आदि के स्वामी इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचगोत्र का बंध दूसरे गुणस्थान पर्यन्त एवं उच्चगोत्र का बंध दसवें गुणस्थान पर्यन्त होता है तथा पांचवें गुणस्थान तक नीचगोत्र का और चौदहवें गुणस्थान तक उच्चगोत्र का उदय होता है तथा दोनों गोत्रकर्म की सत्ता चौदह गुणस्थानों में ही होती है। तात्पर्य यह है कि नीचगोत्रकर्म का बंध सासादन गुणस्थान तक और उदय देशविरत गुणस्थान पर्यन्त तथा उच्चगोत्रकर्म का बंध सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान तक और उदय अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है एवं दोनों गोत्रकर्म की सत्ता सभी चौदह गुणस्थानों में होती है।

इसी कारण गोत्रकर्म के संवेध भंग इस प्रकार होते हैं—

उदयप्राप्त उच्चगोत्र हो या नीचगोत्र और जो उदयप्राप्त हो उसी का बंध हो या इतर उदय-अप्राप्त का बंध हो और इन सब में सत्ता उच्चगोत्र, नीचगोत्र दोनों की हो तो चार भंग होते हैं और वे दूसरे से लेकर पांचवें गुणस्थान तक जानना चाहिये तथा यदि बंध, उदय और सत्ता इन तीनों स्थानों में नीचगोत्र हो तो उसका पहला भंग होता है एवं गोत्रकर्म का बंधविच्छेद होने के बाद उपशांत-मोहादि गुणस्थान में उच्चगोत्र के उदय में दो भंग होते हैं। इस तरह कुल मिलाकर सात भंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, नीचगोत्र की सत्ता। यह विकल्प उच्चगोत्र की उद्वलना करने के बाद तेजस्कायिक-वायुकायिक जीवों में और उस-उस भव में से निकलकर दूसरे भव में उत्पन्न हुए शेष तिर्यंचों में भी अल्पकाल (अन्तर्मुहूर्त्त काल) होता है।

२. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता।

३. नीचगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता। यह दोनों विकल्प मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में होते हैं, मिश्र आदि गुणस्थानों में नहीं होते हैं, क्योंकि उनमें नीचगोत्र का बंध नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता। यह विकल्प मिथ्यादृष्टि से लेकर देशविरतगुणस्थान पर्यन्त होता है। आगे के गुणस्थानों में नीचगोत्र का उदय नहीं होने से यह विकल्प संभव नहीं है।

५. उच्चगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता। यह विकल्प मिथ्यादृष्टि से सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त होता है, आगे के गुणस्थानों में गोत्रकर्म का बंध नहीं होने से संभव नहीं है।

६. उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता। यह विकल्प उपशांतमोहगुणस्थान से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त होता है।

७. उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता। यह विकल्प अयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में होता है।

उक्त समग्र कथन का दिग्दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

क्रम	बंध	उदय	सत्त्व	गुणस्थान
१.	नीच	नीच	नीच	१
२.	,,	,,	नीच-उच्च	१, २
३.	,,	उच्च	नीच-उच्च	१, २
४.	उच्च	नीच	नीच-उच्च	१, २, ३, ४, ५
५.	उच्च	उच्च	नीच-उच्च	१ से १० तक
६.	×	उच्च	नीच-उच्च	११, १२, १३ में व १४ के द्विचरम समय तक
७.	×	उच्च	उच्च	१४वें का अन्तिम समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से गोत्रकर्म के संवेध भंगों को जानना चाहिये। अब वेदनीयकर्म के संवेध का निरूपण करते हैं।

वेदनीय कर्म का संवेध—

तेरसमछट्ठएसुं सायासायाण बंधवोच्छेओ।
संत उइण्णाइ पुणो सायासायाई सव्वेसु ॥१७॥
बंधई उइण्णयं चिर इयरं वा दोवि संत चउ भंगा।
संतमुइण्णमबंधे दो दोण्णि दुसंत इइ अट्ठ ॥१८॥

शब्दार्थ—**तेरसमछट्ठएसुं**—तेरहवें और छठे गुणस्थान में, **सायासायाण**—साता और असाता का, **बंधवोच्छेओ**—बंधविच्छेद, **संतउइण्णाइ**—सत्ता और उदय में, **पुणो**—पुनः, **सायासायाई**—साता और असाता, **सव्वेसु**—सभी गुणस्थानों में।

बंधइ—बांधे, **उइण्णयं**—उदयप्राप्त को, **चिर**—इसी प्रकार, **इयरं**—इतर को, **वा**—अथवा, **दोवि**—दोनों ही, **संत**—सत्ता, **चउ भंगा**—चार भंग, **संतमुइण्णमबंधे**—बंधाभाव में, सत्ता और उदय में, **दो**—दो, **दोण्णि**—दो, **दुसंत**—दोनों की सत्ता, **इइ**—इस प्रकार, **अट्ठ**—आठ।

गाथार्थ—अनुक्रम से छठे और तेरहवें गुणस्थान में असाता और साता का बंधविच्छेद होता है। सत्ता और उदय में साता-असाता वेदनीय कर्म सभी गुणस्थानों में होता है।

उदयप्राप्त अथवा इतर—उदय-अप्राप्त का बंध हो और सत्ता में दोनों हों तो उसके चार भंग होते हैं। बंध के अभाव में (अयोगि के चरम समय में) सत्ता और उदय में (एक हो), उसके दो और (उदय में एक और सत्ता में दोनों हों) उसके दो, इस प्रकार कुल आठ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—वेदनीयकर्म के संवेध भंग बताने के संदर्भ में पहली गाथा में गुणस्थानापेक्षा स्वामित्व का और दूसरी गाथा में संभव विकल्पों का निर्देश किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातावेदनीय का बंधविच्छेद तेरहवें सयोगिकेवलीगुणस्थान में और असातावेदनीय का छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान में होता है। किन्तु इन दोनों की सत्ता एवं उदय सभी—चौदहों गुणस्थान में संभव है। इस अपेक्षा से संवेध विकल्प निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

सातावेदनीय का उदय हो अथवा असातावेदनीय का और जिसका उदय हो उसी का बंध हो अथवा जिसका उदय हो उसका बंध न हो किन्तु इतर—दूसरी प्रकृति का बंध हो और सत्ता में साता-असाता वेदनीय दोनों हों तब उसके चार भंग होते हैं तथा बंध के अभाव में अयोगि के चरम समय में दोनों वेदनीय में से जिसका उदय हो और उसी की ही सत्ता हो तो उसके दो भंग होते हैं। उसके अलावा शेषकाल में अयोगि के प्रथम समय से लेकर द्विचरम समय पर्यन्त वेदनीयद्विक में से चाहें किसी एक का उदय हो परन्तु सत्ता दोनों की हो तो उसके दो भंग होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर वेदनीय कर्म के आठ भंग हैं—

१. असाता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता की सत्ता।

२. असाता का बंध, साता का उदय, साता-असाता दोनों की सत्ता।

यह दोनों विकल्प मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त होते हैं। इसके बाद असातावेदनीय का बंध नहीं होता है।

३. साता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता दोनों की सत्ता।

४. साता का बंध, साता का उदय, साता-असाता वेदनीय दोनों की सत्ता।

यह दोनों विकल्प मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त संभव हैं। इसके बाद अयोगिकेवलीगुणस्थान में योग का अभाव होने से वेदनीय का बंध ही नहीं होता है।

५. असाता का उदय, साता-असाता की सत्ता।

६. साता का उदय, साता-असाता की सत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह दोनों विकल्प अयोगिकेवलीगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं।

७. असाता का उदय, असाता की सत्ता।

८. साता का उदय, साता की सत्ता।

यह दोनों विकल्प अयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में होते हैं।

इस प्रकार वेदनीयकर्म के संवेध के आठ विकल्प जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये जिनका ज्ञापक प्रारूप इस प्रकार है—

क्रम	बंध	उदय	सत्त्व	गुणस्थान
१.	असाता	असाता	साता-असाता	१ से ६ तक
२.	असाता	साता	,,	१ से ६ तक
३.	साता	असाता	,,	१ से १३ तक
४.	साता	साता	,,	१ से १३ तक
५.	×	असाता	,,	१४वें के द्विचरम समय तक
६.	×	साता	,,	,,
७.	×	असाता	असाता	१४वें के चरम समय में
८.	×	साता	साता	,,

इस प्रकार से अभी तक अल्प कथनीय ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, गोत्र और अंतराय इन छह कर्मों के संवेध और उनके भंगों का कथन जानना चाहिये। अब बहुप्रकृतियों वाले शेष रहे मोहनीय और नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों के संवेध का विचार करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें भी नामकर्म की अपेक्षा अल्प प्रकृतियां होने से पहले मोहनीय-कर्म की संवेध प्ररूपणा प्रारम्भ करते हैं। उसकी भूमिका रूप में अनुक्रम से बंध, उदय और सत्तास्थानों का वर्णन किया जाता है।

मोहनीय कर्म के बंधस्थान

दुगइगवीसा सत्तरस तेरस नव पंच चउर ति दु एगो।
बंधो इगिदुग चउत्थ य पणट्ठणवमेसु मोहस्स ॥१९॥

शब्दार्थ—**दुगइगवीसा**—बाईस और इक्कीस, **सत्तरस**—सत्रह, **तेरस**—तेरह, **नव पंच चउर ति दु एगो**—नौ, पांच, चार, तीन, दो, एक, **बंधो**—बंधस्थान, **इगिदुग चउत्थ**—पहले, दूसरे, चौथे, **य**—और, **पणट्ठणवमेसु**—पांचवें, आठवें, नौवें में, **मोहस्स**—मोहनीय कर्म के।

गाथार्थ—बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृति रूप बंधस्थान होते हैं। जो क्रमशः पहले, दूसरे, (तीसरे) चौथे, पांचवें, (छठे, सातवें) आठवें और नौवें गुणस्थान में होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के बंधस्थान और गुणस्थानापेक्षा उनके स्वामियों का निर्देश किया है। किन्तु अतिसंक्षेप में होने से उनका सुगमता से बोध नहीं होता है। जिससे उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'दुगइगवीसा..........ति दु एगो'' इन पहले और दूसरे पाद के साथ 'बंधो इगिदुग..........मोहस्स' इन तीसरे और चौथे पाद का सम्बन्ध करके इस प्रकार अर्थ समझना चाहिये कि मोहनीयकर्म के दस बंधस्थान हैं। उनमें से पहला बंधस्थान बाईसप्रकृतिक है और वह पहले मिथ्यात्वगुणस्थान में होता है। दूसरा इक्कीस प्रकृति रूप बंधस्थान दूसरे गुणस्थान में, तीसरा सत्रहप्रकृतिक तीसरे और चौथे गुणस्थान में, चौथा तेरह प्रकृति का पांचवें गुणस्थान में, पांचवां नौ प्रकृति का छठे, सातवें और आठवें गुणस्थान में, छठा पांच प्रकृति का, सातवां चारप्रकृतिक, आठवां तीनप्रकृतिक, नौवां दोप्रकृतिक और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवां एकप्रकृतिक, इस प्रकार पांच बंधस्थान नौवें गुणस्थान में होते हैं।

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के बंधस्थान और गुणस्थानापेक्षा उनका स्वामित्व जानना चाहिये। अब प्रकृतिभेद से उन बंधस्थानों के प्रकारों को बतलाते हैं।

प्रकृतिभेद से मोहनीय के बंधस्थानों के प्रकार

हासरइअरइसोगाण बंधया आणवं दुहा सव्वे।
वेयविभज्जंता पुण दुगइगवीसा छहा चउहा ॥२०॥
मिच्छाबंधिगवीसो सत्तर तेरो नवो कसायाणं।
अरईदुगं पमत्ते ठाइ चउक्कं नियट्टिंमि ॥२१॥

शब्दार्थ—हासरइअरइसोगाण—हास्य, रति, अरति, शोक के, **बंधया**—बंध, **आणवं**—नौ-प्रकृतिक तक, **दुहा**—दो प्रकार से, **सव्वे**—सब, **वेयविभज्जंता**—वेद से विभाजित करने पर, **पुण**—पुनः, **दुगइगवीसा**—बाईस और इक्कीस प्रकृतिक, **छहा चउहा**—छह और चार प्रकार का है।

मिच्छाबंधिगवीसो—मिथ्यात्व का बंध न होने पर इक्कीस प्रकृतिक, **सत्तर तेरो नवो**—सत्रह, तेरह और नौ प्रकृतिक, **कसायाणं**—कषायों के, **अरई दुगं**—अरतिद्विक, **पमत्ते**—प्रमत्तसंयत गुणस्थान में, **ठाइ**—रुक जाता है, **चउक्कं**—(हास्य) चतुष्क, **नियट्टिंमि**—अपूर्वकरण में, निवृत्ति में।

गाथार्थ—नौ-प्रकृतिक बंध तक सभी बंध हास्य-रति और अरति-शोक क्रम से बंधने के कारण दो प्रकार के होते हैं। वेद के बंध से विभाजित करने पर बाईस और इक्कीस प्रकृतिक बंध क्रमशः छह और चार प्रकार के हैं।

मिथ्यात्व के अबंध से इक्कीस, अनुक्रम से कषाय के अबंध से सत्रह, तेरह और नौ का बंध होता है। अरतिद्विक का प्रमत्तसंयत गुणस्थान में और (हास्य) चतुष्क का अपूर्वकरण में बंधविच्छेद होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म के उक्त बंधस्थानों में से किसके कितने प्रकार संभव हैं, उनको इन दो गाथाओं में स्पष्ट किया है—

हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल क्रम से बंधने के कारण नौ-प्रकृतिक बन्ध तक के सभी बन्धस्थानों के दो प्रकार हैं। किसी समय हास्य-रतियुगल तो किसी समय अरति-शोकयुगल का बन्ध होता है, किन्तु किसी भी समय इन चारों प्रकृतियों का एक साथ बन्ध नहीं होता है तथा मिथ्यात्वगुणस्थान में एक साथ एक समय में मोहनीय की बाईस प्रकृतियों का बन्धक अध्यवसायानुसार किसी समय पुरुषवेद को, किसी समय स्त्रीवेद को अथवा किसी समय नपुसंकवेद को बाँधता है, किन्तु कभी भी एक साथ तीनों वेदों का बन्ध नहीं करता है। इसलिये हास्य-रति और शोक-अरति युगल और तीन वेद से विभज्यमान बाईस-प्रकृतिक बन्ध छह प्रकार से होता है। वह इस प्रकार—

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेद में से कोई एक वेद, युगलद्विक में से एक युगल, भय और जुगुप्सा। इस प्रकार मोहनीय की बाईस प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थान में प्रति समय प्रत्येक जीव को होता है। ये बाईस प्रकृतियां किसी को हास्य-रति युक्त तो किसी को शोक-अरतियुक्त होती हैं। इस कारण युगलद्विक की विवक्षा से बाईस-प्रकृतिक स्थान दो प्रकार से होता है। तथा—

यही हास्य-रतियुक्त बाईस का बन्ध किसी को पुरुषवेद के साथ, किसी को स्त्रीवेद के साथ तो किसी को नपुंसकवेद के साथ होता है। इसी प्रकार शोक-अरति युगल युक्त बाईस का बन्ध भी पुरुष, स्त्री या नपुंसक वेद के साथ होता है। जिससे बाईस का बन्ध एक समय अनेक जीवों की अपेक्षा और अनेक समय एक जीव की अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थान में छह प्रकार का होता है।

उक्त बाईस प्रकृतियों में से मिथ्यात्व को कम करने पर इक्कीस-प्रकृतिक बन्धस्थान होता है। परन्तु यहाँ दो वेद में से एक वेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना चाहिये। क्योंकि मिथ्यात्वरहित इक्कीस प्रकृति का बन्धक सासादनगुणस्थान वाला होता है और उस गुणस्थान में वर्तमान जीव पुरुष अथवा स्त्रीवेद का बन्ध करता है, किन्तु सासादनगुणस्थान में नपुंसकवेद के बन्धहेतु मिथ्यात्व के उदय का अभाव होने से नपुंसकवेद का बंध नहीं करता है। जिससे इक्कीस का बन्ध चार प्रकार का है। वह इस तरह कि इक्कीस के बंध को हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल के साथ परावर्तन करने से दो प्रकार होते हैं और इन दोनों प्रकारों को भी पुरुष और स्त्रीवेद के साथ क्रमशः परावर्तन करने से चार प्रकार हो जाते हैं।

सत्रह-प्रकृतिक आदि बन्धस्थान के बन्धक तीसरे आदि गुणस्थान वाले जीव सिर्फ पुरुषवेद का ही बन्ध करते हैं। स्त्रीवेद के बन्ध में अनन्तानुबन्धि कषाय का उदय हेतु है, किन्तु तीसरे आदि गुणस्थानों में अनन्तानुबन्धिकषाय का उदय न होने से स्त्रीवेद का बन्ध नहीं होता है।

इक्कीस-प्रकृतिक बन्ध में से अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क के बन्ध के अभाव में सत्रह-प्रकृतिक बन्धस्थान होता है और हास्य-रति अथवा अरति-शोक युगल में से एक समय एक युगल का बन्ध होने से दो प्रकार से बनता है।

उक्त सत्रह-प्रकृतिक में से दूसरी अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क के बन्ध के अभाव में तेरह प्रकृतियों का बन्ध होता है। वह स्थान भी सत्रह प्रकृतियों के बन्ध की तरह युगलद्विक के क्रमिक बन्ध के कारण दो प्रकार से बनता है।

तेरह-प्रकृतिक स्थान में से प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क का बन्ध न होने पर नौ का बन्धस्थान होता है। इसका बन्ध प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में होता है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों का बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने से नौ के बन्ध के दो प्रकार हैं किन्तु अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में हास्य-रति रूप एक युगल ही बँधता है। जिससे अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में होने वाला नौ का बन्ध एक ही प्रकार वाला है।

हास्य-रति और भय, जुगुप्सा रूप हास्यचतुष्क अपूर्वकरणगुणस्थान तक ही बँधता है, इसलिये अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के प्रथम समय के प्रारम्भ में पाँच का बन्ध होता है और वह पाँच का बन्ध अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के काल के पहले पाँच भाग तक होता है, तत्पश्चात् पुरुषवेद का बन्ध नहीं होने से चार का बन्ध होता है, वह भी नौवें गुणस्थान के दूसरे पाँचवें भाग तक होता है, उसके बाद संज्वलन क्रोध का बन्ध नहीं होने से तीन का बन्ध होता है जो तीसरे पाँचवें भाग तक होता है, तदनन्तर संज्वलन मान का भी बन्ध नहीं होने से माया और लोभ इन दो का ही बन्ध होता है। इन दो का बन्ध भी पाँच भाग में के चौथे भाग तक होता है। इसके बाद संज्वलन माया का भी बन्ध नहीं होने से अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के पाँचवें भाग में मात्र एक संज्वलन लोभ का ही बन्ध होता है और वह बन्ध भी उस गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होता है।

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के बन्धस्थान जानना चाहिये। अब इन बन्धस्थानों का कालप्रमाण बतलाते हैं।

मोहकर्म के बंधस्थानों का कालप्रमाण

देसूणपुव्वकोडी नव तेरे सत्तरे उ तेत्तीसा।
बावीसे भंगतिगं ठितिसेसेसु मुहुत्तांत्तो ॥२२॥

शब्दार्थ—**देसूणपुव्वकोडी**—देशोन पूर्वकोटि, **नव तेरे**—नौ और तेरह प्रकृतिक का, **सत्तरे**—सत्रह, **उ**—और, **तेत्तीसा**—तेतीस, **बावीसे**—बाईस के, **भंगतिगं**—तीन भंग, **ठितिसेसेसु**—शेष की स्थिति, **मुहुत्तंत्तो**—अन्तमुहूर्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—नौ और तेरह प्रकृतिक बंधस्थान की देशोन पूर्वकोटि, सत्रह की तेतीस सागरोपम प्रमाण स्थिति है। बाईस के बंध की तीन भंग रूप और शेष बंधस्थानों की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति है।

विशेषार्थ—तेरह और नौ प्रकृतिक बंधस्थान की उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है यानि तेरह और नौ प्रकृतिक बंधस्थान देशोन पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त बंधता रहता है। क्योंकि तेरह का बंध देशविरत गुणस्थान में और नौ का बंध सर्वविरत गुणस्थान में होता है और उन दोनों गुणस्थानों का काल देशोन[1] पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।

सत्रह के बंध का काल उत्कृष्ट से साधिक तेतीस सागरोपम है। क्योंकि अनुत्तर विमानवासी देवों की तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु है और वहाँ सर्वदा अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान है, जिससे सदैव सत्रह का बंध होता है। वहाँ से च्यवकर मनुष्य में उत्पन्न होने के बाद जब तक उनको देशविरति अथवा सर्वविरति प्राप्त न हो तब तक सत्रह का बंध होता रहता है। इसीलिये कुछ अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण काल सत्रह-प्रकृतिक बंध का कहा है।

बाईस-प्रकृतिक बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है। जिससे उस बंधस्थान के तीन भंग इस प्रकार हैं—

१. अभव्य को बाईस का बंध अनादि-अनन्त काल पर्यन्त होता है। क्योंकि अभव्यों के सर्वदा मिथ्यादृष्टिगुणस्थान ही होता है।

---

१ देशोन कहने का कारण यह है कि विरति परिणाम जन्म के बाद आठ वर्ष की उम्र होने के बाद ही होते हैं और वे विरति परिणाम पूर्वकोटि की आयु वाले के ही होते हैं। पूर्वकोटि वर्ष से अधिक आयु वाले असंख्यात वर्ष की आयु वाले कहलाते हैं और उनको विरति परिणाम होते ही नहीं हैं। इसी कारण देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण काल उक्त दो बंधस्थानों का कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. जिन भव्यों ने अभी तक भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है, किन्तु अब प्राप्त करेंगे, उन भव्यों की अपेक्षा बाईस के बंध का अनादि-सांत काल है।

३. सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आये हुए जीवों की अपेक्षा सादि-सांत काल है और वह भी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन अपार्ध पुद्‌गल परावर्तन प्रमाण है।[1]

पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक इन पाँच बंधस्थानों का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि ये पाँचों बंधस्थान नौवें गुणस्थान में ही होते हैं और उस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त ही है।

इस प्रकार मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का उत्कृष्ट बंधकाल जानना चाहिये।

अब इनका जघन्य काल बतलाते हैं—

बाईस, सत्रह, तेरह और नौ प्रकृतिक, इन चार बंधस्थानों का अन्तर्मुहूर्त बंधकाल है। क्योंकि ये बंधस्थान जिस-जिस गुणस्थान में हैं, वहाँ कम से कम अन्तर्मुहूर्त रहकर ही जीव अन्यत्र जाता है तथा पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक इन पाँच बंधस्थानों का जघन्य-काल तक समय है। वह एक समय इस प्रकार जानना चाहिये—उपशमश्रेणि में उक्त पाँच बंधस्थानों को बांधकर दूसरे समय में कोई एक जीव काल करके देवलोक में जाये तो वहाँ अविरति परिणाम होते हैं। वहाँ अविरत (सम्यग्दृष्टिपने) में उसे सत्रह का बंध होता है। इस प्रकार उपशमश्रेणि में एक समय काल संभव है। इसी प्रकार चार-प्रकृतिक आदि बंधस्थानों के लिये भी समझना चाहिये।

---

१ क्योंकि सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आये जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्‌गलपरावर्तन काल तक मिथ्यात्व में रहते हैं। उसके बाद अवश्य सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इक्कीस-प्रकृतिक बंधस्थान सासादनगुणस्थान में होता है और सासादनगुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका है अतः उतना ही इक्कीस-प्रकृतिक बंधस्थान का भी काल जानना चाहिये। अर्थात् सासादनगुणस्थान के जघन्य और उत्कृष्ट काल के समान इक्कीस-प्रकृतिक का जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका प्रमाण काल जानना चाहिये।[1]

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का समग्र वर्णन करने के बाद अब उदयस्थानों का निरूपण करते हैं।

मोहनीयकर्म के उदयस्थान—

इगिदुगचउएगुत्तर आदसगं उदयमाहु मोहस्स।
संजलणवेयहासरइभयदुगुंछतिकसायदिट्ठी य ॥२३॥

शब्दार्थ—इगिदुगचउ—एक, दो, चार, **एगुत्तर**—आगे एक-एक अधिक, **आदसगं**—दस पर्यन्त, **उदयमाहु**—उदयस्थान कहे हैं, **मोहस्स**—मोहनीय कर्म के, **संजलण**—संज्वलन कषाय, **वेय**—वेद, **हासरइभयदुगुंछ**—हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, **तिकसायदिट्ठी**—तीन कषाय और दृष्टि, **य**—और।

गाथार्थ—एक, दो, चार और तत्पश्चात् आगे एक-एक अधिक दस पर्यन्त मोहनीय के नौ उदयस्थान कहे हैं। वे संज्वलनकषाय, वेद, हास्य-रति, भय, जुगुप्सा, तीन कषाय और दृष्टि के प्रक्षेप करने पर होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की संख्या और उनके बनने के कारण को स्पष्ट किया है।

मोहनीयकर्म के एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक ये नौ उदयस्थान हैं। इन उदयस्थानों का प्रतिपादन पश्चानुपूर्वी के अनुसार अनिवृत्तिबादरगुणस्थान से प्रारम्भ करते हैं—

---

१ सुगम बोध के लिये मोहनीयकर्म संबन्धी बंधस्थानों का प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलन कषाय, वेद, हास्य-रति युगल, भय, जुगुप्सा, प्रत्याख्यानावरण आदि तीन कषाय और दृष्टि का प्रक्षेप करने से ये नौ उदयस्थान होते हैं। संज्वलनकषायचतुष्क में से किसी एक के उदय में पहला एक-प्रकृतिक उदयस्थान, उसमें वेदत्रिक में से एक वेद का उदय मिलाने पर दो प्रकृति का उदयरूप दूसरा उदयस्थान, हास्य-रति युगल के उदय को मिलाने पर चार-प्रकृतिक उदय का तीसरा उदयस्थान, भय को मिलाने पर पाँच का चौथा उदयस्थान, जुगुप्सा मिलाने पर छह का पाँचवा, प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क में से किसी एक का उदय होने पर सात का छठा उदयस्थान, अप्रत्याख्यानावरण-कषायचतुष्क में से किसी भी एक का उदय होने पर आठ-प्रकृतिक सातवाँ, अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क में से किसी एक का उदय होने पर नौ प्रकृति का आठवां और उसमें मिथ्यात्व का उदय बढ़ने पर दस प्रकृति का उदयरूप नौवाँ उदयस्थान होता है।

ये उदयस्थान प्रकृतियों के फेरफार से अनेक प्रकार के हैं। अतः अब उन प्रकारों को जानने का सूत्र बतलाते हैं।

उदयस्थान प्रकारबोधक सूत्र

दुगआइ दसंतुदया कसायभेया चउव्विहा ते उ।
बारसहा वेयवसा अदुगा पुण जुगलओ दुगुणा ॥२४॥

शब्दार्थ—**दुगआइ**—दो से लेकर, **दसंतुदया**—दस तक के उदय, **कसायभेया**—कषाय के भेद से, **चउव्विहा**—चार प्रकार के, **ते**—वे, **उ**—और **बारसहा**—बारह प्रकार के, **वेयवसा**—वेद के वश से, **अदुगा**—दो के सिवाय, **पुण**—पुनः, **जुगलओ**—युगल के कारण, **दुगुणा**—दुगने।

गाथार्थ—दो से लेकर दस तक के उदय कषाय के भेद से चार प्रकार के हैं। वेद के वश से बारह प्रकार के हैं और दो के सिवाय शेष उदय युगल के कारण दुगने होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में प्रकृतियों के अंतर से उदयस्थानों के प्रकार हो सकने के कारण को स्पष्ट किया है—

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

'दुगआइ दसंतुदया' अर्थात् दो से लेकर दस तक के प्रत्येक उदयस्थान किसी को क्रोध का, किसी को मान का, किसी को माया का और किसी को लोभ का उदय होने से एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा चार प्रकार के होते हैं—'कसायभेया चउव्विहा'। इन चारों भेद वालों के—क्रोधी, मानी, मायी अथवा लोभी—चाहे किसी भी कषाय के उदय वाले हों—तीन वेदों में से किसी भी वेद का उदय होता है, जैसे कि क्रोध के उदय वाले को पुरुषवेद का उदय हो सकता है, स्त्रीवेद का भी अथवा नपुंसकवेद का भी उदय हो सकता है। इसी प्रकार मानी, मायी और लोभी को भी तीन वेदों में से किसी भी वेद का उदय हो सकता है। जिससे तीन वेदों से गुणा करने पर बारह भंग होते हैं—बारसहा वेयवसा।

इन बारह प्रकार वालों में से किसी को हास्य-रति का अथवा किसी को शोक-अरति का उदय होता है। जैसे—क्रोधी पुरुषवेद के उदय वाले को हास्य-रति का उदय हो सकता है, वैसे ही उसको शोक-अरति का भी उदय हो सकता है। इसी प्रकार क्रोधी स्त्रीवेद के उदय वाले और क्रोधी नपुंसकवेद के उदय वाले के भी दो में से चाहे किसी एक युगल का उदय हो सकता है। इसी तरह मानी, मायी, लोभी पुरुषवेदादि किसी भी वेद के उदय वाले को दोनों में से किसी भी एक युगल का उदय हो सकता है। जिससे चार से लेकर दस तक के सभी उदय युगल की अपेक्षा पूर्व से दुगने होते हैं, यानी चौबीस भंग होते हैं। इसी को चौबीसी कहते है।

दो का उदय हो तब युगल का उदय नहीं होने से चार कषाय को वेद के साथ गुणित करने पर बारह ही भंग होते हैं तथा चार से दस तक के उदयस्थानों में कषाय, वेद और युगल का उदय होने से चार कषाय का तीन वेद के साथ गुणा करने पर बारह और बारह को युगलद्विक से गुणा करने पर चौबीस भंग होते हैं।

अब ये चौबीस भंग एक-एक गुणस्थान में अनेक प्रकार से होने के कारण को स्पष्ट करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणसम्मभयदुगंछाण णोदओ संभवेवि वा जम्हा।
उदया चउवीसा विय एक्केक्कगुणे अओ बहुहा ॥२५॥

शब्दार्थ—**अणसम्मभयदुगंछाण**—अनन्तानुबंधी, सम्यक्त्वमोहनीय, भय, जुगुप्सा का, **णोदओ**—उदय नहीं होता, **संभवेवि**—संभव भी है, **वा**—अथवा, **जम्हा**—जिससे, **उदया**—उदय, **चउवीसा**—चौबीसी, **विय**—भी और, **एक्केक्कगुणे**—एक एक गुणस्थान में, **अओ**—अत:, **बहुहा**—अनेक प्रकार से।

गाथार्थ—अनन्तानुबंधि, सम्यक्त्वमोहनीय, भय और जुगुप्सा का उदय नहीं होता है और संभव भी है, जिससे उदय और चौबीसियाँ एक-एक गुणस्थान में अनेक प्रकार से होती हैं।

विशेषार्थ—अनन्तानुबंधिकषाय, सम्यक्त्वमोहनीय, भय और जुगुप्सा मोहनीय का किसी समय उदय होता है और किसी समय नहीं भी होता है। वह इस प्रकार समझना चाहिये—

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने के पूर्व अनन्तानुबंधिकषाय की उद्वलना करके पारिणामिक हीनता आने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व रूप हेतु से बंधे उस अनन्तानुबंधिकषाय का एक आवलिका पर्यन्त उदय नहीं होता है, शेषकाल में उदय होता है। अविरतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों में वर्तमान औपशमिक अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय का उदय नहीं होता है। शेष के—क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के होता है। भय और जुगुप्सा अध्रुवोदया प्रकृति होने से मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण पर्यन्त सभी गुणस्थानों में किसी समय उनका उदय होता है और किसी समय नहीं होता है।

इसी कारण एक-एक गुणस्थान में उदय और उस उदय से संभव भंग—चौबीसियों के अनेक प्रकार हो जाते हैं। यह अनेक प्रकार से होने वाले उदयस्थान और भंग—चौबीसियाँ गुणस्थानों में इस प्रकार जानना चाहिये—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छे सगाइ चउरो सासणमीसे सगाइ तिण्णुदया ।
छप्पंचचउरपुव्वा चउरो तिअ अविरयाईणं ।।२६।।

शब्दार्थ—**मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **सगाइ**—सात से लेकर, **चउरो**—चार, **सासणमीसे**—सासादन और मिश्र गुणस्थान में, **सगाइ**—सात आदि, **तिण्णुदया**—तीन उदयस्थान, **छप्पंचचउर**—छह, पांच और चार, **अपुव्वा**—अपूर्वकरणगुणस्थान में, **चउरो**—चार, **तिअ**—तीन, **अविरयाईणं**—अविरतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों में ।

गाथार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान में सात से लेकर दस तक चार, सासादन और मिश्र गुणस्थान में सात से नौ तक तीन, अविरत से अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक छह, पांच और चार आदि चार और अपूर्वकरण गुणस्थान में चार आदि तीन उदयस्थान होते हैं ।

विशेषार्थ—गाथा में अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त आठ गुणस्थानों में उदयस्थानों का निर्देश किया है—

मिथ्यात्व गुणस्थान—'मिच्छे सगाई चउरो' अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के सात से दस प्रकृतिक तक के चार उदयस्थान होते हैं । उनमें से सात-प्रकृतिक उदयस्थान में संकलित प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोधादि में से तीन क्रोधादि, आदि शब्द से तीन मान अथवा तीन माया या तीन लोभ समझना चाहिये । क्रोध, मान, माया और लोभ परस्पर विरोधी होने से एक साथ उदय में नहीं होते हैं । परन्तु क्रोध का उदय हो तो जिस क्रोध का उदय हो, उससे नीचे के सभी क्रोध का समान जातीय होने से उदय होता है । जैसे कि अनन्तानुबंधि क्रोध का उदय हो तो उससे नीचे के अप्रत्याख्यानावरणादि तीनों क्रोध का उदय होता है । इसी प्रकार अनन्तानुबंधि क्रोध का उदय न हो और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध का उदय हो तो उससे नीचे के प्रत्याख्याना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरण, संज्वलन दोनों प्रकार के क्रोधों का उदय होता है। इसी प्रकार अन्यत्र एवं मान, माया और लोभ के लिये भी समझना चाहिये।

तीन वेद में से एक वेद, हास्य-रति युगल या शोक-अरति युगल में से एक युगल इन सात प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि जीव को अवश्य उदय होता है। इस सात-प्रकृतिक उदयस्थान में प्रकृतियों के फेरफार से चौबीस भंग होते हैं। जो इस प्रकार से जानना चाहिये—

किसी जीव को हास्य-रति का या किसी जीव को शोक-अरति का उदय होने से प्रत्येक युगल का एक-एक भंग होता है, जिससे दो युगल के दो भंग हुए। इन दोनों युगल के उदय वाले जीव तीन वेदों में से भी किसी एक वेद के उदय वाले होने से उन दो को तीन वेद से गुणा करने पर छह भंग हुए। ये छह भंग वाले जीव क्रोधादि चार में से किसी भी कषाय के उदय वाले होते हैं। अतएव छह को चार से गुणा करने पर चौबीस भंग होते हैं।

इस प्रकार युगल, वेद और क्रोधादि—क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय को बदलने से चौबीस भंग होते हैं।

उक्त सात के उदयस्थान में भय, जुगुप्सा या अनन्तानुबंधि के उदय में से किसी एक के मिलाने पर आठ-प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उस प्रत्येक उदय की एक-एक चौबीसी होती है। अर्थात् प्रत्येक उदय में सात के उदय की तरह युगल, वेद और क्रोधादि चार की अदला-बदली करने से चौबीस-चौबीस भंग होते हैं। इस प्रकार आठ-प्रकृतिक उदयस्थान में तीन चौबीसी होती हैं।

कदाचित यह कहा जाये कि मिथ्यादृष्टि को तो अनन्तानुबंधि का उदय अवश्य संभव है तो फिर सात का उदय और भय या जुगुप्सा सहित आठ का उदय अनन्तानुबंधि रहित कैसे होता है ? इसका उत्तर यह है कि किसी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव ने अनन्तानुबंधि आदि दर्शनमोहनीयसप्तक का क्षय करने के पूर्व मात्र अनन्तानुबंधिकषाय की विसंयोजना की और इतना करके ही वह रुक गया, मिथ्यात्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि दर्शनमोहनीयत्रिक के क्षय के लिये तथाप्रकार के विशुद्ध अध्यवसायरूप सामग्री के अभाव से प्रयत्न नहीं कर सका। तत्पश्चात कालान्तर में गिरते परिणामों से मिथ्यात्व में गया और वहाँ मिथ्यात्वरूप हेतु से अनन्तानुबंधिकषाय के बंध की शुरुआत की किन्तु उसकी बंधावलिका जब तक पूर्ण न हुई हो, तब तक उसका उदय नहीं हो सकता है, किन्तु बंधावलिका पूर्ण होने के बाद उदय होता है। इस स्थिति में अनन्तानुबंधि रहित उदयस्थान संभव है।

प्रश्न—अनन्तानुबंधिकषाय की मात्र एक बंधावलिका जाने—बीतने के बाद ही उसका उदय कैसे हो सकता है ? क्योंकि प्रत्येक प्रकृति का अमुक अबाधाकाल होता है और जब वह पूरा हो तब उदय होता है। अनन्तानुबंधिकषाय का जघन्य अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार हजार वर्ष प्रमाण है। अतः कम-से-कम भी अन्तर्मुहूर्त जाने के बाद ही अनन्तानुबंधिकषाय का उदय होना चाहिये, मात्र आवलिका बीतने के बाद ही उसका उदय कैसे हो सकता है ?

उत्तर—उपर्युक्त दूषण यहाँ संभव नहीं है। क्योंकि बंध समय से लेकर उसकी सत्ता होती है, जब सत्ता हुई तब बंधकाल पर्यन्त वह पतद्ग्रह प्रकृति के रूप में होती है और जब पतद्ग्रह रूप में होती है तब उसमें समान जातीय शेष प्रकृतियों के दलिकों का संक्रम होता है और संक्रमित वह दलिक पतद्ग्रह प्रकृति रूप में परिणमित होता है। संक्रमित दलिक का संक्रमावलिका जाने के बाद उदय होता है। जिससे बंधावलिका बीतने के बाद उदय होना विरुद्ध नहीं है।

पूर्वोक्त कथन का सारांश यह है कि जिस समय अनन्तानुबंधि का बंध हुआ, उस समय से लेकर वह पतद्ग्रह हो जाती है। जिससे उसमें जिसका अबाधाकाल बीत गया है, ऐसी अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के दलिक संक्रमित होते हैं—अनन्तानुबंधि रूप होते हैं और अनन्तानुबंधि रूप हुए वे अप्रत्याख्यानावरणादि के दलिक संक्रम समय से एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवलिका जाने के बाद उदय में आते हैं। जिस समय अनन्तानुबंधि का बंध हो, उसी समय से अप्रत्याख्यानावरणादि के दलिक संक्रमित होते हैं। यानि बंध समय से एक आवलिका जाने के बाद अथवा संक्रम समय से एक आवलिका जाने के बाद बंधावलिका और संक्रमावलिका के एक ही हो जाने से मिथ्यात्व गुणस्थान की एक आवलिका बीतने पर संक्रात दलिकों का—अनन्तानुबंधि रूप हुए दलिकों का उदय होता है और बद्ध अनन्तानुबंधि का भी बंध समय से एक आवलिका जाने के बाद उदीरणाकरण के द्वारा उदय हो सकता है। इसीलिये कहा है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में मात्र एक आवलिका काल ही अनन्तानुबंधि का उदय नहीं होता है। वह भी जिसने सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थान में अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करके गिरकर मिथ्यात्व में आया हो उसी के संभव है। जिस जीव ने अनन्तानुबंधि की विसंयोजना की हो उसे तो उसके सत्ता में होने से जिस समय गिरकर मिथ्यात्व में आता है, उसी समय से ही उदय में आती है।

अब नौ प्रकृतिक उदयस्थान का निर्देश करते हैं—पूर्वोक्त सातप्रकृतिक उदयस्थान में भय-जुगुप्सा अथवा भय-अनन्तानुबंधि अथवा जुगुप्सा-अनन्तानुबंधि का उदय बढ़ाने पर नौ-प्रकृतिक उदयस्थान होता है। उसके प्रत्येक विकल्प में पूर्वोक्त क्रमानुसार एक-एक चौबीस-चौबीस भंग होते हैं। जिससे तीन चौबीसी होती हैं।

दस-प्रकृतिक उदयस्थान के लिये पूर्वोक्त सात के उदय में भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबंधि के उदय का युगपत् प्रक्षेप करने से दस प्रकृति का उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों की एक ही चौबीसी होती है।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के चारों उदयस्थानों की कुल मिलाकर आठ चौबीसी (१९२=एक सौ बानवे भंग) होती हैं।

यह भंग-विकल्प भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा घटित होते हैं। क्योंकि एक को सात का उदय किसी एक प्रकार से और दूसरे को दूसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार से होता है जिससे उसके चौबीस प्रकार होते हैं। इसी प्रकार किसी को आठ का उदय, किसी को नौ का उदय और किसी को दस का उदय होता है। वे आठ, नौ और दस के उदय भी संख्या वही होने पर भी अनेक प्रकार से होते हैं। जिससे उनके चौबीस-चौबीस विकल्प होते हैं। अन्य प्रकृतियों में विकल्प न होने से वेद, कषाय और युगल के साथ फेर-बदल करने से चौबीस ही विकल्प होते हैं, अधिक नहीं। प्रकृतियों के फेरफार से ही भिन्न-भिन्न विकल्प होते हैं। वे सभी विकल्प एक समय अनेक जीवों की अपेक्षा और कालभेद से एक जीव की अपेक्षा संभव हैं।

उक्त सात से दस पर्यन्त के चार उदयस्थानों में भंगों की चौबीसी इस प्रकार हैं—सात-प्रकृतिक उदयस्थान की एक, आठ-प्रकृतिक उदयस्थान की तीन, नौ-प्रकृतिक उदयस्थान की तीन और दस-प्रकृतिक उदयस्थान की एक। इस प्रकार एक, तीन, तीन और एक को मिलाने से मिथ्यात्वगुणस्थान में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की आठ चौबीसी होती हैं।

सासादनगुणस्थान—इस गुणस्थान में सात-प्रकृतिक, आठ-प्रकृतिक, और नौ-प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। उनमें से सात-प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार जानना चाहिये—

अनन्तानुबंधि, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोधादि में से क्रोधादि चार, तीन वेद में से एक वेद और युगलद्विक में से एक युगल, इन सात प्रकृतियों का सासादनगुणस्थान में अवश्य उदय होता है। यहाँ पूर्वोक्त क्रमानुसार भंगों की एक चौबीसी होती है तथा इन सात में भय या जुगुप्सा का उदय मिलाने पर दो प्रकार से आठ का उदयस्थान होता है। उसकी दो चौबीसी होती हैं। भय, जुगुप्सा दोनों को एक साथ मिलाने पर नौ का उदयस्थान होता है। यहाँ एक चौबीसी होती है और कुल मिलाकर सासादनगुणस्थान में चार चौबीसी अर्थात् ६६ (छियानवै) भंग जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रगुणस्थान—यहाँ भी सात, आठ और नौ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। उनमें से सात-प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—इसमें और यहाँ से आगे किसी भी गुणस्थान में अनन्तानुबंधि-कषाय का उदय नहीं होता है। अत: उसको छोड़कर शेष तीन कषाय, तीन वेद में से एक वेद, युगलद्विक में से एक युगल और मिश्रमोहनीय, इन सात प्रकृतियों का प्रत्येक मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव को अवश्य उदय होता है। इस उदयस्थान में पूर्वोक्त क्रमानुसार एक चौबीसी होती है। इसी सात में भय अथवा जुगुप्सा के उदय को बढ़ाने पर आठ-प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है। जिससे भंगों की दो चौबीसी होती हैं। भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से नौ का उदयस्थान होता है और भंगों की एक चौबीसी होती है। कुल मिलाकर मिश्रगुणस्थान में चार चौबीसी (छियानवे भंग) होती हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान—यहाँ छह, सात, आठ और नौ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं। क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के भेद से तीन प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। उनमें से औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उदय में प्रकृतियाँ समान होती हैं और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के उदय में सम्यक्त्व-मोहनीय प्रकृति अधिक होती है। यहाँ भंगों की कुल आठ चौबीसियाँ होती हैं। उनमें सम्यक्त्वमोहनीय वाली चार चौबीसी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि की और उसके रहित की चार चौबीसी औपशमिक तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि की जानना चाहिये।

औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्वी अविरतसम्यग्दृष्टि के छह प्रकृतियों का उदय इस प्रकार होता है—अप्रत्याख्यानावरणादि तीन क्रोध, तीन वेद में से एक वेद, युगलद्विक में से एक युगल। इन छह प्रकृतियों का चौथे गुणस्थान में अवश्य उदय होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है। इन छह प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा या सम्यक्त्वमोहनीय में से किसी एक को मिलाने पर सात-प्रकृतिक उदयस्थान होता है। सात का उदयस्थान तीन प्रकार से होने के कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगों की तीन चौबीसियाँ होती हैं। पूर्वोक्त छह में भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को मिलाने पर आठ-प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक-एक विकल्प में भंगों की एक-एक चौबीसी होने से तीन चौबीसी होती हैं और भय, जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने से नौ का उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है। अविरत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थान में कुल मिलाकर आठ चौबीसी (१६२ भंग) होती हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि छह के उदय में सम्यक्त्व-मोहनीय का उदय मिलाने से सात का उदयस्थान होता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि छह का उदय औपशमिक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि के होता है। उनके सम्यक्त्वमोहनीय का उदय नहीं होता है। तात्पर्य यह हुआ कि औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के छह, सात, आठ प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के सात, आठ, नौ प्रकृतिक यह तीन उदयस्थान होते हैं। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को सम्यक्त्वमोहनीय का उदय ध्रुव है। जिससे उसको प्रारम्भ से ही सात का उदयस्थान होता है।

देशविरतगुणस्थान—यहाँ पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं। इनमें से औपशमिक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशविरत के पाँच, छह और सात प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी देशविरत को छह, सात और आठ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं।

औपशमिक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशविरत को पाँच प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार हैं—प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोधादि में से दो क्रोध, तीन वेद में से एक वेद, युगलद्विक में से एक युगल। इन पाँच प्रकृतियों का देशविरतगुणस्थान में अवश्य उदय होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है। भय, जुगुप्सा अथवा सम्यक्त्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय में से किसी एक को मिलाने पर छह के उदय के तीन विकल्प होते हैं। प्रत्येक विकल्प में भंगों की एक-एक चौबीसी होने से तीन चौबीसी होती हैं। पूर्वोक्त पाँच के उदय में भय-जुगुप्सा अथवा भय-सम्यक्त्वमोहनीय अथवा जुगुप्सा-सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने से सात का उदयस्थान होता है। यहाँ भी भंगों की तीन चौबीसी होती हैं। भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय इन तीनों को एक साथ मिलाने पर आठ का उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों की एक ही चौबीसी होती हैं। कुल मिलाकर देशविरत गुणस्थान में भंगों की आठ चौबीसी (एक सौ बानवै १६२ भंग) होती है।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान—यहाँ चार, पाँच, छह और सात प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं। इनमें से औपशमिक और क्षायिक सम्यग्-दृष्टि के चार, पाँच और छह प्रकृतिक ये तीन तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय का उदय अवश्य होने से पाँच, छह और सात प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इनमें प्रमत्तसंयत औपशमिक सम्यग्दृष्टि अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि के संज्वलन क्रोधादि में से कोई भी क्रोधादि एक, तीन वेद में से एक वेद, युगलद्विक में से एक युगल इन चार प्रकृतियों का अवश्य उदय होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है। इन चार में भय अथवा जुगुप्सा अथवा सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने से पांच का उदयस्थान होता है। यहाँ प्रत्येक विकल्प में एक-एक चौबीसी होने से भंगों की तीन चौबीसी होती हैं तथा पूर्वोक्त चार में भय-जुगुप्सा अथवा भय-सम्यक्त्वमोह-नीय अथवा जुगुप्सा-सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने पर छह का उदय-स्थान होता है। यहां भी तीन विकल्प की तीन चौबीसी होती हैं तथा भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय को एक साथ मिलाने पर सात का उदयस्थान होता है और भंगों की एक चौबीसी होती है। कुल मिलाकर आठ चौबीसी (एक सौ बानवें भंग) होती हैं।

अप्रमत्तसंयतगुणस्थान—यहाँ भी पूर्वोक्त प्रमत्तसंयतगुणस्थान की तरह चार आदि उदयस्थान और आठ चौबीसी जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरणगुणस्थान—यहाँ चार, पांच और छह प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इस गुणस्थान में मात्र औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। जिससे सम्यक्त्वमोहनीय का उदय किसी भी जीव को नहीं होता है। अतएव अपूर्वकरण गुणस्थान युक्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि या औपशमिक सम्यग्दृष्टि के संज्वलन क्रोधादि में से कोई एक क्रोधादि, तीन वेद में से एक वेद और युगलद्विक में से एक युगल, इस प्रकार चार-प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है। इन चार प्रकृतियों में भय या जुगुप्सा के मिलाने पर पांच का उदयस्थान होता है। यहां भंगों की दो चौबीसी होती हैं तथा भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से छह-प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी भंगों की एक चौबीसी होती है। कुल मिलाकर अपूर्वकरणगुणस्थान में चार चौबीसी (छियानवें भंग) होती हैं।

यहाँ प्रमत्त गुणस्थान के उदय की अपेक्षा अप्रमत्त और अपूर्वकरण के उदय मात्र गुणस्थान के भेद से भिन्न हैं। परमार्थतः भिन्न नहीं हैं। क्योंकि सभी उदय और विकल्प एक समान हैं। इसलिये प्रमत्त के उदय के ग्रहण से ही अप्रमत्त और अपूर्वकरण के उदय भी ग्रहण किये हुए ही समझना चाहिये। इस कारण अप्रमत्त और अपूर्वकरण में मात्र गुणस्थान के भेद से होने वाली चौबीसियां प्रमत्त की चौबीसियों से पृथक् नहीं गिनी जायेंगी।

अब दस आदि उदयस्थानों में जितनी चौबीसियां होती हैं उनकी संख्या का निर्देश करते हैं।

दस आदि स्थानों की चौबीसियां

दसगाइसु चउवीसा एक्क छिक्कारदससग चउक्कं।
एक्का य नवसयाइं सट्ठाइं एवमुदयाणं ॥२७॥

शब्दार्थ—**दसगाइसु**—दस-प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में, **चउवीसा**—चौबीसी, **एक्क**—एक, **छिक्कारदससग**—छह, ग्यारह, दस, सात, **चउक्कं**—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार, **एक्का**—एक, **य**—और, **नवसयाइं**—नौ सौ, **सट्ठाइं**—साठ, **एवमुदयाणं**—इस प्रकार उदय के (विकल्प)।

गाथार्थ—दस-प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में अनुक्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक चौबीसियाँ होती हैं और जिनके कुल मिलाकर नौ सौ साठ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—दस के उदय से लेकर चार के उदय पर्यन्त प्रत्येक उदयस्थान में भंगों की चौबीसियाँ अनुक्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक होती हैं। इनमें से दस के उदय में एक चौबीसी मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में होती है। नौ के उदय में छह चौबीसी होती हैं। उनमें तीन चौबीसी मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में तथा सासादन, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में एक-एक होती हैं। आठ के उदय में ग्यारह चौबीसी होती हैं। इनमें से तीन मिथ्यात्वगुणस्थान में, दो सासादनगुणस्थान में, दो मिश्र में, तीन अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में और एक देशविरतगुणस्थान में होती है। सात के उदय में दस चौबीसी होती हैं। जिनमें से मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और प्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानों में एक-एक, अविरतसम्यग्दृष्टि और देशविरत गुणस्थान में तीन-तीन चौबीसी होती हैं। छह के उदय में सात चौबीसी होती हैं। उनमें से अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में एक, देशविरत और प्रमत्त गुणस्थान में तीन-तीन होती हैं। पाँच के उदय में चार चौबीसी होती हैं। उनमें से देशविरत में एक और प्रमत्तसंयतगुणस्थान में तीन होती हैं। चार के उदय में एक चौबीसी होती है और वह प्रमत्तसंयतगुणस्थान में होती है।

इस प्रकार सब मिलाकर भंगों की चालीस चौबीसियाँ होती हैं। जिनको चालीस से गुणा करने पर कुल उदयविकल्प भंग नौ सौ साठ होते हैं।

अब पाँच आदि बंधस्थानों के उदयविकल्पों का कथन करते हैं।

बारस चउरो ति दु एक्कगाउ पंचाइबंधगे उदया।
अब्बंधगे वि एक्को तेसीया नवसया एवं ॥२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**बारस**—बारह, **चउरो ति दु एक्कगाउ**—चार, तीन, दो, और एक, **पंचाइबंधगे**—पाँच आदि के बंधस्थान में, **उदया**—उदय, **अबंधगे**—अबंधक को, **वि**—भी, **एक्को**—एक, **तेसीया**—तेरासी, **नवसया**—नौ सौ, **एवं**—इस प्रकार ।

गाथार्थ—पाँच आदि के बंधस्थानों में अनुक्रम से बारह, चार, तीन, दो और एक उदयभंग होते हैं । अबंधक के भी एक भंग होता है । कुल नौ सौ तेरासी भंग होते हैं ।

विशेषार्थ—पाँच आदि बंधस्थानों में अनुक्रम से बारह, चार, तीन, दो और एक, इस प्रकार उदयविकल्प होते हैं । जो इस प्रकार हैं—

नौवें गुणस्थान में पाँच के बंधकाल में संज्वलन क्रोधादि चार में से कोई एक क्रोधादि और तीन वेद में से कोई एक वेद इस प्रकार दो प्रकृतियों का उदय होता है । अतः चार को तीन से गुणा करने पर बारह भंग होते हैं ।

चार का जब बंध होता है तब उदय एक प्रकृति का होता है । पुरुषवेद का जब बंधविच्छेद होता है तब चार का बंध होता है तथा पुरुषवेद का बंध एवं उदय दोनों एक साथ होते हैं इसलिये चार के बंधकाल में एक का उदय होता है और वह भी संज्वलनकषायचतुष्क में से किसी एक का । वेद या युगल किसी का उदय नहीं होने से चार ही भंग होते हैं । यहाँ चार भंग होने का कारण यह है कि कोई संज्वलन क्रोध के उदय में श्रेणि प्रारम्भ करता है, कोई मान के उदय में, कोई माया के उदय में अथवा कोई संज्वलन लोभ के उदय में श्रेणि आरम्भ करता है । जिससे चार ही भंग होते हैं ।

संज्वलन क्रोध का बंधविच्छेद होने पर तीन का बंध होता है । यहाँ भी उदय एक का ही होता है । क्योंकि क्रोध का बंध और उदय साथ होता है । तीन के उदय के तीन भंग होते हैं ।

इसी प्रकार संज्वलन मान का बंधविच्छेद होने पर दो का बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है और उदय माया या लोभ दोनों में से एक का ही होता है। यहाँ दो के उदय के दो भंग होते हैं।

संज्वलन माया का बंधविच्छेद हो तब एक संज्वलन लोभ का ही बंध होता है और उदय में भी एक संज्वलन लोभ ही होता है। मान और माया का भी बंध और उदय साथ ही विच्छिन्न होता है। यहाँ एक-एक के उदय का एक ही भंग होता है।

यहाँ पाँच आदि बंधस्थानों में यद्यपि संज्वलन के उदयापेक्षा कोई विशेष नहीं है। क्योंकि उदय में वही प्रकृति होती है, तो भी बंधस्थान की अपेक्षा भेद होने से विकल्प पृथक् गिने हैं।

प्रमत्त, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में तो बंधस्थान की अपेक्षा भी कोई भेद नहीं है, क्योंकि सभी नौ का बंध करते हैं। उदय में भी कोई भेद नहीं है, जिनसे उनके भंग अलग नहीं गिने हैं तथा मोहनीय की एक भी प्रकृति नहीं बाँधने वाले सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में एक संज्वलन लोभ का उदय होता है, जिससे उसका एक भंग होता है।

इस प्रकार सब मिलाकर पांच आदि के बंधक और अबंधक के उदय के विकल्प तेईस होते हैं। जिन्हें पूर्वोक्त नौ सौ साठ में मिलाने पर नौ सौ तेरासी विकल्प होते हैं।

इस विषय में मतान्तर भी है। जिसका यहाँ उल्लेख करते हैं—

चउबंधगेवि बारस दुगोदया जाण तेहिं छूढेहिं।
बंधगभेएणेवं पंचूणसहस्समुदयाणं ॥२९॥
बारस दुगोदएहिं भंगा चउरो य संपराएहिं।
सेसा तेच्चिय भंगा नवसय छावत्तरा एवं ॥३०॥

शब्दार्थ—**चउबंधगेवि**—चार के बंध में भी, **बारस**—बारह, **दुगोदया**—दो के उदय के, **जाण**—जानो, **तेहिं**—उनको, **छूढेहि**—मिलाने से, **बंधगभेएणेवं**—बंधक के भेद से ही, **पंचूणसहस्समुदयाणं**—उदय के पाँच कम हजार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारस—बारह, **दुगोदएहिं**—दो के उदय में, **भंगा**—भंग, **चउरो**—चार, **य**—और, **संपराएहिं**—कषायों के, **सेसा**—शेष, **तेच्चिय**—वे ही, **भंगा**—भंग, **नवसय छावत्तरा**—नौ सौ छियत्तर, **एवं**—इसी प्रकार।

गाथार्थ—चार के बंध में भी दो के उदय के बारह भंग जानो। बंधक के भेद के होने वाले उन भंगों को मिलाने से पाँच कम एक हजार उदयविकल्प होते हैं।

दो के उदय में बारह भंग और चार कषायों के चार भंग होते हैं। शेष तो जो पूर्व में कहे वे ही भंग होने से नौ सौ छियत्तर भंग होते हैं।

विशेषार्थ—कितने ही आचार्य चार का बंध जितने काल होता है, उसके आद्यकाल में वेद का उदय मानते हैं। अतः उनके मत से चार के बंध में भी संज्वलन चार कषाय को तीन वेद के साथ गुणा करने पर दो के उदय के बारह भंग होते हैं। अर्थात् पाँच के बंध और दो के उदय में जो बारह भंग बताये हैं वही बारह भंग चार के बंध और दो के उदय में भी होते हैं। उदयगत प्रकृतियों में कुछ भी अंतर नहीं होने पर भी बंध के भेद से भिन्न हैं। पहले के बारह भंग पाँच के बंध सम्बन्धी हैं और यहाँ कहे बारह भंग चार के बंध सम्बन्धी हैं। इसलिये बंध के भेद से होने वाले उन बारह विकल्पों को पूर्व के उदयगत विकल्पों में मिलाने पर पाँच कम एक हजार यानि नौ सौ पंचानवे विकल्प होते हैं।

यदि बंधस्थान के भेद से अन्तर की विवक्षा न करें तो पाँच के बंध एवं चार के बंध तथा दो के उदय में होने वाले भंग एक ही स्वरूप वाले हैं। इसलिये सब मिलाकर दो के उदय के भंग बारह ही होते हैं तथा बंधस्थान के भेद से एक के उदय के भंग भी एक स्वरूप वाले होने से चार ही होते हैं। जिससे सोलह भंग पूर्वोक्त उदय के नौ सौ साठ विकल्पों में मिलाने पर नौ सौ छियत्तर उदयविकल्प होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारांश यह है कि बंधस्थान के भेद से भेद की विवक्षा न करने पर दो के उदय के बारह विकल्पों और संज्वलन चार कषाय के उदय के चार विकल्पों को पूर्वोक्त नौ सौ साठ विकल्पों में मिलाने पर सब नौ सौ छियत्तर उदयविकल्प होते हैं ।

अब मोहनीयकर्म के पूर्वोक्त उदयविकल्पों का गुणस्थानों में विचार करते हैं ।

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के उदय (उदीरणा) विकल्प

मिच्छाइ अप्पमत्तंतयाण अट्ठट्ठ होंति उदयाणं ।
चउवीसाओ सासाण-मीसअपुव्वाण चउ चउरो ॥३१॥
चउवीसगुणा एए बायरसुहुमाण सत्तरस अण्णे ।
सव्वेसुवि मोहुदया पण्णसट्ठा बारससयाओ ॥३२॥
उदयविगप्पा जे जे उदीरणाएवि होंति ते ते उ ।
अंतमुहुत्तिय उदया समयादारब्भ भंगा य ॥३३॥

शब्दार्थ—**मिच्छाइ**—मिथ्यादृष्टि से लेकर, **अप्पमत्तं तयाण**—अप्रमत्तसंयत पर्यन्त, **अट्ठट्ठ**—आठ-आठ, **होंति**—होती हैं, **उदयाणं**—उदय की, **चउवीसाओ**—चौबीसी, **सासाण**—सासादन, **मीस**—मिश्र, **अपुव्वाण**—अपूर्वकरण की, **चउ चउरो**—चार-चार ।

चउवीसगुणा—चौबीस से गुणा, **एए**—इनको, **बायरसुहुमाण**—बादरसंपराय और सूक्ष्मसंपराय, **सत्तरस**—सत्रह, **अण्णे**—अन्य, **सव्वेसुवि**—सभी, **मोहुदया**—मोहनीय के उदयविकल्प, **पणसठ्ठा**—पेंसठ, **बारससयाओ**—बारह सौ ।

उदयविगप्पा—उदयविकल्प, **जे-जे**—जो जो, **उदीरणाएवि**—उदीरणा में भी, **होंति**—होते हैं, **ते ते उ**—वे सभी, **अंतमुहुत्तिय**—अन्तर्मुहूर्त वाले, **उदया**—उदय, **समयादारब्भ**—समय से लेकर, **भंगा**—भंग, **य**—और ।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक उदय की आठ-आठ चौबीसी और सासादन, मिश्र व अपूर्वकरण की चार-चार चौबीसी होती हैं । इनको चौबीस से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणा करके बादरसंपराय एवं सूक्ष्मसंपराय के सत्रह भंगों को मिलाने से सभी गुणस्थानों में मोहनीय के कुल उदयभंग बारह सौ पैंसठ होते हैं।

उदय के जो-जो विकल्प होते हैं, वे सभी उदीरणा में भी होते हैं। ये सभी उदयविकल्प एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल वाले हैं।

विशेषार्थ—सासादन एवं मिश्र गुणस्थान को छोड़कर मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त अर्थात् मिथ्यादृष्टि, अविरत-सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इन पांच गुणस्थानों में उदयविकल्पों की आठ-आठ चौबीसी होती हैं और सासादन, मिश्र एवं अपूर्वकरण इन तीन गुणस्थानों में से प्रत्येक में चार-चार चौबीसी होती हैं। इस प्रकार गुणस्थान के भेद से भेद करने पर कुल बावन चौबीसी होती हैं।[1] इन बावन को चौबीस से गुणा करने पर (५२ × २४ = १२४८) बारह सौ अड़तालीस भंग होते हैं तथा इनमें नौवें, दसवें गुणस्थान के सत्रह भंगों[2] को मिलाने पर सभी गुणस्थानों के मोहनीयकर्म के सभी उदयविकल्प (१२४८ + १७ = १२६५) बारह सौ पैंसठ होते हैं। तथा—

स्वरूपतः—सामान्य से, बंधस्थान के भेद से अथवा गुणस्थान के भेद से उदय के जो-जो विकल्प पूर्व में कहे गये हैं वे सभी उदीरणा में भी समझना चाहिये। क्योंकि उदय और उदीरणा सहभावी हैं। यद्यपि

---

१ इन समस्त चौबीसियों का गाथा २६ के प्रसंग में विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। इतना विशेष है कि वहां बंधस्थान के भेद से और यहां गुणस्थानापेक्षा चौबीसियों का भेद किया है।

२ गाथा ३० के अनुसार पांच आदि के बंध में अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान के दो के उदय में बारह और एक के उदय में चार कुल सोलह तथा बंध के अभाव में सूक्ष्मसंपराय का एक के उदय में एक इस प्रकार सत्रह भंग हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन वेद और संज्वलनकषाय की पर्यन्तावलिका में उदीरणा नहीं होती है, केवल उदय ही होता है, तो भी उस पर्यन्तावलिका को छोड़कर शेष समय में उदय के साथ उदीरणा होती ही है, जिससे भंगों की संख्या में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

अब इन उदयस्थानों और भंगों का काल प्रमाण बतलाते हैं—

एक के उदय से लेकर दस के उदय तक के सभी उदय-उदयस्थान और उनके सभी भंग एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त कालमान वाले हैं। अर्थात् उन सभी उदयस्थानों और उनके सभी भंगों का जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है। वे उदयस्थान या उन-उन उदयस्थानों के प्रत्येक भंग जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं। तत्पश्चात् वह उदयस्थान या भंग बदल जाता है। क्योंकि चार से लेकर दस तक के प्रत्येक उदयस्थान में कोई भी एक वेद और कोई भी एक युगल अवश्य होता है। उस वेद या युगल में से किसी भी वेद या युगल का अन्तर्मुहूर्त के बाद अवश्य परावर्तन होता है। कोई भी एक ही वेद या एक ही युगल अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल उदय में नहीं रहता है। इसीलिये प्रत्येक उदयस्थान या उसके भंगों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दो के और एक के उदय का अन्तर्मुहूर्त काल तो प्रसिद्ध है। क्योंकि दो का या एक का उदय नौवें गुणस्थान में और एक का उदय दसवें गुणस्थान में होता है और उन गुणस्थानों का काल ही अन्तर्मुहूर्त है तथा जघन्य से प्रत्येक उदयस्थान या भंग का काल एक समय है।

प्रश्न—एक समय का काल किस प्रकार घटित होता है?

उत्तर—किसी भी विवक्षित एक उदयस्थान में या किसी भी एक भंग में एक समय रहकर दूसरे समय में अन्य गुणस्थान में जाये तब बंधस्थान के भेद से, गुणस्थान के भेद से या स्वरूपतः अन्य उदयस्थान में या अन्य भंग में जाता है। इसलिये सभी उदयस्थानों और भंगों का काल जघन्य से एक समय कहा है।

उक्त कथन से यह फलितार्थ निकलता है कि एक से दूसरे गुण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में जाने पर तो प्रत्येक उदयस्थान या प्रत्येक भंग का जघन्य-काल एक समय है और यदि एक गुणस्थान में लंबे काल तक रहे तो प्रत्येक उदयस्थान या भंग का अन्तर्मुहूर्त काल होना चाहिये।

अब किस गुणस्थान में किस मोह प्रकृति का उदयविच्छेद होता है यह स्पष्ट करते हैं—

मोहप्रकृतियों के उदयविच्छेदक गुणस्थान

मिच्छत्तं अणमीसं चउरो-चउरो कसाय वा संमं ।
ठाइ अपुव्वे छक्कं वेयकसाया तओ लोभं ॥३४॥

शब्दार्थ—**मिच्छत्तं**—मिथ्यात्व, **अणमीसं**—अनन्तानुबंधि, मिश्र मोहनीय, **चउरो-चउरो**—चार-चार, **कसाय**—कषाय, **वा**—और, **संमं**—सम्यक्त्वमोहनीय, **ठाइ**—रहते हैं, होते हैं, **अपुव्वे**—अपूर्वकरण गुणस्थान, **छक्कं**—हास्यादि षट्क, **वेयकसाया**—वेद और कषाय, **तओ**—तत्पश्चात्, **लोभं**—संज्वलन लोभ।

गाथार्थ—मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधि, मिश्रमोहनीय और चार-चार कषाय अनुक्रम से पहले से पांचवें गुणस्थान तक होते हैं। चौथे से सातवें तक सम्यक्त्वमोहनीय विकल्प से रहती है। हास्यादिषट्क अपूर्वकरणगुणस्थान तक तथा वेद और संज्वलन-कषायत्रिक नौवें तक और लोभ दसवें गुणस्थान तक रहते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के उदय होने के गुणस्थानों का संकेत किया है। अनुक्रम से जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यात्वमोहनीय का उदय पहले मिथ्यात्वगुणस्थान तक रहता है अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय का उदयविच्छेद पहले मिथ्यात्व गुण-स्थान में होता है। तत्पश्चात् अन्य किसी गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय नहीं रहता है।

इसी प्रकार अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क का उदयविच्छेद सासादनगुणस्थान में, मिश्रमोहनीय का मिश्रगुणस्थान में, अप्रत्या-ख्यानावरणकषाय-चतुष्क का अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क का उदयविच्छेद देशविरतगुणस्थान में होता है।

उदयापेक्षा सम्यक्त्वमोहनीय का अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त विकल्प से उदयविच्छेद होता है—कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता है। क्योंकि औपशमिक सम्यग्दृष्टि अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उदय नहीं होता है, किन्तु क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के उदय होता है।

हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा रूप हास्यषट्क का उदयविच्छेद अपूर्वकरण गुणस्थान में होता है तथा पुरुषवेदादि वेदत्रिक और संज्वलन क्रोध, मान, माया इन छह प्रकृतियों का उदयविच्छेद अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में तथा संज्वलन लोभ का उदयविच्छेद दसवें सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान में होता है।

जिस जिस गुणस्थान में जिन प्रकृतियों का उदयविच्छेद बताया है उसका यह आशय है कि उस-उस गुणस्थान तक तो उदय रहता है, किन्तु उसके बाद के गुणस्थानों में उदय नहीं रहता है।

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का कथन जानना चाहिये।[1] अब मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का विचार करते हैं।

मोहनीयकर्म के सत्तास्थान

अट्ठगसत्तगछक्कगचउतिगदुगएक्कगाहिया वीसा।
तेरस बारेक्कारस संते पंचाइ जा एक्कं ॥३५॥

शब्दार्थ—**अट्ठग**—आठ, **सत्तग**—सात, **छक्कग**—छह, **चउतिगदुगएक्कगाहिया**—चार, तीन, दो और एक अधिक, **वीसा**—बीस, **तेरस**—तेरह, **बारेक्कारस**—बारह, ग्यारह, **संते**—सत्तास्थान, **पंचाइ**—पांच आदि (पांच से लेकर), **जा**—तक, **एक्कं**—एक।

---

१ मोहनीयकर्म के उदयस्थानों सम्बन्धी समग्र कथन का प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक बीस, तेरह, बारह, ग्यारह तथा पांच से लेकर एक तक कुल पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—मोहनीय के पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं। वे इस प्रकार हैं—अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक।

इन सत्तास्थानों में गर्भित प्रकृतियों के नाम बंधविधिप्ररूपणा-अधिकार में कहे गये हैं। अब इन सत्तास्थानों को गुणस्थानों में घटित करते हैं।

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थान

अणमिच्छमीससम्माण अविरया अप्पमत्त जा खवगा।
समयं अट्ठकसाए नपुंसइत्थी कमा छक्क ॥३६॥
पुंवेयं कोहाई नियट्टि नासेइ सुहुम तणुलोभं।
तिण्णेगतिपण चउसुं तेक्कारस चउति संताणि ॥३७॥

शब्दार्थ—**अणमिच्छमीससम्माण**—अनन्तानुबंधि, मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय, **अविरया**—अविरत, **अप्पमत्त**—अप्रमत्तसंयत, **जा**—तक, **खवगा**—क्षपक, **समयं**—एक साथ, **अट्ठकसाए**—आठ कषाय, **नपुंसइत्थी**—नपुंसक, स्त्रीवेद, **कमा**—क्रम से, **छक्क**—हास्यषट्क को।

पुंवेयं—पुरुषवेद, **कोहाइ**—क्रोधादि, **नियट्टि**—अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान वाला, **नासेइ**—क्षय करता है, **सुहुम**—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान वाला, **तणुलोभं**—संज्वलन लोभ को, **तिण्णेगतिपण**—तीन, एक, तीन, पांच, **चउसुं**—चार में, **तेक्कारस**—तीन, ग्यारह, **चउति**—चार, तीन, **संताणि**—सत्तास्थान।

गाथार्थ—अविरत से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव अनन्तानुबंधि, मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वमोहनीय के क्षपक हैं। अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान वाला आठ कषायों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को एक साथ क्षय करता है, तत्पश्चात् नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यषट्क, पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध, मान, माया को अनुक्रम से क्षय करता है। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान वाला संज्वलन लोभ का क्षय करता है। तीन, एक, तीन, चार में पांच, तीन, ग्यारह, चार और तीन इस प्रकार मिथ्यात्व से लेकर उपशांतमोहगुण-स्थान तक अनुक्रम से सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में मोहनीयकर्म की प्रकृतियों के सत्ता-विच्छेद के गुणस्थानों का संकेत करने के साथ प्रत्येक गुणस्थान में संभव सत्तास्थानों को बतलाया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'अणमिच्छमीससम्माण अविरया अप्पमत्त जा खवगा'—अर्थात् अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क, मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय इन सात प्रकृतियों को चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक के जीव क्षय करते हैं। अर्थात् उक्त चार गुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थान में वर्तमान जीव इस सप्तक का क्षय करते हैं और उनमें भी पहले अनन्तानुबंधि-कषायचतुष्क का और उसके बाद दर्शनत्रिक का क्षय करते हैं। जिससे अविरत आदि गुणस्थानों में जब तक सप्तक का क्षय न हो तब तक उसकी सत्ता होती है। तत्पश्चात्, सर्वथा सत्ता नहीं होती है।

'समयं अट्ठकसाए नियट्टि नासेइ' अर्थात् क्षपकश्रेणिवर्ती अनि-वृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क इन आठ कषायों का एक साथ सत्ताविच्छेद होता है और उसके बाद अनुक्रम से नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यषट्क, पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध, मान, माया का विच्छेद होता है। इस क्रम से क्षपकश्रेणि में वर्तमान जीव नौवें गुणस्थान में मोहनीयकर्म की बीस प्रकृतियों का क्षय करता है—'नपुंसइत्थी कमा छक्क पुंवेयं कोहाइ नियट्टि नासेइ'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टीकृत सूक्ष्म लोभ का सूक्ष्मसंपराय-गुणस्थानवर्ती नाश करता है—'नासेइ सुहुम तणुलोभ'।

इस प्रकार से गुणस्थानापेक्षा जिस क्रम से मोहनीय की प्रकृतियों का क्षय होता है, उससे चौबीस आदि बारह सत्तास्थानों का विवेचन किया गया जानना चाहिये तथा शेष तीन सत्तास्थान किस तरह बनते हैं, इसका संकेत आगे किया जाने वाला है, तो भी भ्रम न हो जाये, इसलिये संक्षेप में उनका संकेत यहाँ करते हैं।

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियां सत्ता में हों तब अट्ठाईस, सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वलना हो तब सत्ताईस तथा मिश्र-मोहनीय की उद्वलना हो तब छब्बीस अथवा अनादि मिथ्या-दृष्टि के छब्बीस, अट्ठाईस में से अनन्तानुबंधिचतुष्क की विसंयोजना होने पर चौबीस, मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय होने पर तेईस, मिश्र मोहनीय का क्षय होने पर बाईस और सम्यक्त्वमोहनीय का क्षय होने पर क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इक्कीस प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं।

तत्पश्चात् क्षपकश्रेणि में मध्यम आठ कषायों का क्षय होने पर तेरह, नपुंसकवेद का क्षय होने पर बारह, स्त्रीवेद का क्षय होने पर ग्यारह, हास्यषट्क का क्षय होने पर पांच, पुरुषवेद का क्षय होने पर चार, उसके बाद संज्वलन क्रोध का क्षय होने पर तीन, संज्वलन मान का क्षय होने पर दो, संज्वलन माया का क्षय होने पर एक संज्वलन लोभ सत्ता में होता है।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं।

प्रत्येक गुणस्थान के सत्तास्थान

अब प्रत्येक गुणस्थान में संभव सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थान में अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

सासादन गुणस्थान में एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रदृष्टिगुणस्थान में अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस प्रकृतिक।

अपूर्वकरण गुणस्थान में अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं—अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक।

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस और एक प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

उपशांतमोहगुणस्थान में अट्ठाईस, चौबीस, और इक्कीस प्रकृति वाले तीन सत्तास्थान होते हैं।

इन समस्त सत्तास्थानों का विस्तार से विचार संवेध के प्रसंग में किया जा रहा है। यहाँ तो इनकी सूचना मात्र दी है।

जिन छब्बीस आदि सत्तास्थानों का पूर्व में विचार नहीं किया गया है, उनको यहाँ बतलाते हैं—

छव्वीसणाइमिच्छे उव्वलणाए व सम्ममीसाणं।

चउवीस अणविजोए भावो भूओ वि मिच्छाओ ॥३८॥

शब्दार्थ—**छव्वीस**—छब्बीस प्रकृतिक, **णाइमिच्छे**—अनादि मिथ्यादृष्टि को, **उव्वलणाए**—उद्वलना करने पर, **व**—और, **सम्ममीसाणं**—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय को, **चउवीस**—चौबीस प्रकृतिक, **अणविजोए**—अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने पर, **भावो**—सत्ता, **भूओ वि**—पुनः भी, **मिच्छाओ**—मिथ्यात्व के निमित्त से।

गाथार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि के छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय को उद्वलना होने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं। अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने पर चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। मिथ्यात्व के निमित्त से अनन्तानुबंधि की पुनः भी सत्ता होती है।

विशेषार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि के मोहनीयकर्म का छब्बीस प्रकृतिक रूप एक ही सत्तास्थान[1] होता है अथवा अट्ठाईस की सत्ता वाला जब सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय की उद्वलना करता है तब छब्बीस की सत्ता होती है और अट्ठाईस की सत्ता वाला सम्यक्त्व-मोहनीय की उद्वलना कर चुका किन्तु अभी मिश्रमोहनीय की उद्वलना नहीं की है तो जब तक उद्वलना न की हो तब तक उसको सत्ताईस प्रकृतियां सत्ता में होती हैं तथा अनन्तानुबंधि की विसंयोजना[2] करे तब चौबीस प्रकृति सत्ता में होती हैं।

प्रश्न—जब अनन्तानुबंधि कषाय की विसंयोजना की यानि सत्ता में से निर्मूल हुई तब असद्भूत हुई उन कषायों की सत्ता का पुनः प्रादुर्भाव किस प्रकार होता है ? क्योंकि जो सत्ता में से ही नष्ट हो गई वह पुनः सत्ता में कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर—मिथ्यात्व से अनन्तानुबंधि की क्षपणा करने वाले ने अनन्तानुबंधि को सत्ता में से निर्मूल किया, परन्तु उसकी बीज रूप मिथ्यात्वमोहनीय को नष्ट नहीं किया है। जब तक वह बीज है तब तक अनन्तानुबंधि की सत्ता होना संभव है। क्योंकि मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से जब प्रथम गुणस्थान में जाता है तब मिथ्यात्व रूप निमित्त द्वारा अनन्तानुबंधि कषाय का बंध करता है और जब बंध करता है तब सत्ता में अवश्य प्राप्त होती है।

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का विस्तार से विवेचन जानना चाहिये। इसी प्रसंग में यह भी संकेत किया है कि मोहनीय कर्म प्रकृतियों की उद्वलना भी होती है। उनके कौन उद्वलक होते

---

१ एक साथ जितनी प्रकृतियां सत्ता में होती है, उसे सत्तास्थान कहते हैं।

२ विसंयोजना का अर्थ क्षपणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं अतः अब मोहनीयकर्म की प्रकृतियों के उद्‌वलकों का कथन करते हैं।

मोहनीयकर्मप्रकृतियों के उद्‌वलक

सम्ममीसाणं मिच्छो सम्मो पढमाण होइ उव्वलगो।
बंधावलियाउप्पिं उदओ संकंतदलियस्स ॥३९॥

शब्दार्थ—**सम्ममीसाणं**—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का, **मिच्छो**—मिथ्यादृष्टि, **सम्मो**—सम्यग्दृष्टि, **पढमाण**—प्रथम (अनन्तानुबंधि) कषायों का, **उव्वलगो**—उद्‌वलक, **बंधावलियाउप्पिं**—बंधावलिका के बाद, **उदओ**—उदय, **संकंतदलियस्स**—संक्रांत दलिक का।

गाथार्थ—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय का उद्‌वलक मिथ्यादृष्टि और अनन्तानुबंधि कषाय का सम्यग्दृष्टि है तथा बंधावलिका के जाने के बाद संक्रांत दलिक का उदय होता है।

विशेषार्थ—गाथा के पूर्वार्ध में उद्‌वलक और उत्तरार्ध में अनन्तानुबंधि कषाय के उदय के करण सूत्र का संकेत किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'सम्ममीसाणं मिच्छो' अर्थात् सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की उद्‌वलना मिथ्यादृष्टि करता है तथा 'सम्मो पढमाण होइ उव्वलगो' अर्थात् अनन्तानुबंधि की उद्‌वलना—चौथे से सातवें गुणस्थान तक के सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं।

उद्‌वलित अनन्तानुबंधि कषाय का पहले गुणस्थान में इस तरह उदय होता है कि अनन्तानुबंधि की उद्‌वलना करने वाला मिथ्यात्व के उदय से गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है। जिस समय मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है, उसी समय से बीजभूत मिथ्यात्व रूप हेतु द्वारा अनन्तानुबंधि का बंध करना प्रारम्भ करता है और जिस समय से बंध करने की शुरुआत करता है उसी समय से पतद्‌ग्रह रूप हुई उसी अनन्तानुबंधि में अप्रत्याख्यानावरणादि कषाय प्रकृतियों के दलिक संक्रमित होते हैं और संक्रमावलिका के बीतने के बाद उस संक्रांत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिक का उदय होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने के बाद मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उदय से पतन कर जिस समय मिथ्यात्व गुणस्थान में आता है, उस समय से एक आवलिका बाद अवश्य अनन्तानुबंधि कषाय का उदय होता है। पतद् विषयक विस्तृत विचार पूर्व में (गाथा २६ में) किया जा चुका है।

इस प्रकार से मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का विचार करने के बाद अब बंधस्थानों आदि के परस्पर संवेध का वर्णन करते हैं।

मोहनीयकर्म का संवेध

बावीसं बंधंते मिच्छे सत्तोदयंमि अडवीसा।
संतं छसत्तवीसा य होंति सेसेसु उदएसु ॥४०॥

शब्दार्थ—**बावीसं**—बाईस, **बंधंते**—बंध होता है, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **सत्तोदयंमि**—सात का उदय होने पर, **अडवीसा**—अट्ठाईस की, **संतं**—सत्ता, **छसत्तवीसा**—छब्बीस, सत्ताईस की, **य**—और, **होंति**—होती है, **सेसेसु-उदएसु**—शेष उदयों में।

गाथार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान में बाईस का बंध होता है और वहां सात का उदय होने पर अट्ठाईस की सत्ता होती है तथा शेष उदयों में छब्बीस और सत्ताईस की भी सत्ता होती है।

विशेषार्थ—गाथा में गुणस्थानों के क्रम से मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का परस्पर संवेध का विचार प्रारम्भ किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'बावीसं बंधंते मिच्छे' पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में मोहनीय कर्म की बाईस प्रकृतियों का बंध होता है और वहां सात प्रकृतिक उदयस्थान होने पर अट्ठाईस प्रकृति का समुदाय रूप एक ही सत्तास्थान होता है—'सत्तोदयंमि अडवीसा'।

सात का उदयस्थान अनन्तानुबंधि के उदय बिना होता है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अनन्तानुबंधि के उदय बिना का सात का उदयस्थान किस तरह और कितने काल होता है, यह यदि समझ में आ जाये तो सात के उदय में अट्ठाईस का एक ही सत्तास्थान हो सकता है, यह समझा जा सकेगा। इसलिये अब उसी को स्पष्ट करते हैं—

किसी जीव ने सम्यग्दृष्टि होने पर अनन्तानुबंधि की उद्वलना की—सत्ता में से निर्मूल किया, तत्पश्चात् कालान्तर में तथाप्रकार के परिणामवश मिथ्यात्व में गया। जिस समय मिथ्यादृष्टि हुआ उसी समय से मिथ्यात्व रूप निमित्त के द्वारा अनन्तानुबंधि कषाय का बंध प्रारम्भ किया और बंधती हुई उस अनन्तानुबंधि कषाय में बंध के साथ ही अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों को संक्रमित करना भी आरम्भ किया तो इस प्रकार के मिथ्यादृष्टि को बंधावलिका या संक्रमावलिका रूप एक आवलिका पर्यन्त अनन्तानुबंधि कषाय का उदय नहीं होता है। अनन्तानुबंधि की विसंयोजना किये बिना जो मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है उसे तो अवश्य अनन्तानुबंधि कषाय का उदय होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि को एक आवलिका काल पर्यन्त सात के उदय में अट्ठाईस प्रकृति रूप एक ही सत्तास्थान सम्भव है।

इसके अतिरिक्त शेष रहे आठ, नौ और दस प्रकृति रूप तीन उदय स्थानों में छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक इस तरह तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

आठ प्रकृतिक उदयस्थान के दो प्रकार हैं—१. अनन्तानुबंधि उदय रहित और २. अनन्तानुबंधि उदय सहित। इनमें से अनन्तानुबंधि के उदय बिना के आठ के उदय में सात के उदय में कही गई युक्ति के अनुसार अट्ठाईस का एक ही सत्तास्थान होता है और अनन्तानुबंधि के उदय वाले आठ के उदय में पूर्वोक्त तीन (छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक) सत्तास्थान होते हैं। उनमें से जब तक सम्यक्त्व-मोहनीय की उद्वलना न हो तब तक अट्ठाईस, सम्यक्त्व मोहनीय की उद्वलना के बाद सत्ताईस और मिश्रमोहनीय की उद्वलना के बाद छब्बीस अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि के छब्बीस प्रकृतिक सत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान होता है। इसी तरह नौ के उदय में भी तीन सत्तास्थान होते हैं। दस का उदयस्थान अनन्तानुबंधि सहित ही होता है। वहां भी तीन सत्तास्थान होते हैं।

सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक ये चार उदयस्थान किन प्रकृतियों के मिलने से होते हैं, यह पूर्व में कहा जा चुका है।

उक्त कथन का सारांश यह हुआ कि बाईस प्रकृतिक बंधस्थान, सात, नाठ, नौ और दस प्रकृतिक उदयस्थान तथा अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होते हैं।

सासादनगुणस्थान में इक्कीस प्रकृति के बंध में सात, आठ और नौ प्रकृतिक इन तीन उदयस्थानों में अट्ठाईस प्रकृति का समुदाय रूप एक ही सत्तास्थान होता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सासादनभाव औपशमिक सम्यक्त्व से गिरने पर प्राप्त होता है। उपशमसम्यक्त्व के बल से उस जीव ने मिथ्यात्वमोहनीय को रस-भेद से सम्यक्त्व, मिश्र और मिथ्यात्व इस तरह तीन भागों में विभाजित कर दिया है, जिससे दर्शनमोहनीयत्रिक की भी सत्ता होने से सासादनगुणस्थान में तीन उदयस्थानों में अट्ठाईस प्रकृति रूप एक सत्तास्थान होता है। यहाँ सम्यक्त्व, मिश्र मोहनीय की उद्वलना नहीं होती है। तथा—

सत्तरसबंधगे छोदयम्मि संतं इगट्ठाचउवीसा।
सगतिदुवीसा य सगट्ठगोदये नेयरिगिवीसा ॥४१॥

शब्दार्थ—**सत्तरसबंधगे**—सत्रह के बंध में, **छोदयम्मि**—छह के उदय में, **संतं**—सत्तास्थान, **इगट्ठचउवीसा**—इक्कीस, अट्ठाईस और चौबीस की, **सगतिदुवीसा**—सत्ताईस, तेईस, बाईस, **य**—और, **सगट्ठगोदये**—सात और आठ के उदय में, **नेयरिगिवीसा**—इतर (नौ) के उदय में इक्कीस का नहीं।

गाथार्थ—सत्रह के बंध और छह के उदय में इक्कीस, अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक इस तरह तीन सत्तास्थान होते हैं। सात और आठ के उदय में सत्ताईस, तेईस, बाईस और इक्कीस, अट्ठाईस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चौबीस प्रकृतिक यह छह सत्तास्थान होते हैं तथा इतर—नौ के उदय में इक्कीस का सत्तास्थान नहीं होता है।

विशेषार्थ—सत्रह के बंध और छह के उदय में इक्कीस, अट्ठाईस और चौबीस प्रकृति रूप यह तीन सत्तास्थान होते हैं तथा सात और आठ के उदय में सत्ताईस, तेईस, बाईस प्रकृतिक एवं 'य च', शब्द से ग्रहण किये गये अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक इस तरह कुल मिलाकर छह सत्तास्थान होते हैं। नौ के उदय में इक्कीस के बिना शेष पांच सत्तास्थान होते हैं।

उक्त संक्षिप्त कथन का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है—सत्रह का बंध तीसरे और चौथे गुणस्थान में होता है। तीसरे गुणस्थान में सात, आठ और नौ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं और अट्ठाईस, सत्ताईस तथा चौबीस प्रकृतिक यह तीन सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

अट्ठाईस प्रकृति की सत्ता वाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्व प्राप्त करे उसे अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। मिथ्यादृष्टि होने पर भी जिसने पहले सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वलना की परन्तु मिश्रमोहनीय की उद्वलना करना प्रारम्भ नहीं किया और बीच में ही परिणामवश मिथ्यात्व गुणस्थान से मिश्रगुणस्थान में जाये, तो उसे सत्ताईस का सत्तास्थान होता है तथा पूर्व में सम्यग्दृष्टि होने पर अनन्तानुबंधि की विसंयोजना की और बाद में परिणामों के वश मिश्र गुणस्थान प्राप्त करे तो उसे चौबीस का सत्तास्थान होता है। क्योंकि चारों गति के सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने के बाद मिश्र गुणस्थान प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए चारों गति में सम्यग्-मिथ्यादृष्टियों को चौबीस का सत्तास्थान होता है। इसी प्रकार से आठ और नौ के उदय में भी अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में छह, सात, आठ और नौ प्रकृतिक इस तरह चार उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

इक्कीस प्रकृतिक ये पांच सत्तास्थान होते हैं। तीन प्रकार के सम्यक्त्वी होते हैं। उनमें से औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के सम्यक्त्व-मोहनीय का उदय नहीं होता है, जिससे उनको उसके उदय रहित के छह, सात और आठ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होने से उसके उदय वाले सात, आठ और नौ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। सत्तास्थानों में से क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इक्कीस प्रकृतिक, औपशमिक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के अपने-अपने उदयस्थान में अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक इस तरह चार सत्तास्थान होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सत्रह के बंध में छह का उदय क्षायिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि को होता है तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इक्कीस प्रकृतिक एक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। भय अथवा जुगुप्सा सहित सात का उदय क्षायिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के होता है और सत्तास्थान छह के उदय में जिस प्रकार से बताये हैं उसी प्रकार से क्षायिक सम्यग्दृष्टि के एक इक्कीस प्रकृतिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक यह दो होते हैं। सम्यक्त्वमोहनीय सहित सात का उदय क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के होता है। इसके सर्व प्रकृति की सत्ता में अट्ठाईस प्रकृतिक और अनन्तानुबंधि के विसंयोजक के चौबीस, प्रकृतिक, क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करने पर मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय होने के बाद तेईस और उसे ही मिश्रमोहनीय का क्षय होने के बाद बाईस प्रकृतिक इस प्रकार चार सत्तास्थान होते हैं।

तेईस और बाईस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करते हुए ही होते हैं। कम से कम कुछ अधिक आठ वर्ष की (सात मास गर्भ के और आठ वर्ष प्रसव होने के बाद के, कुल कम से कम आठ वर्ष और सात मास की) अवस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले किसी मनुष्य ने क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते दर्शनमोहसप्तक का क्षय करना प्रारम्भ किया, उसे अनन्तानुबंधि और मिथ्यात्व-मोहनीय का क्षय होने के बाद तेईस का सत्तास्थान और मिश्रमोहनीय का क्षय होने के बाद बाईस प्रकृति का सत्तास्थान होता है। इसी बाईस की सत्ता वाला सम्यक्त्वमोहनीय का क्षय करते चरम ग्रास[1] में वर्तमान पूर्वबद्धायुष्क कोई जीव अपनी आयु पूर्ण हो तो काल भी करता है और काल करके चारों में से किसी भी गति में उत्पन्न होता है और वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण सत्ता में रही हुई सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति को क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। शास्त्र में कहा है—'**पट्ठवगो य मणुस्सो निट्ठवगो चउसु वि गईसु**' अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय करने की शुरुआत प्रथम संहनन वाला जिनकालिक मनुष्य ही करता है परन्तु सम्यक्त्व-मोहनीय की अंतिम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति क्षय करके चारों गति के जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। यानि क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने का प्रारम्भक मनुष्य है और पूर्णता करने वाले चारों गति के जीव होते हैं। इसलिये मोहनीय कर्म की बाईस प्रकृति की सत्ता चारों गति में होती है। भय और जुगुप्सा सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि को होता है और भय, सम्यक्त्व-मोहनीय अथवा जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय के साथ आठ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के होते हैं। सत्तास्थान की भावना सात के उदयस्थान के अनुरूप जानना चाहिये तथा भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय सहित नौ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के ही होता है। उस नौ प्रकृतिक उदयस्थान में आठ के उदय वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के जो चार सत्तास्थान कहे हैं वे ही चार सत्तास्थान होते हैं। तथा—

---

१ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसाइसु चरिमुदए इगिवीसा वज्जियाइ संताइं ।
सेसेसु होंति पंचवि तिसुवि अपुव्वंमि संततिगं ।।४२।।

शब्दार्थ—**देसाइसु**—देशविरत आदि गुणस्थानों में, **चरिमुदए**—अंतिम उदय में, **इगिवीसा**—इक्कीस, **वज्जियाइ**—छोड़कर, **संताइं**—सत्तास्थान, **सेसेसु**—शेष उदयस्थानों में, **होंति**—होते हैं, **पंचवि**—पांचों, **तिसुवि**—तीन में भी, **अपुव्वंमि**—अपूर्वकरण गुणस्थान में, **संततिगं**—तीन सत्तास्थान ।

गाथार्थ—देशविरत आदि गुणस्थानों में अंतिम उदय में इक्कीस को छोड़कर चार सत्तास्थान होते हैं और पहले के बिना शेष उदयस्थानों में पांचों सत्तास्थान होते हैं । अपूर्वकरण गुणस्थान के तीनों उदयस्थान में तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं ।

विशेषार्थ—'देसाइसु..........' देशविरत आदि–देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में अपने-अपने अंतिम उदयस्थान में इक्कीस के सिवाय पूर्व में कहे गये चार-चार सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि अंतिम उदयस्थान सम्यक्त्वमोहनीय सहित होने से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के ही होता है तथा अपना-अपना पहला उदयस्थान छोड़कर शेष उदयस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं । पहला उदयस्थान क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यग्दृष्टि के ही होता है और उस उदयस्थान में तो तीन सत्तास्थान ही होते हैं । अपूर्वकरण गुणस्थान में अपने तीन उदयस्थान में तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं ।

पूर्वोक्त संक्षेप का विशेषता के साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मोहनीयकर्म की तेरह प्रकृतियों के बंधक देशविरत के पांच, छह, सात और आठ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं । देशविरत मनुष्य और तिर्यंच के भेद से दो प्रकार के हैं । उनमें से तिर्यंचों के चारों उदयस्थानों में अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं । अट्ठाईस का सत्तास्थान तो औपशमिक सम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के होता है । तिर्यंचों में औपशमिक सम्यक्त्व प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते पहले गुणस्थान में तीन करण करके जो प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है वही होता है और उसे उस समय अट्ठाईस का सत्तास्थान होता है।

संख्यात वर्षायुष्क तिर्यंच के औपशमिक सम्यक्त्व रहते देशविरत गुणस्थान इस तरह प्राप्त होता है—अंतरकरण में वर्तमान कोई औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव देशविरति भी प्राप्त करता है। कोई मनुष्य हो तो सर्वविरति भी प्राप्त करता है। क्योंकि पहले गुणस्थान में तीन करण करके कोई चौथे गुणस्थान में, कोई देशविरतगुणस्थान में और कोई सर्वविरतगुणस्थान में जाता है। इस प्रकार से कोई विशिष्ट परिणाम वाला तिर्यंच औपशमिक सम्यक्त्व के साथ देशविरति प्राप्त करे तो उसे देशविरत गुणस्थान में औपशमिक सम्यक्त्व होता है और मात्र एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। शतक बृहच्चूर्णि में कहा है--

उवसमसम्मदिट्ठी अन्तरकरणे ठिओ कोइ देसविरइंपि लहइ,

कोइ पमत्तापमत्तभावं पि, सासायणो पुण न किंपि लहइन्ति।

अर्थात् अन्तरकरण में स्थित कोई औपशमिक सम्यग्दृष्टि देशविरति को, कोई प्रमत्त और अप्रमत्त भाव को भी प्राप्त करता है, परन्तु कोई सासादन भाव को प्राप्त नहीं करता है तथा वेदक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। उनमें से चौबीस का सत्तास्थान अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने के बाद होता है। क्योंकि चारों गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधि की विसंयोजना कर सकते हैं। शेष रहे तेईस प्रकृतिक आदि सत्तास्थान तिर्यंचों के नहीं होते हैं। क्योंकि तेईस प्रकृतिक आदि सत्तास्थान क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करते समय संभव हैं और क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य ही उत्पन्न करते हैं, तिर्यंच नहीं।

यदि कोई यहां शंका करे कि कोई मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके तिर्यंच गति में उत्पन्न हो तो उस समय तिर्यंच को भी इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान संभव हो सकता है तो फिर ऐसा क्यों कहते हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि शेष सभी सत्तास्थान तिर्यंचगति में संभव नहीं हैं। इसका उत्तर यह है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में उत्पन्न होते नहीं है परन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में ही उत्पन्न होते हैं और असंख्यात वर्ष की आयु वाले युगलिक होने से उनको देशविरत गुणस्थान होता ही नहीं है और यहाँ तो देशविरत के सत्तास्थानों का विचार किया जा रहा है। इसलिये देशविरत तिर्यंचों में तेईस प्रकृतिक आदि कोई सत्तास्थान नहीं होते हैं, यह कहा है। सप्ततिकाचूर्णि में कहा है—**'एगवीसा तिरिक्खेसु संजयासंजएसु न उव्वज्जइ, कहं? भन्नइ—संखेज्जवासाउएसु तिरिक्खेसु खाइग सम्मदिट्ठी न उव्वज्जइ, असंखिज्जवासाउएसु उववज्जेज्जा तस्स देसविरई नत्थित्ति'** मोहनीय की इक्कीस प्रकृति की सत्तावाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशविरत तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होता है, असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में उत्पन्न होता है और उन्हें देश-विरतगुणस्थान नहीं होता है तथा जो देशविरत मनुष्य है उनको पाँच के उदय में इक्कीस, चौबीस और अट्ठाईस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं। छह और सात के प्रत्येक उदय में पांच सत्तास्थान होते हैं। आठ के उदय में इक्कीस का सत्तास्थान छोड़कर शेष चार सत्तास्थान होते हैं। ये सभी सत्तास्थान अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में किये गये वर्णन के अनुसार समझ लेना चाहिये।

इसी प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नौ के बंध, चार के उदय में अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक इस तरह तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। पाँच और छह के उदय में अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस प्रकृतिक इस तरह पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं और सात के उदय में इक्कीस को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान होते हैं जो ऊपर किये वर्णन के अनुसार समझ लेना चाहिए।

अपूर्वकरणगुणस्थान में नौ के बंध में चार, पाँच और छह प्रकृतिक इस तरह तीन उदयस्थान होते हैं। इन प्रत्येक उदयस्थान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान क्षायिक और औपशमिक मनुष्य के ही होता है, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के नहीं होता है। जिससे क्षायिक सम्यग्दृष्टि को अपने प्रत्येक उदयस्थान में इक्कीस का एक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि को अपने प्रत्येक उदयस्थान में अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं तथा दोनों सम्यग्दृष्टियों के चार, पाँच और छह प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। तथा—

पंचाइबंधगेसु इगट्ठचउवीसऽबंधगेगं च।
तेरस बारेक्कारस य होंति पणबंधि खवगस्स ॥४३॥
एगाहियाय बंधा चउबंधगमाइयाण संतंसा।
बंधोदयाण विरमे जं संतं छुभइ अण्णत्थ ॥४४॥

शब्दार्थ—**पंचाइबंधगेसु**—पांच आदि के बंधक को, **इगट्ठचउवीस**—इक्कीस, अट्ठाईस, चौबीस प्रकृतिक, **अबंधगेगं**—अबंधक के एक, **च**—और, **तेरस बारेक्कारस**—तेरह, बारह, ग्यारह, **य**—और, **होंति**—होते हैं, **पणबंधि**—पांच के बंधक, **खवगस्स**—क्षपक के।

एगाहियाय—एक प्रकृतिक से अधिक, **बंधा**—बंध की अपेक्षा, **चउबंधगमाइयाण**—चार आदि प्रकृति के बंधक के, **संतंसा**—सत्तास्थान, **बंधोदयाण विरमे**—बंध और उदय के रुकने के बाद, **जं**—जो, **संतं**—सत्तागत, **छुभइ**—संक्रमित होता है, **अण्णत्थ**—अन्यत्र।

गाथार्थ—पाँच आदि प्रकृति के बंधक के इक्कीस, अट्ठाईस एवं चौबीस ये तीन और अबंधक के एक तथा चकार से इक्कीस, अट्ठाईस और चौबीस ये तीन कुल चार सत्तास्थान होते हैं। पाँच के बंधक क्षपक के तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान तथा चार आदि प्रकृति के बंधक के बंध की अपेक्षा एक प्रकृति से अधिक सत्तास्थान होता है। क्योंकि बंध और उदय के रुकने के बाद सत्तागत कर्म अन्यत्र संक्रमित होता है।

विशेषार्थ—पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृति के बंधक को अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान में और अबंधक को सूक्ष्म संपराय एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशांतमोहगुणस्थान में इक्कीस, चौबीस और अट्ठाईस प्रकृतिक इस तरह तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। उनमें से इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के, अनन्तानुबंधि के विसंयोजक औपशमिक सम्यग्दृष्टि के चौबीस और सप्तक के उपशमक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। उपर्युक्त समस्त सत्तास्थान यथासंभव दो के उदय में, एक के उदय में और अनुदय में उपशम श्रेणि में होते हैं। उनमें से उपशम श्रेणि में नौवें गुणस्थान में पाँच के बंध दो के उदय में, चार के बंध एक के उदय में, तीन के बंध एक के उदय में, दो के बंध एक के उदय में, और एक के बंध एक के उदय में क्षायिक सम्यग्दृष्टि को इक्कीस प्रकृतिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टि को अट्ठाईस तथा चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा अबंधक सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में एक के उदय में क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इक्कीस और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस तथा चौबीस प्रकृतिक इस तरह दो सत्तास्थान होते हैं।

उपशांतमोहगुणस्थान में मोहनीयकर्म की किसी भी प्रकृति का बंध या उदय नहीं होता है, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इक्कीस और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक इस तरह तीन सत्तास्थान होते हैं।

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में उपशम श्रेणि में उपर्युक्त तीन सत्तास्थानों के उपरान्त क्षपकश्रेणि का एक प्रकृत्यात्मक चौथा सत्तास्थान भी होता है।

क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ हुए के अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में पाँच के बंध और दो के उदय में आठ कषाय का क्षय न किया हो वहाँ तक इक्कीस प्रकृति रूप सत्तास्थान होता है। आठ कषाय का क्षय करने के बाद तेरह प्रकृतिक तत्पश्चात् नपुंसकवेद का क्षय होने पर बारह प्रकृतिक और स्त्रीवेद का क्षय होने पर ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषवेद से क्षपकश्रेणि मांडने वाले के उपर्युक्त क्रमानुसार प्रकृतियों का क्षय होता है, यानि उसे उपर्युक्त सत्तास्थान होते हैं। नपुंसकवेद से श्रेणि आरम्भ करने वाला स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का युगपत् क्षय करता है। उन दो का जिस समय क्षय होता है उसी समय पुरुषवेद के बंध का विच्छेद होता है। उसके बाद पुरुषवेद और हास्यादिषट्क का एक साथ ही क्षय करता है। जिससे उसे पाँच के बंध और दो के उदय में आठ कषाय का जब तक क्षय न किया हो तब तक इक्कीस प्रकृतिक और आठ कषाय का क्षय करे तब तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा चार के बंध और एक के उदय में ग्यारह प्रकृतिक तथा हास्यषट्क तथा पुरुषवेद का क्षय होने पर चार प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तत्पश्चात् पुरुषवेद से श्रेणि आरम्भ करने वाले की तरह उदयस्थान होते हैं।

स्त्रीवेद से क्षपकश्रेणि आरंभ करने वाला पहले नपुंसकवेद का क्षय करता है, उसके बाद अन्तर्मुहूर्त में स्त्रीवेद का क्षय करता है। जिस समय स्त्रीवेद का क्षय हुआ उसी समय पुरुषवेद का बंधविच्छेद होता है और तत्पश्चात् पुरुषवेद और हास्यादिषट्क को एक साथ क्षय करता है। जिससे उसे पांच के बंध और दो के उदय में आठ कषाय का जब तक क्षय न हुआ हो तब तक इक्कीस का, आठ कषाय का क्षय होने के बाद तेरह का और नपुंसकवेद का क्षय होने पर बारह प्रकृति रूप सत्तास्थान होता है। तथा—

चार के बंध और एक के उदय के स्त्रीवेद का क्षय होने पर ग्यारह का और हास्यषट्क तथा पुरुषवेद का क्षय होने पर चार का सत्तास्थान होता है। तत्पश्चात् पुरुषवेद से श्रेणि आरम्भ करने वाले की तरह उदयस्थान तथा सत्तास्थान होते हैं। वे इस प्रकार—जब तक नपुंसकवेद या स्त्रीवेद से श्रेणि आरम्भ करने वाला हास्यादि-षट्क और पुरुषवेद का क्षय न करे तब तक वेदोदयरहित किसी भी एक कषाय के उदय में वर्तमान चार के बंधक को ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुरुषवेद और हास्यषट्क का युगपत् क्षय हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब चार प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस तरह स्त्रीवेद और नपुंसकवेद से क्षपकश्रेणि स्वीकार करने वाले के पांच प्रकृति का समूह रूप सत्तास्थान सम्भव नहीं है। जो पुरुषवेद से क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ होता है, उसे जिस समय छह नोकषाय का क्षय होता है, उसी समय पुरुषवेद का बंधविच्छेद होता है। जिससे उसे चार के बंधकाल में ग्यारह प्रकृति का समूह रूप सत्तास्थान नहीं होता है परन्तु पाँच प्रकृति का समूह रूप सत्तास्थान होता है। जिससे क्षपकश्रेणि में चार के बंध और एक के उदय में चार, पांच और ग्यारह प्रकृति के समूह-रूप तीन सत्तास्थान और उपशमश्रेणि की अपेक्षा अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक इस तरह तीन सत्तास्थान होते हैं तथा सब मिलाकर चार के बंध, एक के उदय में छह सत्तास्थान होते हैं। तथा—

संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति आवलिका मात्र बाकी रहे तब उसके बंध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद होता है। क्रोध का बंधादि विच्छेद होने के बाद मान, माया और लोभ, इन तीन का बंध होता है। बंधविच्छेद के प्रथम समय में संज्वलन क्रोध का आवलिका मात्र प्रथम स्थिति सम्बन्धी और दो समयन्यून दो आवलिका काल में बंधा हुआ दलिक सत्ता में होता है। उसके सिवाय अन्य दल का क्षय हुआ होने से सत्ता में नहीं रहता है।

वह सत्तागत दल भी दो समयन्यून दो आवलिका काल में क्षय होता है। जब तक उसका क्षय हुआ होता नहीं है तब तक तीन के बंध और एक के उदय में चार प्रकृति की सत्ता होती है और क्षय होने के बाद तीन प्रकृति की सत्ता होती है। इस प्रकार क्षपकश्रेणि की अपेक्षा दो सत्तास्थान और उपशमश्रेणि की अपेक्षा पूर्वोक्त तीन, सब मिलाकर तीन के बंध और एक के उदय में पांच सत्तास्थान होते हैं। तथा—

संज्वलन मान की प्रथम स्थिति आवलिका मात्र शेष रहे तब उसके बंध, उदय और उदीरणा का युगपत् विच्छेद होता है। बंधादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विच्छेद होने के बाद संज्वलन माया और लोभ इन दो का ही बंध होता है। बंधविच्छेद के प्रथम समय में संज्वलन मान का प्रथम स्थिति संबंधी एक (उदय) आवलिका काल में भोगने योग्य दलिक और दो समय न्यून दो आवलिका जितने काल में बंधा हुआ दलिक इतना ही मात्र सत्ता में होता है। शेष सर्व का क्षय हुआ होता है। वह सत्तागत दलिक भी दो समयन्यून दो आवलिका काल में क्षय होगा। जब तक उसका क्षय न हुआ हो तब तक दो के बंध और एक के उदय में तीन की सत्ता और क्षय होने के बाद दो प्रकृति की सत्ता होती है। इस प्रकार दो के बंधक को दो सत्तास्थान और पूर्व में कहे गये उपशमश्रेणि आश्रयी तीन को मिलाकर पाँच सत्तास्थान होते हैं। तथा—

संज्वलन माया की प्रथम स्थिति आवलिका मात्र बाकी रहे तब उसके बंध, उदय और उदीरणा का एक साथ नाश होता है। उसका क्षय होने के बाद एक संज्वलन लोभ का ही बंध अवशेष रहता है। संज्वलन लोभ के बंध के प्रथम समय में संज्वलन माया का प्रथम स्थिति का आवलिका मात्र दलिक और दो समयन्यून दो आवलिका जितने काल में बंधा हुआ दलिक सत्ता में शेष रहता है, उसके सिवाय अन्य सब क्षय हो गया है। वह अवशिष्ट सत्तागत दलिक भी दो समयन्यून दो आवलिका काल में क्षय होता है। जब तक क्षय नहीं हुआ होता है, तब तक दो की सत्ता और क्षय होने के बाद मात्र एक लोभ की सत्ता होती है। इस प्रकार एक के बंध और एक के उदय में दो और एक प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं और उपशमश्रेणि आश्रयी तीन सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर पाँच सत्तास्थान होते हैं।

इसी बात का गाथा में संकेत किया गया है—चार, तीन, दो और एक के बंधक के अनुक्रम में चार, तीन, दो और एक का सत्ता-स्थान तो होता ही है परन्तु बंध की अपेक्षा एक प्रकृति में अधिक सत्ता रूप अंश होते हैं—'एगाहियाय बंधा चउबंधगमाइयाण संतंसा।'

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वे इस प्रकार जानना चाहिये कि चार के बंधक को पाँच प्रकृति रूप, तीन के बंधक को चार प्रकृति रूप, दो के बंधक को तीन प्रकृति रूप और एक के बंधक को दो प्रकृति रूप सत्तास्थान अधिक होता है। बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता का कर्म के अंश रूप में व्यवहार होने से गाथा से संतंसा यह पद दिया है। इस प्रकार होने से चार के बंधक को पांच और चार प्रकृतिक का, तीन के बंधक को चार और तीन प्रकृतिक का तथा इसी प्रकार दो और एक के बंधक को भी दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

बंध की अपेक्षा सत्ता अधिक होने का कारण यह है कि बंध और उदय का विच्छेद होने के बाद जिसके बंध और उदय का विच्छेद हुआ है, उसकी सत्ता रहती है और वह सत्तागत दलिक को अन्यत्र संक्रमित करता है—'बंधोदयाण विरमे जं संतं छुभइ अण्णत्थ।' जैसे कि पुरुषवेद के बंधादि का विच्छेद होने के बाद चार का बंधक सत्तागत पुरुषवेद का दलिक संज्वलन क्रोध में संक्रमित करता है और बंधादिक का विच्छेद होने के बाद सत्ता में शेष रहे दलिक का ऊपर संकेत किया जा चुका है।

इस प्रकार संज्वलन क्रोध के बंधादि का विच्छेद होने के बाद उसकी जो सत्ता होती है उसको तीन का बंधक संज्वलनमान में संक्रमित करता है। जब तक पूर्णरूपेण संक्रमित होकर निःसत्ताक नहीं होता है, तब तक उसकी सत्ता होती है। इसलिये चार आदि के बंध से एक-एक अधिक प्रकृति की सत्ता सम्भव है। क्षपकश्रेणि आश्रयी चार के बंधक को पांच का और चार का ये दो सत्तास्थान और स्त्रीवेद अथवा नपुंसकवेद से क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ होने वाले चार के बंधक को पूर्व में कही गई युक्ति से ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान तथा उपशमश्रेणि आश्रयी सभी के पूर्व में कहे गये तीन-तीन सत्तास्थान और सब मिलाकर चार के बंध और एक के उदय में छह सत्तास्थान होते हैं तथा शेष तीन आदि के बंधक प्रत्येक को पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब पूर्वोक्त मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों के अवस्थान काल का कथन करते हैं।

मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का अवस्थान काल

सत्तावीसे पल्लासंखंसो पोग्गलद्ध छव्वीसे।
बे छावट्ठी अडचउवीसिगिवीसे उ तेत्तीसा ॥४५॥
अंतमुहुत्ता उ ठिई तमेव दुहओ वि सेससंताणं।
होइ अणाइ अणंतं अणाइ संतं च छव्वीसा ॥४६॥

शब्दार्थ—**सत्तावीसे**—सत्ताईस का, **पल्लासंखंसो**—पल्योपम का, असंख्यातवां भाग, **पोग्गलद्ध**—अर्धपुद्गल परावर्तन, **छव्वीसे**—छब्बीस का, **बे छावट्ठी**—दो छियासठ सागरोपम, **अडचउवीस**—अट्ठाईस और चौबीस का, **इगिवीसे**—इक्कीस का, **उ**—और, **तेत्तीसा**—तेतीस सागरोपम।

अंतमुहुत्ता—अन्तर्मुहूर्त, **उ**—और, **ठिई**—स्थिति, **तमेव**—वैसे ही, **दुहओ**—दोनों, **वि**—ही, **सेससंताणं**—शेष सत्तास्थानों का, **होइ**—होता है, **अणाइ**—अनादि, **अणंतं**—अनन्त, **अणाइसंतं**—अनादि-सांत, **च**—और, **छव्वीसा**—छब्बीस का।

गाथार्थ—सत्ताईस के सत्तास्थान का पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल है, छब्बीस का कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन, अट्ठाईस और चौबीस इन दो सत्तास्थानों का दो छियासठ सागरोपम, इक्कीस का कुछ अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट काल है। प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त जघन्य काल है तथा शेष सत्तास्थानों का दोनों (जघन्य उत्कृष्ट) काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। छब्बीस के सत्तास्थान का अनादि-अनन्त और अनादि-सांत भी काल है।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों की संख्या पूर्व में कही जा चुकी है। उन सबका जघन्य और उत्कृष्ट अवस्थान काल इन दो गाथाओं द्वारा कहा है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'सतावीसे पल्लासंखंसो' अर्थात् सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजघन्योत्कृष्ट अवस्थान काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग है। वह इस प्रकार—

अट्ठाईस की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वलना करे तब सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। तत्पश्चात् इसी सत्ताईस की सत्ता वाले के मिश्र-मोहनीय की उद्वलना प्रारंभ करने के पहले मिश्रमोहनीय का उदय भी होता है और उस मिश्रमोहनीय का उदय अन्त-र्मुहूर्त तक ही होता है। इस तरह मिश्रदृष्टि को भी अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह सत्ताईस की सत्ता-वाला मिश्रदृष्टि अन्तर्मुहूर्त के बाद अवश्य मिथ्यात्व को प्राप्त करता है और मिथ्यात्व में जाकर मिश्रमोहनीय की उद्वलना करना प्रारम्भ करता है और पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने काल में पूर्णरूप से उसकी उद्वलना कर देता है। जब तक पूरी तरह से उद्वलना न कर दी हो तब तक उसकी सत्ता होती है। जिससे सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का अजघन्योत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें जितना होता है।

मिश्रमोहनीय की उद्वलना हो जाने के बाद छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन प्रमाण है—'पोग्गलद्ध छव्वीसे।' अधिक-से-अधिक उतना काल व्यतीत होने के बाद तीन करण करके अवश्य औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है और जिससे पुनः अट्ठाईस की सत्ता वाला होता है और छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि मिश्रमोहनीय की उद्वलना करके छब्बीस की सत्ता वाला होकर अन्तर्मुहूर्त के बाद ही तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व प्राप्त कर अट्ठाईस की सत्ता वाला हो सकता है। तथा—

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट अवस्थान काल कुछ अधिक दो छियासठ सागरोपम है। वह इस प्रकार जानना चाहिये—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का छियासठ सागरोपम काल है। जिससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्ता वाला वेदक सम्यक्त्वी जीव एक छियासठ सागरोपम और उसके बाद अन्तर्मुहूर्त मिश्रगुणस्थान में जाकर पुनः क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करे, उसे दूसरी बार के छियासठ सागरोपम। इस प्रकार बीच में अन्तर्मुहूर्त मिश्र गुणस्थान प्राप्त कर दो बार उत्कृष्ट स्थिति वाला क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले को अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का एक सौ बत्तीस सागरोपम काल घटित होता है। तत्पश्चात् क्षपक श्रेणि अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त करता है। अब यदि क्षपक श्रेणि प्राप्त करे तो उसे मिथ्यात्वादि का क्षय होने से अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं रहता है।[1] इस प्रकार क्षपकश्रेणि प्राप्त करने वाले की अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का अवस्थान काल दो छियासठ सागरोपम होता है और जो जीव दो छियासठ सागरोपम का काल पूर्ण कर मिथ्यात्व प्राप्त करे, वह पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र काल में सम्यक्त्वमोहनीय की पूर्ण रूप से उद्‌वलना करता है। जब तक उद्‌वलना न करे तब तक उसकी सत्ता होती है। जिससे वैसे मिथ्यादृष्टि को अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक दो छियासठ सागरोपम का अवस्थान काल होता है। इसी प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का भी अवस्थान काल समझना चाहिये—'बे छावट्ठी अडचउवीस'। परन्तु इतना विशेष है—

एक सौ बत्तीस सागरोपम का काल पूर्ण करके जो जीव मिथ्यात्व प्राप्त करता है, उसे मिथ्यात्व के पहले समय से ही अनन्तानुबंधि कषाय का बंध होने से उसकी सत्ता सम्भव है। जिससे उसके चौबीस

---

१ यहाँ बीच के मिश्रगुणस्थान सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त सहित एक सौ बत्तीस सागरोपम काल अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का कहना चाहिये था, परन्तु वैसा न कहकर गाथा में एक सौ बत्तीस सागरोपम काल कहा है। क्योंकि अन्तर्मुहूर्त काल अत्यल्प होने से उसकी विवक्षा नहीं की है। इसी तरह बीच के होने वाले मनुष्य भव की भी विवक्षा नहीं की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं रहता है। इसलिए चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का अवस्थान काल परिपूर्ण दो छियासठ सागरोपम है और दोनों सत्तास्थानों का जघन्य अवस्थान काल अन्तर्मुहूर्त है। जो इस प्रकार जाना चाहिये—

छब्बीस प्रकृति की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि तीन करण द्वारा उपशमसम्यक्त्व प्राप्त कर अट्ठाईस प्रकृति की सत्ता वाला होता है। अट्ठाईस प्रकृति की सत्ता वाले उस उपशम सम्यग्दृष्टि को जिस क्षण सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होता है, उसी क्षण दर्शनसप्तक का क्षय करना प्रारम्भ करता है। दर्शनसप्तक का क्षय करते पहले अनन्तानुबंधिकषाय का क्षय करता है। जब तक उसका क्षय न करे तब तक अट्ठाईस प्रकृतिक और क्षय करने के बाद चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। वह चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान भी मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय न करे तब तक और मिथ्यात्व का क्षय करे तब तेईस का सत्तास्थान होता है। जिससे अट्ठाईस और चौबीस प्रकृति रूप दोनों सत्तास्थानों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा—

'इगिवीसे उ तेत्तीसा' अर्थात् इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागरोपम है। जो इस प्रकार जानना चाहिये—मनुष्य भव में दर्शनसप्तक का क्षय करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव हो, वहाँ की तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु का अनुभव कर मनुष्य भव को प्राप्त करे और जब तक उस मनुष्य भव में क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ न हो तब तक उसे इक्कीस प्रकृति का सत्तास्थान होता है। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट अवस्थान काल साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण होता है तथा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और वह दर्शनसप्तक का क्षय करने के बाद तत्काल चारित्रमोहनीय की क्षपणा प्रारम्भ करने वाले की अपेक्षा जानना चाहिये। तथा—

पूर्वोक्त के अतिरिक्त शेष रहे सत्तास्थानों का जघन्य और उत्कृष्ट अवस्थान काल अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये। जैसे कि मिथ्यात्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय का क्षय करने के बाद तेईस प्रकृतिक और मिश्रमोहनीय का क्षय करने के बाद बाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। उन दोनों का अवस्थान काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं होता है। इसका कारण यह है कि मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय करने के बाद अवश्य ही अन्तर्मुहूर्त के बाद मिश्रमोहनीय का और उसके बाद सम्यक्त्वमोहनीय का क्षय करता है। जिससे तेईस और बाईस प्रकृति की सत्ता अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल होती ही नहीं है। उनके अतिरिक्त शेष रहे नौवें गुणस्थान के तेरह से लेकर एक प्रकृतिक सत्तास्थानों में से प्रत्येक का भी अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल होता ही नहीं है। क्योंकि नौवें गुणस्थान का काल ही अन्तर्मुहूर्त है। एक प्रकृतिक सत्तास्थान वाले दसवें गुणस्थान का काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। जिससे तेरह से लेकर एक प्रकृतिक तक के सभी सत्तास्थानों का काल अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये। तथा—

छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का अभव्य जीवापेक्षा अनादि-अनन्त और अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीवापेक्षा अनादि-सान्त अवस्थान काल है।

इस प्रकार सत्तास्थानों की काल प्ररूपणा जानना चाहिये और इसके पूर्ण होने से मोहनीय की वक्तव्यता भी पूर्ण हुई समझना चाहिये।

नामकर्म की संवेध प्ररूपणा

अब क्रमप्राप्त नामकर्म के बंधादिस्थानों के विचार करने का अवसर है। लेकिन उससे पूर्व बंधादिस्थानों का सरलता से बोध करने के लिये जिन प्रकृतियों के साथ नामकर्म की बहुत-सी प्रकृतियां बंध अथवा उदय में प्राप्त होती है, उनका निर्देश करने के लिये गाथा सूत्र कहते हैं—

अपज्जत्तगजाई पज्जत्तगईहि पेरिया बहुसो।
बंधं उदयं च उवेंति सेसपगइउ नामस्स ॥४७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयप्पत्ताणुदओ पएसओ अणुवसंतपगईणं ।
अणुभागओ उ निच्चोदयाण सेसाण भइयव्वो ॥४८॥

शब्दार्थ—**अपज्जत्तगजाई**—अपर्याप्त और जाति नाम, **पज्जत्तगईहि**—पर्याप्त और गति नामकर्म द्वारा, **पेरिया**—प्रेरित, **बहुसो**—बहुत सी, **बंधं**—बंध को, **उदयं**—उदय को, **च**—और, **उवेंति**—प्राप्त होती हैं, **सेसपगइउ**—शेष प्रकृतियां, **नामस्स**—नामकर्म की ।

उदयप्पत्ताणुदओ—उदयप्राप्त का उदय होता है, **पएसओ**—प्रदेश से, **अणुवसंतपगईणं**—अनुपशांत प्रकृतियों का, **अणुभागओ**—अणुभाग से, **उ**—और, **निच्चोदयाण**—नित्योदयी प्रकृतियों का, **सेसाण**—शेष प्रकृतियों का, **भइयव्वो**—भजनीय ।

गाथार्थ—अपर्याप्तनाम, जातिनाम, पर्याप्त और गति नामकर्म द्वारा प्रेरित हुई नामकर्म की शेष बहुत सी प्रकृतियां बंध और उदय को प्राप्त होती हैं ।

उदयप्राप्त कर्म का उदय होता है । अनुपशांत प्रकृतियों का ही प्रदेशोदय होता है (उपशांत का नहीं होता है) । नित्योदया प्रकृतियों का ही अनुभागोदय होता है और शेष प्रकृतियों का उदय भजनीय है ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में कारण सहित नामकर्म की बंधोदयसहचारिणी प्रकृतियों का निर्देश किया है । जो इस प्रकार है—

अपर्याप्तनाम, जातिनाम, पर्याप्तनाम और गति नामकर्म द्वारा प्रेरित अर्थात् अपर्याप्तनामकर्म आदि का जब बंध या उदय हो तब नामकर्म की बहुत सी प्रकृतियां बंध या उदय में प्राप्त होती हैं अथवा अनेक बार बंध और उदय में प्राप्त होती हैं—'अपज्जत्तगजाई पज्जत्तगईहि पेरिया बहुसो बंधं उदयं च उवेंति ।' जैसे कि अपर्याप्त नामकर्म बंधता हो अथवा उदय में हो तब मनुष्यगतियोग्य या तिर्यंचगतियोग्य नामकर्म की बहुत सी प्रकृतियां बंध और उदय में प्राप्त होती हैं । एकेन्द्रियादि जातिनाम बंधता हो या उदयप्राप्त हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब बादर अथवा सूक्ष्म नामकर्म का बंध अथवा उदय होता है। इसी तरह पर्याप्त नामकर्म बंध या उदय में हो तब यश:कीर्ति आदि और देवादि गतिनामकर्म बंध या उदय में हो तब वैक्रियद्विक आदि प्रकृतियां बंध और उदय में प्राप्त होती हैं। तथा—

अबाधाकाल बीतने पर उदय समय को प्राप्त हुई कर्म प्रकृतियों का उदय होता है और उस उदय के दो प्रकार हैं—प्रदेश से और अनुभाग से। अर्थात् अबाधाकाल का क्षय होने से उदय समय को प्राप्त हुई कर्म प्रकृतियां प्रदेशोदय द्वारा और अनुभागोदय (रसोदय) द्वारा, इस तरह दो प्रकार से उदय में आती हैं। उनमें से अनुदयवती स्वस्वरूप से फल प्रदान करने में असमर्थ—कर्मप्रकृतियों का अबाधाकाल क्षय होने के बाद उनके दलिक का उदयवतीस्वरूप–में फल देने में समर्थ—प्रकृति में प्रतिसमय स्तिबुकसंक्रम द्वारा संक्रमित करके अनुभव करना उसे प्रदेशोदय कहते हैं और वह अनुपशांत प्रकृतियों का ही होता है—'पएसओअणुवसंत पगईणं।' किन्तु उपशान्त प्रकृतियों का नहीं होता है। तथा—

'अणुभागओ उ निच्चोदयाण' अर्थात् अनुभागोदय का विपाकोदय–स्वस्वरूप में अनुभव करना, यह अर्थ है और वह सदैव ध्रुवोदया प्रकृतियों का ही होता है। शेष अध्रुवोदया प्रकृतियों का विपाकोदय भजनीय है अर्थात् विपाकोदय कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता है—'सेसाण भइयव्वो' और प्रदेशोदय जिसका अपरनाम उदीरणा है, वह विपाकोदय हो तभी प्रवर्तित होता है अन्यथा प्रवर्तित नहीं होता है। इसलिये इसके लिये पृथक् से विचार नहीं किया है।

अब देवगति के बंध अथवा उदय के साथ संभव बंध अथवा उदय प्रकृतियों का निर्देश करते हैं।

देवगति-बंध-उदय-सहचारी प्रकृतियां

अथिरासुभचउरंसं परघायदुगं तसाइ धुवबंधी।
अजसपणिंदि विउव्वाहारग सुभखगइ सुरगइया ॥४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**अथिरासुभचउरंसं**—अस्थिर, अशुभ, समचतुरस्र, **परघायदुगं**—पराघातद्विक, **तसाइ**—त्रसदशक, **धुवबंधी**—ध्रुवबंधिनी, **अजसपणिंदि**—अयशःकीर्ति, पंचेन्द्रियजाति, **विउव्वाहारग**—वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, **सुभखगइ**—शुभ विहायोगति, **सुरगइया**—देवगतिक—देवगति सहचारी।

गाथार्थ—अस्थिर, अशुभ, समचतुरस्रसंस्थान, पराघातद्विक, त्रसदशक, ध्रुवबंधिनी प्रकृतियां, अयशःकीर्ति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, शुभ विहायोगति ये प्रकृतियां देवगति सहचारी हैं।

विशेषार्थ—गाथा में देवगति बंध-उदय सहचारी प्रकृतियों के नाम बताये हैं। उनको देवगति-बंध-उदयसहचारी होने के कारण का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

अस्थिर, अशुभ, समचतुरस्रसंस्थान, पराघातद्विक—पराघात और उच्छ्वास, त्रसदशक तथा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण और उपघात रूप ध्रुवबांधिनी नामनवक, अयशः-कीर्ति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, शुभ विहायोगति तथा गाथा में अनुक्त किन्तु देवगतिसहचारी होने से देवानुपूर्वी नाम ये बत्तीस प्रकृतियां देवगति के बंध के साथ बंध में और देवगति के उदय के साथ उदय में आती हैं। जब तीर्थंकरनामकर्म का बंध होता है तब तीर्थंकरनामकर्म के बंध के साथ देवगति योग्य ये तेतीस प्रकृतियां बंध में समझना चाहिये। क्योंकि तीर्थंकरनामकर्म के बंध-काल में मनुष्य अवश्य ही देवगतिप्रायोग्य और देव तथा नारक अवश्य मनुष्यगतियोग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं।

अब देवगति में तीर्थंकरनामकर्म को बांधने पर उसके साथ बंधने वाली प्रकृतियों को बतलाते हैं।

तीर्थंकरनाम की बंधसहभावी प्रकृतियां

बंधइ तित्थनिमित्ता मणुउरलदुरिसभदेवजोगाओ।
नो सुहुमतिगेग जसं नो अजसऽथिराऽसुभाहारे ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**बंधइ**—बंध होता है, **तित्थनिमित्ता**—तीर्थंकरकर्म के निमित्त से, **मणुउरलदुरिसभदेवजोगाओ**—मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक, **वज्रऋषभ**-नाराचसंहनन, देवगतियोग्य प्रकृतियों का, **नो**—नहीं, **सुहुमतिगेण**—सूक्ष्मत्रिक के साथ, **जसं**—यशःकीर्ति, **नो**—नहीं, **अजसऽथिराऽसुभाहारे**—अयशःकीर्ति, अस्थिर, अशुभ का आहारक का बध होने पर।

गाथार्थ—तीर्थंकरकर्म के निमित्त से मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराचसंहनन और देवगतियोग्य प्रकृतियों का बंध होता है, सूक्ष्मत्रिक के साथ यशःकीर्ति का तथा आहारक का बंध होने पर अयशःकीर्ति, अस्थिर और अशुभ का बंध नहीं होता है।

विशेषार्थ—गाथा में बताया है कि देवगति में तीर्थंकरनाम का बंध करने पर तत्सहचारी कितनी प्रकृतियों का बंध होता है तथा बंध की अपेक्षा कौन सी प्रकृतियां सहचारी हैं। तीर्थंकरनाम के साथ बंधने वाली प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

देवगति में वर्तमान जब तीर्थंकरनाम का बंध करता है तब उस तीर्थंकरनाम के साथ—'मणुउरलदुरिसभदेवजोगाओ' मनुष्यद्विक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग रूप औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराचसंहनन इन पांच प्रकृतियों तथा देवद्विक, वैक्रियद्विक और आहारकद्विक के सिवाय पूर्व गाथा में कही गई अस्थिर, अशुभ आदि सत्ताईस प्रकृति कुल बत्तीस प्रकृतियों का बंध होता है।[1] तथा—

सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त नामकर्म के साथ यशःकीर्ति का

---

१ इसी प्रकार नरकगति में तीर्थंकरनामकर्म को बांधे तब भी उक्त बत्तीस प्रकृतियों का बंध होता है। क्योंकि देव और नारकों के तीर्थंकर नाम का बंध चौथे गुणस्थान में ही होता है और वहाँ उपर्युक्त प्रकृतियों का बंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध नहीं होता है—'नो सुहुमतिगेण जसं' और जब आहारकद्विक का बंध होता हो अथवा उदय हो तब अयशःकीर्ति, अस्थिर और अशुभ रूप तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है—'नो अजसऽथिराऽसुभाहारे' एवं उनका उदय भी नहीं होता है।

अब बंधाश्रयी नरकगति सहचारिणी प्रकृतियों का उल्लेख करते हैं।

नरकगति बंध सहचारिणी प्रकृतियां

अपज्जत्तगबन्धं दूसरपरघायसास पज्जत्तं।
तसअपसत्थाखगइं वेउव्वं नरयगइहेऊ ॥५१॥

शब्दार्थ—**अपज्जत्तगबन्धं**—अपर्याप्त बंध, **दूसर**—दुःस्वर, **परघाय**—पराघात, **सास**—उच्छ्वास, **पज्जत्तं**—पर्याप्तनाम, **तस**—त्रस, **अपसत्थाखगइं**—अप्रशस्त विहायोगति, **वेउव्वं**—वैक्रियद्विक, **नरयगइहेऊ**—नरकगति की हेतुभूत।

गाथार्थ—अपर्याप्त-बंध, दुःस्वर, पराघात, उच्छ्वास, पर्याप्त नाम, त्रस, अप्रशस्त विहायोगति और वैक्रियद्विक ये नरकगति की हेतुभूत प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—गाथा में नरकगति सहचारिणी प्रकृतियां बतलाई हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

अपर्याप्त योग्य बंध करते बंधने वाली प्रकृतियों की अपर्याप्त-बंध यह संज्ञा है। ऐसी प्रकृतियां बाईस हैं जिनका स्वयं ग्रन्थकार ने आगे उल्लेख किया है। ये अपर्याप्त के बंधयोग्य प्रकृतियां नरकगति योग्य बंध करते बंधती हैं तथा दुःस्वर, पराघात, उच्छ्वास, पर्याप्तनाम, त्रसनाम, अप्रशस्तविहायोगति और वैक्रियद्विक इस तरह कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतियां बंध की अपेक्षा नरकगति-सहचारिणी हैं,

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यानि नरकगति योग्य बंध करते बंधती हैं ।[1]

अब अपर्याप्त-बंधयोग्य बाईस प्रकृतियों को बतलाते हैं ।

अपर्याप्त-बंधयोग्य प्रकृतियां

हुण्डोरालं धुवबंधिणी उ अथिराइदूसरविहूणा ।
गइ आणुपुव्वि जाई बायरपत्तेयऽपज्जत्ते ।।५२।।

शब्दार्थ—**हुण्डोरालं**—हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर, **धुवबंधिणी उ**—ध्रुवबंधिनी नामनवक, **अथिराइदूसरविहूणा**—दुःस्वर से रहित अस्थिरषट्क, **गइ**—गति, **आणुपुव्वि**—आनुपूर्वी, **जाई**—जाति, **बायरपत्तेयऽपज्जत्ते**—बादर, प्रत्येक और अपर्याप्त नाम ।

गाथार्थ—हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर, ध्रुवबंधिनी नामनवक, दुःस्वरहीन अस्थिरषट्क, गति आनुपूर्वी, जाति, बादर, प्रत्येक और अपर्याप्त नाम **ये** बाईस प्रकृतियां अपर्याप्तयोग्य बंध करते बंधती हैं ।

विशेषार्थ—गाथा में अपर्याप्त बंधयोग्य बाईस प्रकृतियों के नाम बतलाये हैं—

हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर, नामकर्म की ध्रुवबंधिनी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, तैजस, कार्मण, उपघात और निर्माण रूप नौ प्रकृतियां तथा दुःस्वररहित अस्थिरषट्क यानि अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति रूप पांच प्रकृति, मनुष्यद्विक और तिर्यंचद्विक में से एक द्विक, अन्यतर जाति, बादर, प्रत्येक और अपर्याप्त नाम

१ गाथा में वैक्रिय और पर्याप्त का ग्रहण किये जाने से अपर्याप्त के बंधयोग्य बाईस प्रकृतियों में जो औदारिक और अपर्याप्त नाम का ग्रहण किया है, वह यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये तथा बाईस में तिर्यंचद्विक या मनुष्यद्विक दो में से एक का ग्रहण किया है, उसके बदले यहाँ नरकद्विक का ग्रहण करना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाईस प्रकृतियां अपर्याप्तियोग्य बंध करते बंधती हैं। जिससे ये अपर्याप्तक-बंध संज्ञा वाली हैं।[1]

इस प्रकार से अपर्याप्तबंधयोग्य प्रकृतियों का निर्देश करने के बाद अब त्रस तथा पर्याप्त एकेन्द्रियादियोग्य बंध प्रकृतियों का निरूपण करते हैं।

त्रस तथा पर्याप्त एकेन्द्रियादि योग्य बंध प्रकृतियां

> **बंधइ सुहुमं साहारणं च थावरतसंगछेवट्ठं।**
> **पज्जत्ते उ सथिरसुभजससासुज्जोवपरघायं ॥५३॥**
> **आयावं एगिंदियअपसत्थविहदूसरं व विगलेसु।**
> **पंचिंदिएसु सुसराइखगइ संघयणसंठाणा ॥५४॥**

शब्दार्थ—**बंधइ**—बंधती हैं, **सुहुमं**—सूक्ष्म, **साहारणं**—साधारण, **च**—और, **थावर**—स्थावर नाम, **तसंगछेवट्ठं**—त्रस, अंगोपांग और सेवार्त संहनन, **पज्जत्ते**—पर्याप्त योग्य, **उ** और, **सथिरसुभजस**—स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति सहित, **सासुज्जोवपरघायं**—उच्छ्वास, उद्योत, पराघात।

आयावं—आतप, **एगिंदिय**—एकेन्द्रिय, **अपसत्थविहदूसरं**—अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, **व**—और, **विगलेसु**—विकलेन्द्रिय में, **पंचिदिएसु**—पंचेन्द्रिय के बंध में, **सुसराइ**—सुस्वरादि, **खगइ**—विहायोगति, **संघयण संठाणा**—संहनन और संस्थान।

गाथार्थ—एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर सूक्ष्म, साधारण और स्थावर, त्रसयोग्यबंध में त्रसनाम, (औदारिक) अंगोपांग, सेवार्त संहनन तथा पर्याप्त-योग्य बंध करने पर स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, उच्छ्वास, उद्योत, पराघात सहित बंध होता है, पर्याप्त एकेन्द्रिय-योग्य बांधने पर आतप बंधता है, विकलेन्द्रिययोग्य बंध करने पर अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वर बंधता है। पंचेन्द्रिययोग्य

१ पर्याप्त नाम के साथ ये प्रकृतियां बंध और उदय में असम्भव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बांधने पर सुस्वरादि, खगति (विहायोगति) संहनन और संस्थान नामकर्म का भी बंध होता है ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सहचारिणी बंधयोग्य प्रकृतियों का कथन किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

अपर्याप्तबंध संज्ञावाली प्रकृतियों का ऊपर निर्देश किया है । अब यदि उन प्रकृतियों को बांधते हुए जब एकेन्द्रिय योग्य बंध करे तब स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम रूप तीन प्रकृतियां भी बंधयोग्य होती हैं—"बंधइ सुहुमं साहारणं च थावर।" तथा—त्रसयोग्य बंध हो तब त्रसनाम, औदारिक-अंगोपांग, और सेवार्त संहनन ये तीन प्रकृतियां बंधयोग्य समझना चाहिये—"तसंगछेवट्ठं।" इस प्रकार पच्चीस-पच्चीस प्रकृतियां बंधती हैं। तथा—

पर्याप्त नाम का बंध करे तब पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में से अपर्याप्तनाम कम करके स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, उच्छ्वास, उद्योत और पराघात मिलाने पर जितनी होती हैं, उतने का बंध होता है—'पज्जत्तो उ सथिरसुभजससासुज्जोवपरघायं।' तात्पर्य यह हुआ कि जब पर्याप्त नाम के बंध का विचार करें तब पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में से अपर्याप्त को कम करके पर्याप्त नाम को मिलाना चाहिये और उसके बाद स्थिर आदि छह प्रकृतियों को मिलाने से इकत्तीस होती हैं। इन इकत्तीस प्रकृतियों का पर्याप्त स्थावर एकेन्द्रिययोग्य बंध हो तब या पर्याप्त त्रसयोग्य बंध हो तब यथासंभव समझना चाहिये, तथा—

जब खरबादर पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध हो तब बत्तीसवां आतपनाम भी बंधयोग्य समझना चाहिये—'आयावं एगिंदिय'। तथा—

जब पर्याप्त विकलेन्द्रिययोग्य बंध हो तब अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वर नाम का बंध होता है—'अपसत्थविहदूसरं व विगलेसु।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये पर्याप्त विकलेन्द्रिययोग्य तेतीस प्रकृतियां बंधयोग्य होती हैं। तथा—

जब पर्याप्त तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य योग्य प्रकृतियों का बंध हो तब सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रशस्तविहायोगति और अंतिम संस्थान तथा संहनन का ग्रहण पूर्व में कर लिये जाने से उसके सिवाय पांच संहनन और पांच संस्थान इस तरह चौदह अन्य प्रकृतियों का बंध संभव है। जिससे सैंतालीस प्रकृतियां बंधयोग्य समझना चाहिये।[1]

इस प्रकार पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थावर और त्रसयोग्य बंध करते जितनी प्रकृतियां हो सकती हैं, उतनी जानना चाहिये अब नामकर्म के बंधस्थानों का निरूपण करते हैं।

नामकर्म के बंधस्थान

तेवीसा पणुवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा।
तीसेगतीस एगो बंधट्ठाणाइ नामेऽट्ठ ॥५५॥

शब्दार्थ—**तेवीसा**—तेईस, **पणुवीसा**—पच्चीस, **छव्वीसा**—छब्बीस, **अट्ठवीस**—अट्ठाईस, **गुणतीसा**—उनतीस, **तीसेगतीस**—तीस, इकत्तीस, **एगो**—एक प्रकृतिक, **बंधट्ठाणाइ**—बंधस्थान, **नामेऽट्ठ**—नामकर्म के आठ।

गाथार्थ—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक, इस प्रकार नामकर्म के आठ बंधस्थान हैं।

विशेषार्थ—गाथा में नामकर्म के बंधस्थानों की संख्या और प्रत्येक बंधस्थान कितनी प्रकृति संख्या वाला है, इसका निर्देश किया है। जो इस प्रकार समझना चाहिये—

---

१ यद्यपि तिर्यंचगतियोग्य अधिक से अधिक तीस प्रकृतियां बंध में हैं। परन्तु यहां परस्पर विरुद्ध प्रकृतियों को भी गिनने से संख्या अधिक ज्ञात होती है। यदि उनको कम कर दिया जाये तो संख्या बराबर होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक साथ जितनी प्रकृतियों का बंध हो, उसको बंधस्थान कहते हैं और गाथा में जिस क्रम से कहे हैं, वे कुल मिलाकर आठ होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक। इनमें से किस गति योग्य बंध करते कितने बंधते हैं और किस गति में कौन-कौन बंधते हैं, इसको विस्तारपूर्वक आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

अब उपर्युक्त बंधस्थानों में से मनुष्य आदि गति में वर्तमान जीव जितने बंधस्थानों का बंध करते हैं इसको स्पष्ट करते हैं।

मनुष्यादि गतियों में बंधयोग्य बंधस्थान

मणुयगईए सव्वे तिरियगईए य छ आइमा बंधा।
नरए गुणतीस तीसा पंचछवीसा य देवेसु ॥५६॥

शब्दार्थ—**मणुयगईए**—मनुष्यगति में, **सव्वे**—सभी, **तिरियगईए**—तिर्यंचगति में, **य**—और, **छ**—छह, **आइमा**—आदि के, **बंधा**—बंधस्थान, **नरए**—नरकगति में, **गुणतीस**—उनतीस, **तीसा**—तीस, **पंचछवीसाय**—पच्चीस, छब्बीस तथा पूर्वोक्त, **देवेसु**—देवगति में।

गाथार्थ—मनुष्यगति में समस्त बंधस्थान होते हैं। तिर्यंचगति में आदि के छह, नरकगति में उनतीस और तीस प्रकृतिक तथा देवगति में पच्चीस, छब्बीस तथा पूर्वोक्त उनतीस, तीस प्रकृतिक इस प्रकार बंधस्थान होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में चारों गति में नामकर्म के संभव बंधस्थानों का निर्देश किया है—

'मणुयगईए सव्वे' अर्थात् मनुष्य के सभी गतियों में उत्पन्न हो सकने से मनुष्यगति में वर्तमान जीव यथायोग्य रीति से नामकर्म के सभी तेईस प्रकृतिक से लेकर एक प्रकृतिक तक के आठों बंधस्थान बांधता है। उनमें से एकेन्द्रिययोग्य तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक इस तरह तीन और विकलेन्द्रिययोग्य पच्चीस, उनतीस, तीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान बांधता है। नरक में उत्पन्न होता तद्योग्य अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान का बंध करता है। देवगति में उत्पन्न होने वाला अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस तरह चार बंधस्थानों को बांधता है। क्षपक और उपशम श्रेणि में वर्तमान एक प्रकृतिक बंधस्थान को बांधता है तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य पच्चीस, उनतीस, तीस प्रकृतिक तथा मनुष्यगतियोग्य पच्चीस, उनतीस प्रकृतिक, इस प्रकार प्रकृतियों का बंध करता है। इस प्रकार मनुष्यगति में वर्तमान यथायोग्य सभी बंधस्थानों को बांधता है।

अब तिर्यंचगति में बंधयोग्य बंधस्थानों को बतलाते हैं—'तिरियगईए य छ आइमा बंधा' अर्थात् तिर्यंचगति में वर्तमान आदि के तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इस प्रकार यथासंभव छह बंधस्थानों को बांधता है। क्योंकि तिर्यंच भी चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं। जिससे चारों गतियोग्य उक्त बंधस्थानों का बंध होता है। मात्र तीर्थंकर और आहारकद्विक के साथ देवगति योग्य इकत्तीस प्रकृतिक और श्रेणियोग्य एक प्रकृतिक बंधस्थान इन दो बंधस्थानों का बंध तिर्यंचों के संभव नहीं है। क्योंकि उनमें चारित्र और श्रेणि का अभाव है।

नरकगति में बंधयोग्य स्थान इस प्रकार हैं—'नरए गुणतीस तीसा' अर्थात् नरकगति में उनतीस और तीस प्रकृतिक, इन मनुष्य और तिर्यंचगति योग्य दो बंधस्थानों का बंध होता है। क्योंकि 'नारक अवश्य पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच और मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं। उन दोनों के योग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान है तथा जो नारक मरकर श्रेणिक की तरह तीर्थंकर होंगे वे तीर्थंकर नाम सहित मनुष्यगति योग्य तीस प्रकृतिक रूप बंधस्थान का बंध करते हैं।[1]

देवगति में बंधयोग्य बंधस्थान इस प्रकार हैं—"पंचछब्बीसा य देवेसु" अर्थात् देवगति में वर्तमान जीव बादर पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य

---

१. उद्योत के साथ तिर्यंचगतियोग्य भी तीस प्रकृतियों को बांधते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक तथा 'य—च' कार से पूर्वोक्त मनुष्य-तिर्यंचगति योग्य उनतीस और तीस प्रकृतिक इस प्रकार चार बंधस्थान बांधते हैं। उनमें से बादर पर्याप्त पृथ्वी अप् और प्रत्येक वनस्पति में उत्पन्न होने वाले पच्चीस प्रकृतियों को बांधते हैं तथा आतप के साथ बांधने पर वही पच्चीस प्रकृतिक छब्बीस प्रकृतिक होता है। उस छब्बीस प्रकृति रूप बंधस्थान को खर पर्याप्त बादर पृथ्वीकाययोग्य बंध करते बांधते हैं। उनतीस और तीस प्रकृति रूप दोनों बंधस्थानों का विचार नारकों की तरह समझना चाहिये। क्योंकि देव भी गर्भज पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। उनमें से तिर्यंच में उत्पन्न होते उनतीस प्रकृतिक और उद्योत के साथ तीस प्रकृतिक तथा मनुष्य में उत्पन्न होते उनतीस प्रकृतिक एवं तीर्थंकर नाम के साथ तीस प्रकृतिक बंधस्थान को बांधते हैं।

इस प्रकार अमुक अमुक गति में वर्तमान जीवों के बंधस्थानों के बंध को जानना चाहिये। अब यह स्पष्ट करते हैं कि अमुक किसी गति योग्य बंध करते नामकर्म के कितने और कौन से बंधस्थान बंधते हैं।

प्रत्येक गतियोग्य नामकर्म के बंधस्थान

अडवीस नरयजोग्गा अडवीसाई सुराण चत्तारि।
तिगपणछव्वीसेगिंदियाण तिरिमणुय बंधतिगं ॥५७॥

शब्दार्थ—**अडवीस**—अट्ठाईस प्रकृतिक, **नरयजोग्गा**—नरकप्रायोग्य, **अडवीसाई**—अट्ठाईस प्रकृतिक आदि, **सुराण**—देव-प्रायोग्य, **चत्तारि**—चार, **तिगपणछव्वीस**—तीन, पांच और छह अधिक बीस, **एगिंदियाण**—एकेन्द्रिय योग्य, **तिरिमणुय**—तिर्यंच और मनुष्य योग्य, **बंधतिगं**—तीन बंधस्थान।

गाथार्थ—अट्ठाईस प्रकृतिक नरकगति प्रायोग्य तथा अट्ठाईस प्रकृतिक आदि चार देवगति प्रायोग्य, तीन, पांच और छह अधिक बीस (तेईस, पच्चीस, छब्बीस) प्रकृतिक एकेन्द्रिय योग्य और मनुष्य, तिर्यंच के योग्य (पच्चीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक) तीन बंधस्थान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—यहां चतुर्गति योग्य नामकर्म के बंधस्थानों का निरूपण किया है। इसका प्रारंभ किया है नरकगति से कि अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान नरकगतियोग्य है—'अडवीस नरयजोग्गा।' यानि नरकगतियोग्य बंध करने पर अट्ठाईस प्रकृति रूप नामकर्म का बंधस्थान है। तथा—

देवगतियोग्य बंध करने पर 'अडवीसाई सुराण चत्तारि—'अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस प्रकार चार बंधस्थान बंधते हैं। तथा—

एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान बंधते हैं—'तिगपणछव्वीसेगिंदियाण' और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यगति योग्य बंध करने पर पच्चीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इस तरह तीन-तीन बंधस्थान बंधते हैं।

इन बंधस्थानों में गर्भित प्रकृतियों के नाम आगे कहे जा रहे हैं। यहां तो बंधस्थानों की सूचना मात्र दी है।

अब गुणस्थानों में बंधस्थानों का विचार करते हैं।

गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थान

मिच्छम्मि सासणाइसु तिअट्ठवीसाइ नामबंधाओ।
छत्तिण्णि दोति दोदो चउपण सेसेसु जसबंधो ॥५८॥

शब्दार्थ—मिच्छम्मि सासणाइसु—मिथ्यात्व और सासादन आदि में, **तिअट्ठवीसाइ**—तेईस और अट्ठाईस प्रकृतिक आदि, **नामबंधाओ**—नामकर्म के बंधस्थान, **छत्तिण्णि**—छह, तीन, **दोति**—दो, तीन, **दोदो**—दो, दो, **चउपण**—चार, पांच, **सेसेसु**—शेष गुणस्थानों में, **जसबंधो**—यशःकीर्ति का बंध।

गाथार्थ—मिथ्यात्व और सासादन आदि में अनुक्रम से तेईस आदि और अट्ठाईस आदि छह, तीन, दो, तीन, दो, दो, चार और पांच बंधस्थान होते हैं और शेष गुणस्थानों में यशःकीर्ति का ही बंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों का निर्देश किया है। जिसका यथाक्रम से स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यात्व गुणस्थान में तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृति रूप नामकर्म के छह बन्धस्थान होते हैं। इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टि चारों गति वाले सभी जीव होते हैं और चारों गतियोग्य बंध करते हैं,[1] जिससे उपर्युक्त बंधस्थान संभव हैं। इकत्तीस और एक प्रकृतिक बंधस्थान इस गुणस्थान में में इसलिये संभव नहीं है कि इकत्तीस प्रकृतियों का बंध सातवें और आठवें तथा एक प्रकृति का बंध आठवें गुणस्थान में होता है। ऐसा होने से मिथ्यात्व गुणस्थान में इन दो के सिवाय शेष बंधस्थान माने हैं।

सासादन गुणस्थान में अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं। उनमें से सासादन गुणस्थान में रहते पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच अथवा मनुष्य को देवगतियोग्य प्रकृतियों का बंध होने पर अट्ठाईस प्रकृतिक तथा देव अथवा नारक को तिर्यंच अथवा मनुष्य-गति योग्य बंध होने पर उनतीस प्रकृतिक और उद्योतनाम के साथ तिर्यंचगतियोग्य बंध करने पर तीस प्रकृतिक इस प्रकार तीन बंध-स्थान होते हैं।[2]

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। उनमें से पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच अथवा मनुष्य को देवगतियोग्य बंध करते अट्ठाईस प्रकृतिक और देव अथवा नारक को मनुष्यगति योग्य बंध करने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। तीसरा गुणस्थान पर्याप्त अवस्था में और संज्ञी को ही होता है।

---

१. अपर्याप्त अवस्था में पहले दूसरे गुणस्थान में नरक या देवगति योग्य बंध नहीं होता है।

२ दूसरे गुणस्थान में मनुष्य या तिर्यंच को भी मनुष्य या तिर्यंचगति योग्य बंध हो सकता है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

देव और नारक मनुष्यगतियोग्य और मनुष्य तथा तिर्यंच देवगति योग्य ही बंध करते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं। यह गुणस्थान चारों गति के संज्ञी जीवों के कारण अपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था में होता है।[1] जिससे यथायोग्य उक्त बंधस्थान संभव हैं। उनमें से तिर्यंच अथवा मनुष्य को देवगतियोग्य बंध करने पर अट्ठाईस प्रकृतिक और मात्र मनुष्यों को तीर्थंकर नाम के साथ देवगतियोग्य बंध करने पर उनतीस प्रकृतिक, देव व नारकों के मनुष्यगतियोग्य बंध करने पर उनतीस प्रकृतिक और तीर्थंकर नाम के साथ बांधने पर उनको तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है।

देशविरत और प्रमत्तसंयत इन दो गुणस्थानों में अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये दो-दो बंधस्थान होते हैं। उनमें देवगतियोग्य बंध करने पर देशविरत मनुष्य और तिर्यंचों के अट्ठाईस प्रकृतिक तथा तीर्थंकर नाम के साथ देवगतियोग्य बंध करने पर मनुष्य को उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है।

प्रमत्त गुणस्थान में भी यही दो बंधस्थान होते हैं परन्तु मनुष्यों के ही। क्योंकि प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थान मनुष्यगति में ही होते हैं। साथ ही यह भी समझना चाहिये कि संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों के ही प्रथम पाँच गुणस्थान होते हैं। भोगभूमिजों के तो आदि के चार गुणस्थान होते हैं तथा तीर्थंकर नाम का बंध तिर्यंच करते नहीं हैं। जिससे तीर्थंकर नाम के साथ के किसी भी बंधस्थान का तिर्यंचगति में बंध नहीं होता है। इसीलिये पाँचवें गुणस्थान में तिर्यंच को अट्ठाईस प्रकृतिक रूप एक बंधस्थान बताया है।

---

१ अपर्याप्त अवस्था में नया सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु पूर्वजन्म का लाया हुआ हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् यह कहा जाये कि आहारकद्विक का बंध संयम निमित्तक है और संयम-सर्वविरत चारित्र प्रमत्तसंयत को भी है, तो फिर प्रमत्तसंयत को आहारकद्विक का बंध संभव होने से देवगतिप्रायोग्य आहारद्विक सहित तीस प्रकृतिक बंधस्थान क्यों नहीं बताया है ? तो इसका उत्तर यह है कि अप्रमत्तासंयत से प्रमत्तसंयत का संयम मंद होने से प्रमत्तसंयत का चारित्र आहारकद्विक के बंध में हेतु नहीं है। क्योंकि अत्यन्त विशुद्ध अप्रमत्तभाव का चारित्र ही आहारकद्विक के बंध में हेतु है। प्रमत्तसंयत को वैसे विशिष्ट चारित्र का अभाव होने से उसे आहारकद्विक के साथ देवगतिप्रायोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान का अभाव है।

अप्रमत्तसंयत को अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये चार बंधस्थान होते हैं। उनमें आहारकद्विक और तीर्थंकरनाम बिना देवगतियोग्य बंध करने पर अट्ठाईस प्रकृतिक, तीर्थंकरनाम के साथ बांधने पर उनतीस प्रकृतिक, आहारद्विक के साथ बाँधने पर तीस प्रकृतिक और आहारकद्विक व तीर्थंकरनाम के साथ अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करने पर इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है।

अपूर्वकरण गुणस्थान से अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक ये पाँच बंधस्थान होते हैं। उनमें अट्ठाईस आदि चार बंधस्थान तो अप्रमत्तसंयत गुणस्थान की तरह समझना चाहिये और पाँचवाँ बंधस्थान आठवें गुणस्थान के छठे भाग में नामकर्म की तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने के बाद एक यशःकीर्ति नाम के बंध रूप है।

शेष रहे अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में एक यशःकीर्ति नाम का बंध होता है। यहाँ अतिविशुद्ध परिणाम होने के कारण नामकर्म की अन्य कोई भी प्रकृति नहीं बंधती है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि नौवें, दसवें गुणस्थान में अतिविशुद्ध अध्यवसाय होने के कारण तीर्थंकरनाम, आहारकद्विक आदि जैसी पुण्य प्रकृतियों का बंध क्यों नहीं होता है ? अतिविशुद्ध परिणाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने के कारण अल्पस्थिति वाली और उत्कृष्ट रस वाली उपर्युक्त प्रकृतियां बंधना चाहिये। फिर वे सभी प्रकृतियां आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक ही बंधती हैं, उसके बाद नहीं बंधती हैं, ऐसा क्यों कहा है ? तो इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक पुण्य और पाप प्रकृतियों के बंध के अध्यवसाय की अमुक मर्यादा होती है। जैसे कि अमुक से अमुक मर्यादा तक के संक्लिष्ट परिणाम द्वारा अमुक-अमुक पाप प्रकृति बंधती है। जितनी मर्यादा का जघन्य चाहिये, उसकी अपेक्षा और जघन्य हो और जितनी सीमा का उत्कृष्ट चाहिये, उसकी अपेक्षा प्रवर्धमान हो तो वह पाप प्रकृति नहीं बंधती है। इसी तरह अमुक से अमुक सीमा के विशुद्ध परिणाम द्वारा अमुक-अमुक पुण्य प्रकृतियों का बंध होता है और कम से कम जितनी सीमा के विशुद्ध परिणाम चाहिये उससे कम हों तथा अधिक से अधिक जितनी सीमा के विशुद्ध परिणाम चाहिये उससे अधिक हों तो वह पुण्यप्रकृति भी नहीं बंधती है। यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो तो पाप प्रकृति अथवा पुण्य प्रकृति के बंध की कोई मर्यादा ही नहीं रहे। जैसे कि अमुक प्रकार के क्लिष्ट परिणाम के योग से तिर्यंचगति का बंध होता है, और वह भी वहाँ तक, जहाँ तक उसके योग्य परिणाम हों। लेकिन उससे भी प्रवर्धमान क्लिष्ट परिणाम हो तब नरकगतियोग्य बंध होता है, परन्तु तिर्यंचगति योग्य नहीं होता है। इसी प्रकार कम से कम अमुक सीमा तक विशुद्ध परिणामों से और अधिक से अधिक अमुक सीमा तक के विशुद्ध परिणामों द्वारा ही तीर्थंकरनाम या आहारकद्विक का बंध होता है। कम से कम जितनी सीमा तक के चाहिये, उससे कम हों या अधिक से अधिक जितनी सीमा के चाहिये उससे अधिक हों तब तीर्थंकरादि पुण्य प्रकृतियां भी नहीं बंधती हैं। यदि ऐसा न हो तो आठवें गुणस्थान से नौवें, दसवें गुणस्थान में अधिक विशुद्ध परिणामी आत्मा होती है और उन-उन परिणामों द्वारा यदि बंध होता ही रहे तो उसका विच्छेद कब होगा ? और मोक्ष कैसे होगा ? इसलिये प्रत्येक प्रकृति के बंधयोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यवसायों की मर्यादा होती है जिनको गुणस्थानों में उस-उस प्रकृति के बंधविच्छेद द्वारा बताया है।

इस प्रकार से गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों को जानना चाहिये। अब पूर्व में जो एकेन्द्रियादि योग्य तेईस प्रकृतिक आदि बंधस्थान कहे हैं उन सबका विचार करते हैं। उनमें से पहले एकेन्द्रिय प्रायोग्य बंधस्थानों का विवेचन करते हैं।

एकेन्द्रिय-योग्य बंधस्थान

तग्गयणुपुव्विजाई थावरमाईय दूसरविहूणा।
धुवबंधि हुण्डविग्गह तेवीसाऽपज्जथावरए ॥५९॥
पगईणं वच्चासो होइ गइइंदियाइ आसज्ज।
सपराघाऊसासा पणवीस छवीस सायावा ॥६०॥

शब्दार्थ—तग्गयणुपुव्विजाई—वह गति, आनुपूर्वी और जाति (तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति), **थावरमाईय**—स्थावर आदि, **दूसरविहूणा**—दुःस्वर हीन, **धुवबंधि**—ध्रुवबंधिनी नवक, **हुण्डविग्गह**—हुण्ड संस्थान, औदारिक शरीर, **तेवीसा**—तेईस, **अपज्जथावरए**—अपर्याप्त, **स्थावर**—एकेन्द्रिय योग्य।

पगईणं—प्रकृतियों का, **वच्चासो**—फेरफार-परिवर्तन, **होइ**—होता है, **गइइंदियाइ**—गति, इन्द्रिय आदि के, **आसज्ज**—अपेक्षा, **सपराघाऊसासा**—पराघात और उच्छ्वास के साथ, **पणवीस**—पच्चीस, **छवीस**—छब्बीस, **सायावा**—आतप के साथ।

गाथार्थ—वह गति आदि अर्थात् तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, दुःस्वरहीन स्थावरादि नौ, ध्रुवबंधिनी नामनवक, हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर ये तेईस प्रकृतियां अपर्याप्त स्थावर-एकेन्द्रिय के बंधयोग्य जानना चाहिये।

गति और इन्द्रियों की अपेक्षा प्रकृतियों में फेरफार होता है। पराघात और उच्छ्वास के साथ पच्चीस और आतप या उद्योत को मिलाने से छब्बीस प्रकृतियां होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं से नामकर्म के बंधस्थानों का गति आदि भेदों की अपेक्षा विचार प्रारंभ किया है कि किस गति और इन्द्रिय वाले जीव के कितने बंधस्थान संभव हैं। जिसका कथन प्रारम्भ किया है एकेन्द्रिय जीव से कि एकेन्द्रिय जीव की अपेक्षा तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

'तग्गयणुपुव्विजाई.......' अर्थात् इस संकेत का यह अर्थ समझना चाहिये कि गाथा में जो स्थावर शब्द आया है उसके सान्निध्य से तत् शब्द द्वारा तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति का ग्रहण किया गया है। इसका यह आशय हुआ कि तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, दुःस्वर नामकर्म बिना स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये स्थावरादि नौ, तेजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और उपघात ये ध्रुवबंधिनी नाम-नवक, हुण्डसंस्थान और औदारिक शरीर ये तेईस प्रकृतियां अपर्याप्त स्थावर—अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य जानना चाहिये। यानि अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करते तिर्यंच और मनुष्य उक्त तेईस प्रकृतियां बांधते हैं।

पूर्व में अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य प्रकृतियां मात्र संभावना से ग्रहण की हैं। इन पच्चीस में परस्पर विरोधिनी प्रकृतियां भी ली हैं। क्योंकि उनमें सामान्यतः सूक्ष्म, बादर के विभाग के सिवाय अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करते कितनी प्रकृति बांधती है, यह कहा है। जबकि यहाँ विभागपूर्वक साधारण, सूक्ष्म, अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करते एवं प्रत्येक, बादर, अपर्याप्त, एकेन्द्रिययोग्य बंध करते कितनी बांधती हैं, यह कहा। जिससे पूर्व में कही पच्चीस प्रकृतियों में से परस्पर विरुद्ध प्रकृतियों को अलग कर दिया जाये तब तेईस प्रकृतियां शेष रहती हैं, जिनका यहाँ उल्लेख किया है।

ऐसा होने से तेईस प्रकृतिक बंध के यह चार प्रकार होते हैं—

१. बादर और साधारण के साथ तेईस प्रकृतियों के बांधने पर पहला,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. बादर और प्रत्येक के साथ तेईस प्रकृतियों को बांधने पर दूसरा, ३. सूक्ष्म और साधारण के साथ तेईस प्रकृतियों को बांधने पर तीसरा और ४. सूक्ष्म व प्रत्येक के साथ तेईस प्रकृतियों को बांधने पर चौथा भंग होता है। अर्थात् परस्पर विरोधी प्रकृतियों के होने के कारण एक ही बंधस्थान चार प्रकार से बनता है।

इस प्रकार से अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध प्रकृतियां जानना चाहिये। अब पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य प्रकृतियों का कथन करते हैं कि पूर्वोक्त बंधस्थानों में से कोई प्रकृति निकालकर उसके स्थान पर अन्य का प्रक्षेप करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य बंधस्थानों में भी समझना चाहिये। ऐसा होने से सामान्यतः प्रकृतियों का व्यत्यास—फेरफार करने की यह दृष्टि है—

'गइइंदियाइ आसज्ज वच्चासो होइ' अर्थात् गति, इन्द्रिय और आदि शब्द से वैक्रियादि शरीर की अपेक्षा पूर्व में कहे गए बंधस्थान की प्रकृतियों में व्यत्यास—फेरफार करना चाहिये। तात्पर्य यह हुआ कि तिर्यंचगति और द्वीन्द्रियादि इन्द्रिय की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकृतियों में से कितनी ही प्रकृतियों को तो स्वयमेव दूर करना चाहिये और कितनी ही प्रकृतियों का प्रक्षेप करना चाहिये। जैसे कि देवगति अथवा नरकगति आश्रयी बंधस्थानों का विचार करने के लिये उपर्युक्त बंधस्थान में से स्थावरादि चतुष्क कम करके उसके स्थान पर त्रसादि चतुष्क जोड़ना चाहिये तथा द्वीन्द्रियादि के बंधस्थानों का विचार करना हो तब स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन तीन प्रकृतियों को हटाकर उनके स्थान पर त्रस, बादर और प्रत्येक का प्रक्षेप करना चाहिये। वैक्रिय और आहारक का बंध सम्बन्धी विचार करें तब औदारिक के स्थान पर वैक्रिय और आहारक लेना चाहिये। क्योंकि देवगतिप्रायोग्य तीस या इकत्तीस प्रकृतिक बंध हो तब आहारक और उसके साथ वैक्रिय नाम का बंध होता है। उस समय औदारिक-नाम का बंध नहीं होता है। इस प्रकार जिस-जिस के योग्य बंध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान का विचार करना हो, उस-उस के योग्य जो-जो प्रकृतियां हों उनको मिलाकर अन्य प्रकृतियों को कम करना चाहिये।

इस प्रकार से व्यत्यास करने की पद्धति का संकेत करने के बाद अब पर्याप्त एकेन्द्रियप्रायोग्य बंधस्थानों को बतलाते हैं—

पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंधस्थान का विचार करने पर अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंधस्थान में जो प्रकृतियां कही हैं उनमें से अपर्याप्त-नाम को कम करके पर्याप्तनाम का प्रक्षेप करना चाहिये और शेष प्रकृतियां वही रखना चाहिये। इस प्रकार से संभव तेईस प्रकृतिक स्थान को पराघात और उच्छ्वास सहित करने पर पच्चीस प्रकृतियां होती हैं। ये पच्चीस प्रकृतियां पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करते मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंच और ईशान स्वर्ग तक के देवों को बंध-योग्य जानना चाहिये। ये पच्चीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

पूर्व में चक्ररचना के लिये कही गई गाथा ५२ से ५४ में संभावना की अपेक्षा आतप के साथ बत्तीस प्रकृतियां पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य कही हैं। उनमें आतप और उद्योत तो पच्चीस प्रकृतियों के बंध में संभवित नहीं है, उच्छ्वास और पराघात इन दो प्रकृतियों को ग्रन्थ-कार ने स्वयं ग्रहण किया है और स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशः-कीर्ति-अयशःकीर्ति, प्रत्येक-साधारण तथा सूक्ष्म-बादर ये परस्पर विरुद्ध प्रकृतियां हैं। जिससे इन दस में से यथायोग्य पाँच प्रकृतियां ही एक साथ बंधने वाली होने से उनको परावर्तन के साथ ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार करने पर पच्चीस प्रकृतियां बंधयोग्य होती हैं और वे इस प्रकार हैं—

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, स्थावर, बादर-सूक्ष्म में से एक, पर्याप्त, प्रत्येक-साधारण में से एक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, दुर्भग, अनादेय और निर्माण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पच्चीस प्रकृतियों में परस्पर विरुद्ध प्रकृतियों को परावर्तन क्रम से ग्रहण करने पर बीस भंग इस प्रकार होते हैं—बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ और स्थिर के साथ यशःकीर्ति का बंध करने पर एक भंग और अयशःकीर्ति का बंध करने पर दूसरा भंग होता है। ये दो भंग तो शुभ नाम के बंध के साथ हुए और इसी प्रकार शुभनाम के बदले अशुभ नाम को ग्रहण करने पर उसके साथ भी दो भंग होते हैं। इस प्रकार कुल चार भंग हुए। यह चार स्थिर नामकर्म के साथ हुए। इसी प्रकार स्थिर नाम के बदले अस्थिर नाम का ग्रहण करने पर उसके साथ भी पूर्वोक्त विधि से चालना करने पर चार भंग होते हैं। ये आठ भंग हुए और वे बादर-पर्याप्त के साथ होते हैं। उन आठ भंगों के नाम इस प्रकार हैं—

१. स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, २. स्थिर शुभ अयशःकीर्ति,
३. स्थिर, अशुभ, यशःकीर्ति, ४. स्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति,
५. अस्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, ६. अस्थिर, शुभ, अयशःकीर्ति,
७. अस्थिर, अशुभ, यशःकीर्ति, ८. अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति।

प्रत्येक प्रकार से होने वाले पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में बादर और प्रत्येक को नहीं बदलने से और स्थिरादि प्रकृतियों को बदलने से उसके आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी भंग रचना समझ लेना चाहिये।

अब यदि प्रत्येक नामकर्म के स्थान पर साधारण नामकर्म को ग्रहण करे तब स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ की अयशःकीर्ति के साथ चालना करने से चार भंग होते हैं। क्योंकि साधारणनामकर्म के बंध के साथ यशःकीर्ति नामकर्म नहीं बंधता है। इसलिये उस सम्बन्धी चार भंग नहीं होते हैं, किन्तु अयशःकीर्ति से सम्बन्धित चार भंग होते हैं तथा सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येक नामकर्म का बंध होने पर स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और अयशःकीर्ति के साथ चार भंग एवं सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारण नाम का बंध होने पर भी स्थिर-अस्थिर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभ-अशुभ और अयशःकीर्ति के साथ चार भंग होते हैं। सूक्ष्म और साधारण नाम के बंध के साथ भी यशःकीर्ति नामकर्म का बंध नहीं होता है। इस प्रकार बादर, पर्याप्त, प्रत्येक का बंध करने पर स्थिरास्थिर, शुभाशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के आठ भंग, बादर, पर्याप्त, साधारण का बंध करने पर स्थिरास्थिर, शुभाशुभ और अयशःकीर्ति के साथ भी चार भंग, इसी प्रकार सूक्ष्म, पर्याप्त, प्रत्येक तथा सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारण के साथ भी चार-चार भंग होते हैं। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक बंध के बीस भंग होते हैं। अर्थात् पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान बीस प्रकार से होता है। इनमें से ईशान स्वर्ग तक के देव तो आदि के आठ भंगों से पच्चीस प्रकृतिक बंध करते हैं। क्योंकि वे साधारण या सूक्ष्म एकेन्द्रिययोग्य बंध नहीं करते हैं और संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य, तिर्यंच बीसों भंग द्वारा पच्चीस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

उन्हीं पच्चीस प्रकृतियों को आतप के साथ करने पर छब्बीस प्रकृतिक बंध होता है। मात्र यहाँ आतप के स्थान पर विकल्प से उद्योत नाम का भी प्रक्षेप करना चाहिये। क्योंकि पर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य बंध कहने पर उद्योत का भी बंध होता है। इसके सोलह भंग होते हैं। यानि छब्बीस प्रकृतियों का बंध सोलह प्रकार से होता है और वह आतप के साथ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति की चालना करने से होता है। आतप और उद्योत के बंध के साथ सूक्ष्म और साधारण का बंध नहीं होता है, जिससे तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं। इन सोलह भंगों से छब्बीस प्रकृतियों का बंध मनुष्य, तिर्यंच और ईशान स्वर्ग तक के देव करते हैं। असंख्यात वर्ष की आयुवाले युगलिक देवगति में ही जाने वाले होने से यहाँ संख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्य-तिर्यंच का ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार एकेन्द्रिययोग्य तीन बंधस्थान और उनके कुल चालीस भंग जानना चाहिये। अब द्वीन्द्रिययोग्य बंधस्थानों का प्रतिपादन करते हैं।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियादि योग्य बंधस्थान

तग्गइयाइदुवीसा संघयणतसंग तिरियपणुवीसा।
दूसर परघाउस्सासखगइ गुणतीस तीसमुज्जोवा ॥६१॥

शब्दार्थ—**तग्गइयाइदुवीसा**—वह गति आदि बाईस, **संघयणतसंग**—संहनन, त्रस और अंगोपांग, **तिरियपणुवीसा**—तिर्यंचयोग्य पच्चीस, **दूसर**—दुःस्वर, **परघाउस्सासखगइ**—पराघात, उच्छ्वास, विहायोगति, **गुणतीस**—उनतीस, **तीसमुज्जोवा**—उद्योत के साथ तीस।

गाथार्थ—तद्गति—तिर्यंचगति आदि बाईस, संहनन, त्रस और अंगोपांग के साथ तिर्यंचयोग्य पच्चीस प्रकृतियां होती हैं। दुःस्वर, पराघात, उच्छ्वास और विहायोगति के साथ उनतीस एवं उद्योत के साथ तीस होती हैं।

विशेषार्थ—गाथा में द्वीन्द्रियादि के बंधस्थानों को बतलाया है। जो इस प्रकार हैं—

तिर्यंचगति आदि पूर्व में कही गई बाईस प्रकृतियों को यहाँ भी ग्रहण करना चाहिये। इसके लिये ग्रन्थकार आचार्य ने 'तग्गइयाई दुवीसा' पद दिया है। अतएव 'तग्गयणुपुव्विजाइ थावरमाईय' इत्यादि गाथा द्वारा जो अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियां कही हैं, वे ही स्थावरनाम के सिवाय बाईस यहाँ ग्रहण करना चाहिये तथा जब स्थावरनाम कम किया तो उसके सहचारी सूक्ष्म और साधारण नाम भी दूर करके उसके स्थान पर बादर और प्रत्येक नाम को जोड़ना चाहिये। तत्पश्चात् उनमें सेवार्तसंहनन, त्रस नाम एवं औदारिक अंगोपांग ये तीन प्रकृतियां और जोड़ना चाहिये। तब द्वीन्द्रिय तिर्यंच योग्य पच्चीस प्रकृतियां होती हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुण्ड-संस्थान, सेवार्तसंहनन, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इन पच्चीस प्रकृतियों का बंध अपर्याप्त द्वीन्द्रिययोग्य बंध करते हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्य-तिर्यंचों को समझना चाहिये।

इन पच्चीस प्रकृतियों में प्रतिपक्ष रूप परावर्तमान एक भी प्रकृति बंधने वाली न होने से एक ही भंग होता है।

उक्त पच्चीस प्रकृतियों में से अपर्याप्तनाम को कम करके पर्याप्त नाम मिलाकर दुःस्वर नाम, पराघात, उच्छ्वास और अशुभविहायोगति का प्रक्षेप करने पर उनतीस प्रकृतियों का बंधस्थान होता है। यह उनतीस प्रकृतियों का बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिययोग्य बंध करते मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंचों का होता है।

पर्याप्त द्वीन्द्रिययोग्य बंध करने पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति का भी बंध होता है। इसलिये अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति के स्थान पर विकल्प से उनका भी प्रक्षेप करना चाहिये। जिससे उनतीस प्रकृतियों का बंध इस प्रकार कहना चाहिये—

तिर्यंचद्विक, द्वीन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुण्ड संस्थान, सेवार्त संहनन, वर्णचतुष्क, अशुभ विहायोगति, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, निर्माण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक। यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति की चालना करने से तीन पद के आठ भंग होते हैं।

उक्त उनतीस प्रकृतियों में उद्योत नाम को मिलाने पर तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इसके भी पूर्वोक्त प्रकार से आठ भंग होते हैं। सब मिलाकर तीनों बंधस्थानों के सत्रह भंग होते हैं। उनके बंधक संख्यात वर्ष की आयु वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य-तिर्यंच जानना चाहिये।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय योग्य बंध करते मिथ्यादृष्टि मनुष्य-तिर्यंचों के भी पूर्व में कहे गये भंगों के साथ तीनों बंधस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना चाहिये। लेकिन त्रीन्द्रिय के सम्बन्ध में कहने पर त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रिय के सम्बन्ध में कहने पर चतुरिन्द्रियजाति कहना चाहिये। भंग प्रत्येक के सत्रह, सत्रह जानना चाहिये। इस प्रकार विकलेन्द्रियों के इक्यावन भंग होते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य भी पच्चीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान हैं। उनमें से अपर्याप्त द्वीन्द्रिययोग्य बंध करने पर जो पच्चीस प्रकृतियां कही हैं वही पच्चीस प्रकृतियां अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोग्य बंध करने पर भी जानना चाहिये। मात्र द्वीन्द्रियजाति के स्थान पर पंचेन्द्रियजाति कहना चाहिये। परावर्तमान सभी अशुभ प्रकृतियों के ही बंधने से यहाँ भी एक ही भंग होता है।

इन अपर्याप्तयोग्य पच्चीस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य और तिर्यंच हैं।

पराघात, उच्छ्वास, दुःस्वर और अप्रशस्त विहायोगति इन चार प्रकृतियों को पूर्वोक्त पच्चीस में मिलाने पर उनतीस प्रकृतियाँ होती हैं और वे पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य बंध करते मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकों को जानना चाहिये। इतना विशेष है कि देव और नारक गर्भज तिर्यंचयोग्य ही उनतीस प्रकृतियों का बंध करते हैं, परन्तु संमूच्छिम योग्य बंध नहीं करते हैं।

अब यहाँ पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य बंध की शुरुआत करते पूर्व में जो 'पंचेन्दिए सुसराइ' यानि पंचेन्द्रिययोग्य बंध करने पर सुस्वरदि का भी बंध होता है, कहा था, तदनुसार सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रशस्त-विहायोगति, आदि के पाँच संस्थान, आदि के पाँच संहनन इस तरह चौदह अन्य प्रकृतियां भी बंधाश्रयी संभव है और वे दुःस्वरादि की प्रतिपक्ष रूप हैं। जिससे दुःस्वर, दुर्भग और अनादेय के स्थान पर सुस्वर, सुभग और आदेय का, अप्रशस्त विहायोगति के स्थान पर प्रशस्त-विहायोगति का, हुण्ड संस्थान के स्थान पर क्रमशः पाँच संस्थान का और सेवार्त संहनन के स्थान पर क्रमशः पाँच संहनन का विकल्प से प्रक्षेप करना चाहिये। इस प्रकार करने पर उनतीस प्रकृतियां इस तरह कहना चाहिए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंचगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकद्विक, तैजस, कार्मण, शरीर नाम, छह संस्थान में से एक संस्थान, छह संहनन में से एक संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति में से एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, सुभग-दुर्भग में से एक, सुस्वर-दुःस्वर में से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक और निर्माण। संस्थान, संहनन आदि विकल्प से मिलने वाली प्रकृतियों की चालना करने पर चार हजार छह सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं। वे इस प्रकार—

छह संस्थान को छह संहनन का गुणा करने पर छत्तीस (३६), उनको प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति के साथ गुणा करने पर बहत्तर (७२), स्थिर-अस्थिर के साथ बहत्तर को गुणा करने पर एक सौ चवालीस (१४४), इनको शुभ-अशुभ युग्म से गुणा करने पर दो सौ अठासी (२८८), सुभग-दुर्भग से इनको गुणा करने पर पाँच सौ छियत्तर (५७६), सुस्वर-दुःस्वर से इन पाँच सौ छियत्तर को गुणा करने पर ग्यारह सौ बावन (११५२), आदेय-अनादेय से गुणा करने पर (११५२×२=२३०४) तेईस सौ चार और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति से इन तेईस सौ चार को गुणा करने पर (२३०४×२=४६०८), छियालीस सौ आठ भंग होते हैं। यानि भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा कोई किसी रीति से उनतीस प्रकृतियों को बांधता है और कोई किसी रीति से बांधता है। जिससे उनतीस प्रकृतिक बंध ४६०८ प्रकार से होता है।

इन्हीं उनतीस प्रकृतियों में उद्योत को मिलाने पर तीस प्रकृतियाँ होती हैं और वे तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य बांधने पर बंधती हैं। उनके बंधक भी उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान की तरह चारों गति वाले जीव होते हैं। तीस प्रकृतिक बंधस्थान भी पूर्व की तरह छियालीस सौ आठ प्रकार से होता है।

सब मिलाकर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तीन बंधस्थानों के भंग नौ हजार दो सौ सत्रह (९२१७) होते हैं और उनमें एकेन्द्रिय के चालीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४०), और विकलेन्द्रियों के इक्यावन (१७+१७+१७=५१) मिलाने पर सम्पूर्ण तिर्यंचगति के नौ हजार तीन सौ आठ (६३०८) भंग होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यंचगतियोग्य बंधस्थानों का वर्णन जानना चाहिये । अब मनुष्य गति एवं नरक गति योग्य बंधस्थानों का निरूपण करते हैं ।

मनुष्य-नरकगति योग्य बंधस्थान

तिरिबंधा मणुयाणं तित्थगरं तीसमंति इह भेओ ।
संघयणूणिगुतीसा अडवीसा नारए एक्का ।।६२।।

शब्दार्थ—तिरिबंधा—तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य बंधस्थान, **मणुयाणं**—मनुष्यों के भी, **तित्थगरं**—तीर्थंकर, **तीसमंति**—तीस प्रकृतिक स्थान में, **इह**—यहाँ, **भेओ**—अंतर, **संघयणूणिगुतीसा**—संहनन से न्यून उनतीस प्रकृतिक, **अडवीसा**—अट्ठाईस प्रकृतिक, **नारए**—नारक योग्य, **एक्का**—एक ।

गाथार्थ—तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य जो बंधस्थान हैं, वे सभी मनुष्ययोग्य भी हैं । मात्र यहाँ तीस प्रकृतिक बंधस्थान में तीर्थंकर-नाम कहना चाहिये, यह अन्तर है । उनतीस प्रकृतिक संहनन नाम से हीन अट्ठाईस प्रकृतिक होता है और वह एक ही बंधस्थान नारकयोग्य होता है ।

विशेषार्थ—गाथा में मनुष्य और नरकगति योग्य बंधस्थानों को बतलाया है । उनमें से मनुष्यगतियोग्य बंधस्थान इस प्रकार जानना चाहिये—

तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य पच्चीस, उनतीस, तीस प्रकृतिक रूप जो बंधस्थान पूर्व में कहे हैं वे सभी मनुष्यगतियोग्य बंध करने पर भी होते हैं—'तिरिबंधा मणुयाणं' । यद्यपि एकेन्द्रियादि को भी सामान्यतः तिर्यंच कहा है तो भी मनुष्यों के पंचेन्द्रिय होने से गाथोक्त तिरिबंधा पद से पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्बन्धी बंधस्थान जानना चाहिये, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिययोग्य नहीं तथा तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी कहना चाहिये। शेष सभी प्रकृतियां जैसी की तैसी हैं तथा तिर्यंचगतियोग्य बंधस्थानों में जो, तीस प्रकृतिक बंधस्थान उद्योत नाम के साथ कहा है, उसे यहाँ तीर्थंकरनाम के साथ कहना चाहिए। अर्थात् उद्योत के बजाय तीर्थंकरनाम ग्रहण करना चाहिये। अन्य बंधस्थान में पूर्वोक्त के सिवाय अन्य कोई अन्तर नहीं है।

अब इन बंधस्थानों के भंगों का निरूपण करते हैं—

अपर्याप्त मनुष्ययोग्य पच्चीस प्रकृतियों को बांधने पर पूर्व की तरह एक ही भंग होता है। इन पच्चीस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य, तिर्यंच ही होते हैं, देव और नारक नहीं। क्योंकि वे पर्याप्त, गर्भज मनुष्य योग्य बंध करते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्ययोग्य बंध करने पर भी एक पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान ही होता है।

उनतीस प्रकृतियों का बंध करने पर पूर्व की तरह संहनन, संस्थान आदि का परावर्तन करने पर छियालीस सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं। इन उनतीस प्रकृतियों के बंधक चारों गति के जीव होते हैं।

तीर्थंकरनाम को मिलाने पर वे उनतीस प्रकृतियां तीस प्रकृति हो जाती हैं। इस तीस प्रकृतिक बंधस्थान में संस्थान समचतुरस्र, संहनन वज्रऋषभनाराच, प्रशस्त-विहायोगति, सुभग, आदेय और सुस्वर रूप पुण्य प्रकृतियां ही होती हैं किन्तु उनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियां नहीं होती हैं। क्योंकि यह बंधस्थान सम्यग्दृष्टि देव-नारकों के होता है और सम्यक्त्व होने पर अशुभ संहनन आदि उपर्युक्त प्रकृतियां नहीं बंधती हैं। उन तीस प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

मनुष्यगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकद्विक, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच-संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, सुभग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, निर्माण और तीर्थंकरनाम ।

इन तीस प्रकृतियों को अविरतसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारक मनुष्यगतियोग्य प्रकृतियों का बंध करने पर बांधते हैं। यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से आठ भंग होते हैं। सब मिलाकर मनुष्यगतियोग्य तीनों बंधस्थानों के छियालीस सौ सत्रह (४६१७) भंग होते हैं।

इस प्रकार से मनुष्यगतियोग्य बंधस्थानों का निर्देश करने के बाद अब नरकगतियोग्य बंधस्थानों का निरूपण करते हैं।

नरकगतियोग्य बंधस्थान

'अडवीसा नारए एक्का' अर्थात् नरकगतियोग्य एक अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यानि नरकगतियोग्य बंध करने पर पर्याप्त गर्भज तिर्यंच अट्ठाईस प्रकृतियां ही बांधते हैं। जिससे नरकगतियोग्य एक ही बंधस्थान है। द्वीन्द्रिययोग्य जो उनतीस प्रकृतियां कही गई हैं उनमें से संहनन नामकर्म कम करके शेष अट्ठाईस प्रकृतियां यहां ग्रहण करना चाहिये। मात्र तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी के स्थान पर नरकगति और नरकानुपूर्वी तथा द्वीन्द्रियजाति के स्थान पर पंचेन्द्रियजाति और औदारिकद्विक के स्थान पर वैक्रियद्विक कहना चाहिये।

ये अट्ठाईस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—नरकद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियद्विक, तैजस शरीर, कार्मण, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण। ये सभी पाप प्रकृतियां होने से इनका एक ही भंग होता है।

इस प्रकार से नरकगतियोग्य बंधस्थान जानना चाहिये।

अब क्रमप्राप्त देवगतियोग्य बंधस्थानों का निरूपण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगतियोग्य बंधस्थान

तित्थयराहारगदोतिसंजुओ बंधो नारयसुराणं।
अनियट्टीसुहुमाणं जसकित्ती एस इगिबंधो ॥६३॥

शब्दार्थ—**तित्थयराहारगदो**—तीर्थंकरनाम, आहारकद्विक, **तिसंजुओ**—तीन को मिलाने पर, **बंधो**—बंध, **नारयसुराणं**—नारकों के योग्य देवयोग्य, **अनियट्टीसुहुमाणं**—अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म संपराय गुणस्थान मे, **जसकित्ती**—यशःकीर्ति, **एस**—यही, **इगिबंधो**—एक का बंध।

गाथार्थ—नारकों के योग्य अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान को शुभ प्रकृतियों से युक्त करने पर देवयोग्य होता है। तथा उसमें तीर्थंकरनाम, आहारकद्विक इन तीन को मिलाने पर तीन (उनतीस, तीस, इकत्तीस प्रकृतिक) बंधस्थान होते हैं। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में यशःकीर्ति रूप एक ही बंधस्थान होता है।

विशेषार्थ—गाथा में देवगतियोग्य बंधस्थानों एवं गुणस्थानापेक्षा यशःकीर्ति के बंध होने के स्थान का संकेत किया है। उनमें से देवगतियोग्य बंधस्थान इस प्रकार है—

नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतिक जो बंधस्थान पूर्व में कहा जा चुका है, उसी को शुभ प्रकृति युक्त करने पर देवगतियोग्य होता है। क्योंकि देवगतियोग्य बंध करते मनुष्य, तिर्यंच अपने प्रशस्त परिणाम होने के कारण परावर्तमान पुण्य प्रकृतियों का बंध करते हैं। मात्र अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति रूप प्रकृतियां अशुभ होने पर भी देवगतियोग्य बंध करने पर बंधती हैं। क्योंकि उन प्रकृतियों के बंध योग्य परिणाम छठे गुणस्थान तक होते हैं।

अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति ये स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति की प्रतिपक्षभूत हैं। जिससे उनका विकल्प से प्रक्षेप करना चाहिये और उनको इस प्रकार कहना चाहिये—देवगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मण शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पराघात, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, यशः-कीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और वैक्रियद्विक।

इन अट्ठाईस प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक में वर्तमान मनुष्य, तिर्यंच यथायोग्य रीति से बांधते हैं। यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने पर आठ भंग होते हैं। अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक भी देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियां बंध सकती हैं, परन्तु वहाँ परावर्तमान पुण्य प्रकृतियों का बंध होने से आठ भंग नहीं होते हैं, किन्तु एक ही भंग होता है।

इन अट्ठाईस प्रकृतियों में तीर्थंकरनाम को मिलाने पर उनतीस प्रकृतियां होती हैं। इन उनतीस प्रकृतियों को अविरत सम्यग्दृष्टि आदि बांधते हैं। यहाँ भी छठे गुणस्थान तक आठ भंग और आगे एक ही भंग होता है।

आहारकद्विक सहित करने पर देवगतियोग्य तीस प्रकृतियां इस प्रकार होती हैं—देवगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, तैजस, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण। इन तीस प्रकृतियों को अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक में वर्तमान संयत ही बांधते हैं। इन तीस में परावर्तमान समस्त प्रशस्त प्रकृतियों का ही बध होने से, एक ही भंग होता है।

देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों में आहारकद्विक और तीर्थंकर नाम इस प्रकार तीन प्रकृतियों को मिलाने से इकत्तीस प्रकृतियां होती हैं। इन इकत्तीस प्रकृतियों का बंध भी अप्रमत्त और अपूर्वकरण के छठे भाग तक में वर्तमान संयत ही करते हैं। यहां भी परावर्तमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त प्रशस्त प्रकृतियों का ही बंध होने से एक ही भंग होता है और देवगतियोग्य चार बंधस्थानों के सब मिलाकर अठारह भंग होते हैं।

अब एक विशेष निर्देश करते हैं—

आठवें गुणस्थान में नामकर्म की तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने के बाद से लेकर दसवें गुणस्थान के चरम समय तक एक यशः-कीर्तिनाम ही अपने बंधयोग्य परिणाम होने के कारण बंधता है, अन्य किसी भी नामकर्म की प्रकृति का बंध नहीं होता है—'अनियट्टी-सुहुमाणं जसकित्ती एस इगि बंधो।' इसका कारण यह है कि किसी भी गतियोग्य बंध आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक ही होता है। लेकिन यशःकीर्तिनाम ही एक ऐसी प्रकृति है कि उसके सिवाय अन्य प्रकृतियां तो किसी भी गतियोग्य बंध करने पर ही बंधती है और यशःकीर्तिनाम किसी भी गतियोग्य कर्म-बंध करने पर एवं सभी गतियोग्य प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने के बाद भी बंधती है।

इस प्रकार से चारों गतियोग्य नामकर्म के बंधस्थानों और उनके भंगों को बतलाने एवं विशेष आवश्यक निर्देश करने के बाद अब यह बतलाते हैं कि नामकर्म की कौन प्रकृति किस गुणस्थान तक बंधती है और किस गुणस्थान में किन प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है। इसको गुणस्थान के क्रम से प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान की प्रकृतियों को बतलाते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में नामकर्म की बंध एवं विच्छेद योग्य प्रकृतियां

साहारणाइ मिच्छो सुहुमायवथावरं सनरयदुगं।
इगिविगलिंदियजाई हुण्डमपज्जत्तछेवट्ठं ॥६४॥

शब्दार्थ—**साहारणाइ**—साधारण आदि, **मिच्छो**—मिथ्यादृष्टि, **सुहुमायव-थावरं**—सूक्ष्म, आतप, स्थावर, **सनरयदुगं**—नरकद्विक सहित, **इगिविगलिंदिय-जाई**—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जाति, **हुण्डमपज्जत्त**—हुण्डसंस्थान, अपर्याप्त, **छेवट्ठं**—सेवार्तसंहनन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—साधारण, सूक्ष्म, आतप, स्थावर, नरकद्विक, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अपर्याप्त और सेवार्तसंहनन रूप साधारणादि तेरह प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में नामकर्म की मिथ्यात्व गुणस्थान तक बंधने वाली प्रकृतियों का नाम निर्देश किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

बंधयोग्य मानी गई नामकर्म की सड़सठ प्रकृतियों में से तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि बांधते ही नहीं हैं। क्योंकि इनके बंध में अनुक्रम से सम्यक्त्व और चारित्र हेतु हैं। इसलिये ये तो मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं हैं, जिससे इन तीन प्रकृतियों को कम करने पर शेष चौंसठ प्रकृतियां मिथ्यादृष्टि जीव बांधते हैं। इनमें से भी साधारण, सूक्ष्म, आतप, स्थावर, नरकद्विक, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक, हुण्डसंस्थान, अपर्याप्त नाम और सेवार्त संहनन ये तेरह प्रकृतियां तो मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं, अन्य सासादन आदि गुणस्थानवर्ती जीव नहीं। क्योंकि इन तेरह के बंध में मिथ्यात्वमोह का उदय कारण है। मिथ्यात्व का उदय पहले गुणस्थान तक होने से साधारण आदि तेरह प्रकृतियों का बंधविच्छेद मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही होता है। जिससे पूर्वोक्त तीर्थंकरनाम आहारकद्विक के साथ इन तेरह प्रकृतियों को सड़सठ में से कम करने पर शेष इक्यावन प्रकृतियां सासादन गुणस्थान में बंधती हैं।

इस प्रकार से मिथ्यात्व गुणस्थान में बंधयोग्य नामकर्म की प्रकृतियों को बतलाने के बाद अब सासादन गुणस्थान में बंधयोग्य नामकर्म का प्रकृतियों को बतलाते हैं।

सासादन गुणस्थान में बंधयोग्य नामकर्म की प्रकृतियां

सासायणेऽपसत्थाविहगगई दूसरदुभगुज्जोवं।
अणाएज्जं तिरियदुगं मज्झिमसंघयणसंठाणा ॥६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—सासायणे—सासादन गुणस्थान में, **अपसत्थाविहगगई**—अप्रशस्त विहायोगति, **दूसरदुभगुज्जोवं**—दुःस्वर, दुर्भग, उद्योत, **अणाएज्जं**—अनादेय, **तिरियदुगं**—तिर्यंचद्विक, **मज्झिमसंघयणसंठाणा**—मध्यम संहनन संस्थान।

गाथार्थ—अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, दुर्भग, उद्योत, अनादेय, तिर्यंचद्विक, मध्यमसंस्थानचतुष्क और मध्यम संहननचतुष्क ये प्रकृतियां सासादन गुणस्थान तक ही बंधती हैं।

विशेषार्थ—यहाँ दूसरे सासादन गुणस्थान में बंधविच्छेद को प्राप्त होने वाली नामकर्म की प्रकृतियों का निर्देश किया है। कारण सहित उनके नाम इस प्रकार हैं—

अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, दुर्भग, उद्योत, अनादेय, तिर्यंचद्विक, ऋषभनाराच आदि मध्यम चार संहनन और न्यग्रोधपरिमण्डल आदि मध्यम चार संस्थान, इन पन्द्रह प्रकृतियों को सासादनगुणस्थानवर्ती जीव ही बांधते हैं। मिश्रदृष्टि आदि नहीं बांधते हैं। जिसका कारण यह है—

इन प्रकृतियों के बंध में अनन्तानुबंधि कषाय के उदयजन्य परिणाम कारण हैं। मिश्रदृष्टि आदि को अनन्तानुबंधि का उदय नहीं होने से वे उक्त पन्द्रह प्रकृतियां को बांधते ही नहीं हैं। जिससे सासादन गुणस्थान में बंधने वाली इक्यावन प्रकृतियों में से पन्द्रह प्रकृतियों को कम करने पर नामकर्म की छत्तीस प्रकृतियां मिश्रदृष्टि जीव बांधते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती भी इन्हीं प्रकृतियों को बांधते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि इस गुणस्थान में तीर्थंकरनाम के बंधहेतु सम्यक्त्व के होने से तीर्थंकर नामकर्म का भी बंध हो सकता है। जिससे छत्तीस में तीर्थंकरनाम को मिलाने से सैंतीस प्रकृतियां जानना चाहिये।

अब मिश्र आदि गुणस्थानों में कारण सहित नामकर्म की बंधविच्छेदयोग्य प्रकृतियों का निरूपण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्र आदि गुणस्थानों में बंधयोग्य नामकर्म की प्रकृति

मीसो सम्मोरालमणुयदुगयाइ आइसंघयणं ।
बंधइ देसो विरओ अथिरासुभअजसपुव्वाणि ॥६६॥
अपमत्तो सनियट्टि सुरदुगवेउव्वजुयलधुवबंधी ।
परघाउसासखगई तसाइचउरंस पंचेंदि ॥६७॥
विरए आहारुदओ बंधो पुण जा नियट्टि अपमत्ता ।
तित्थस्स अविरयाओ जा सुहुमो ताव कित्तीए ॥६८॥

शब्दार्थ—**मीसो**—मिश्र, **सम्म**—अविरत सम्यग्दृष्टि, **ओरालमणुयदुगयाई**—औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, **आइसंघयणं**—प्रथम संहनन, **बंधइ**—बांधते हैं, **देसो**—देशविरत, **विरओ**—प्रमत्तविरत, **अथिरासुभअजसपुव्वाणि**—अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति ।

अपमत्तो—अप्रमत्त, **सनियट्टि**—अपूर्वकरण सहित, **सुरदुग**—देवद्विक, **वेउव्वजुयल**—वैक्रियद्विक, **धुवबंधी**—ध्रुवबंधिनी, **परघाउसासखगई**—पराघात, उच्छ्वास, विहायोगति, **तसाई**—त्रसादि दशक, **चउरंस**—समचतुरस्रसंस्थान, **पंचेंदि**—पंचेन्द्रिय जाति ।

विरए—विरत गुणस्थान में, **आहारुदओ**—आहारक का उदय, **बंधो**—बंध, **पुण**—पुनः, और, **जा**—तक, **नियट्टि**—अपूर्वकरण, **अपमत्त**—अप्रमत्त, **तित्थस्स**—तीर्थंकर नाम का, **अविरयाओ**—अविरत सम्यग्दृष्टि से, **जा**—तक, **सुहुमो**—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान, **ताव**—तक, **कित्तीए**—यशःकीर्ति का ।

गाथार्थ—मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक और प्रथम संहनन को बांधते हैं । देशविरत और प्रमत्तविरत अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति को बांधते हैं ।

देवद्विक, वैक्रियद्विक, ध्रुवबंधिनी प्रकृति, पराघात, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रसदशक, समचतुरस्रसंस्थान, पंचेन्द्रियजाति को अप्रमत्त व अपूर्वकरण तक बांधते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारक का उदय विरत गुणस्थान में होता है और बंध अप्रमत्त से अपूर्वकरण तक होता है। तीर्थंकरनाम का बंध अविरत सम्यग्दृष्टिगुणस्थान से होता है और सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तक यशःकीर्ति का बंध होता है।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में जहाँ तक नामकर्म की प्रकृतियों का बंध हो सकता है उन मिश्रगुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तक जो-जो प्रकृतियां जिस गुणस्थान तक बंधती हैं और उसके बाद बंधविच्छेद हो जाता है, इसका निर्देश किया है। यथाक्रम से जिसका विवरण इस प्रकार है—

मिश्रदृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि इन तीसरे और चौथे गुणस्थान तक वर्तमान जीव ही औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक और प्रथम वज्रऋषभनाराचसंहनन नामकर्म को बांधते हैं—'मीसो सम्मोरालमणुयदुगयाइ आइसंघयणं।' देशविरत आदि गुणस्थानवर्ती जीव इन प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं क्योंकि देशविरत गुणस्थानवर्ती मनुष्य-तिर्यंच और प्रमत्तविरतादि गुणस्थान वाले मनुष्य प्रतिसमय मात्र देवगति योग्य प्रकृतियों का ही बंध करते हैं।

पहले गुणस्थान में चारों गतियोग्य, दूसरे गुणस्थान में नरकगति के सिवाय तीन गति योग्य, तीसरे और चौथे गुणस्थान में मनुष्य और तिर्यंच देवगतियोग्य तथा देव और नारक मनुष्यगतियोग्य तथा पांचवें गुणस्थान से मात्र देवगतियोग्य प्रकृतियों का ही बंध होता है। मनुष्यद्विक आदि पांच प्रकृतियां मनुष्यगतियोग्य होने से पांचवें गुणस्थान से उनका बंध नहीं होता है।

देशविरत और प्रमत्तसंयत अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति का बंध करते हैं, अप्रमत्तसंयत आदि नहीं बांधते हैं—'बंधइ देसो विरओ अथिरासुभअजसपुव्वाणि'। इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम गुणस्थान से लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक में वर्तमान जीव ही अस्थिर आदि इन तीन प्रकृतियों को बांधते हैं किन्तु अप्रमत्तसंयत आदि नहीं बांधते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। क्योंकि उनके बंध में प्रमत्तदशा के परिणाम कारण हैं और आगे के अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में प्रमाद का अभाव है, जिससे इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है।

चौथे गुणस्थान में बंधती नामकर्म की सैंतीस प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक आदि पाँच प्रकृतियों को कम करने पर नामकर्म की बत्तीस प्रकृतियां देशविरत और प्रमत्तसंयत जीव बांधते हैं और उनमें से अस्थिर, अशुभ तथा अयशःकीर्ति को कम कर तथा आहारकद्विक को मिलाने पर इकत्तीस प्रकृतियां अप्रमत्तसंयत जीव बांधते हैं। क्योंकि आहारकद्विक का बंधहेतु विशिष्ट चारित्र यहां पर है। तथा—

देवद्विक, वैक्रियद्विक, नामकर्म की ध्रुवबंधिनी—तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण नाम तथा पराघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसदशक, समचतुरस्रसंस्थान और पंचेन्द्रिय-जाति, इन अट्ठाईस प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान (के छठे भाग) तक में वर्तमान जीव बांधते हैं और उसके बाद तद्योग्य परिणामों का अभाव होने से अनिवृत्तिबादर-संपराय आदि आगे के गुणस्थानों में इनका बंध नहीं होता है।

देवगतियोग्य एवं तीर्थंकरनाम तथा आहारकद्विक के बंधयोग्य परिणाम भी आठवें गुणस्थान तक ही होते हैं। तत्पश्चात् जितने विशुद्ध परिणाम चाहिये उनकी अपेक्षा भी विशुद्धतर हो जाने से उपर्युक्त (यशःकीर्ति के सिवाय) कोई भी प्रकृति नहीं बंधती है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में देवगतियोग्य जो इकत्तीस प्रकृतियां बंध में कही हैं, वही अपूर्वकरण गुणस्थान में भी बंधती हैं। अपूर्वकरण के छठे भाग में यशःकीर्ति के सिवाय तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है, जिससे अपूर्वकरण गुणस्थान के सातवें भाग से लेकर सूक्ष्म-संपरायगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त मात्र एक यशःकीर्तिनाम का ही बंध होता है। तथा—

'विरए आहारुदओ' अर्थात् प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थान में आहारकद्विक का उदय होता है और बंध अप्रमत्तसंयत से लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग पर्यन्त होता है। अन्य किन्हीं गुणस्थानों में तद्योग्य परिणामों का अभाव होने से बंध और उदय नहीं होता है।

तीर्थंकरनाम का बंध अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थान के छठे भाग तक होता है और उदय सयोगिकेवली एवं अयोगिकेवली गुणस्थानों में ही होता है।

यशःकीर्तिनाम का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त होता है। उसके बाद नामकर्म की कोई भी प्रकृति नहीं बंधती है।

इस प्रकार से नामकर्म के बंध, बंधस्थान आदि से संबंधित प्ररूपणा जानना चाहिये।[1] अब उदय संबंधी विशेष कथनीय का निरूपण करते हैं।

नामकर्म संबंधी उदय विषयक विशेष कथनीय

उज्जोवआयवाणं उदओपुव्विपि होइ पच्छावि।
ऊसाससरेहिंतो सुहुमतिगुज्जोय नायावं ॥६९॥
उज्जोवेनायावं सुहुमतिगेण न वज्झए उभयं।
उज्जोवजसाणुदए जायइ साहारणस्सुदओ ॥७०॥
दुभगाईणं उदए बायरपज्जो विउव्वए पवणो।
देवगईए उदओ दुभगअणाएज्ज उदएवि ॥७१॥
सूसरउदओ विगलाण होइ विरयाण देसविरयाणं।
उज्जोवुदओ जायइ वेउव्वाहारगद्धाए ॥७२॥

शब्दार्थ—**उज्जोवआयवाणं**—उद्योत और आतप का, **उदओ**—उदय, **पुव्विपि**—पहले भी, **होइ**—होता है, **पच्छावि**—पीछे भी, **ऊसाससरेहिंतो**—

---

१ नामकर्म के बंधस्थानों सम्बन्धी वक्तव्यता का प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्छ्वास और स्वर का, **सुहुमतिगुज्जोय**—सूक्ष्मत्रिक और उद्योत का, **नायावं**–आतप का नहीं।

उज्जोवेनायावं—उद्योत के साथ आतप, **सुहुमतिगेण**—सूक्ष्मत्रिक के साथ, **न**—नहीं, **बज्झए**—बंधते हैं, **उभयं**—दोनों, **उज्जोवजसाणुदए**—उद्योत और यशःकीर्ति के उदय में, **जायइ**—होता है, **साहारणस्सुदओ**—साधारण का उदय।

दुभगाईणं—दुर्भग आदि के, **उदए**—उदय में, **बायरपज्जो**—बादर पर्याप्त, **विउव्वए**—विकुर्वणा करता है, **पवणो**—वायु (कायिक), **देवगईए**—देवगति का, **उदओ**—उदय, **दुभगअणाएज्ज**—दुर्भग, अनादेय के, **उदएवि**—उदय में भी।

सूसरउदओ—सुस्वर का उदय, **विगलाण**—विकलत्रिक को, **होइ**—होता है, **विरयाण**—सर्वविरतों, **देसविरयाणं**—देशविरतों के, **उज्जोवुदओ**—उद्योत का उदय, **जायइ**—होता है, **वेउव्वाहारगद्धाए**—वैक्रिय और आहारक को (करने के) समय में।

गाथार्थ—उद्योत और आतप का उदय उच्छ्वास और स्वर का उदय होने के पूर्व भी होता है और पीछे भी होता है तथा सूक्ष्मत्रिक और उद्योत के उदय के साथ आतप का उदय नहीं होता है।

उद्योत के साथ आतप का बंध नहीं होता है और सूक्ष्मत्रिक के साथ दोनों का ही बंध नहीं होता है। उद्योत और यशःकीर्ति का उदय होने पर साधारण का भी उदय होता है।

दुर्भग आदि के उदय में बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा करते हैं। दुर्भग और अनादेय के उदय में भी देवगति का उदय होता है।

सुस्वर का उदय विकलेन्द्रियों के भी होता है। देशविरतों और सर्वविरतों के वैक्रिय और आहारक शरीर को करने के समय में उद्योत का उदय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—इन चार गाथाओं में विधि-निषेधमुखेन नामकर्म की कुछ प्रकृतियों के सहचारी उदय की संभवासंभवता का विचार किया है। यथाक्रम से जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एकेन्द्रिय जीवों के उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पूर्व या पीछे तथा द्वीन्द्रियादि जीवों के उच्छ्वास और भाषापर्याप्ति से पर्याप्त होने के पहले या पीछे यथायोग्य रीति से उद्योत और आतप का उदय होता है, तथा—

सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण रूप सूक्ष्मत्रिक और उद्योत नाम के साथ आतप नामकर्म का उदय नहीं होता है।

उद्योत के बंध के साथ आतप नाम का बंध नहीं होता है। तथा सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण नाम के बंध के साथ आतप या उद्योत दोनों में से किसी एक का भी बंध नहीं होता है।

उक्त बंधविषयक अपवाद का उल्लेख करने के बाद अब उदय विषयक अपवाद का कथन करते हैं कि उद्योत और यशःकीर्ति के उदय के साथ साधारणनाम का उदय हो सकता है,[1] अर्थात् साधारण-नामकर्म के उदय वाले के उद्योत और यशःकीर्ति का उदय संभव है 'उज्जोवजसा...........................साहारणस्सुदओ।'

दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का उदय होने पर भी पर्याप्त बादर वायुकायिक जीव वैक्रिय शरीर को प्रारम्भ करते हैं। अर्थात् वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा करने वाले पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों के दुर्भगत्रिक का उदय होता है। यहाँ पर्याप्त बादर विशेषण को ग्रहण करने से यह आशय समझना चाहिये कि पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म और अपर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों का निषेध किया गया

---

१ यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि सूक्ष्मनाम के साथ उद्योत का उदय नहीं होता है। परन्तु बादरनाम के उदय के साथ होता है। यानि बादर साधारण को उद्योत का उदय संभव है, सूक्ष्म-साधारण को नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। क्योंकि उनमें वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा करने की शक्ति होती ही नहीं है। तथा—

दुर्भग और अनादेय का उदय होने पर भी देवगति का उदय होता है। अर्थात् दुर्भग और अनादेय के उदय के साथ देवगति नामकर्म का उदय विरोधी नहीं है और 'दुभगअणाएज्ज उदएवि' पद में उदय के अनन्तर आगत 'वि—अपि' शब्द बहुल अर्थ वाला होने से यह अर्थ हुआ कि दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति के उदय के साथ आहारकद्विक का उदय नहीं होता है किन्तु अस्थिर और अशुभ के उदय के साथ आहारकनाम का उदय होता है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियां ध्रुवोदयी हैं। तथा—

'सूसरउदओ विगलाण होइ' अर्थात् विकलेन्द्रियों के सुस्वर का उदय होता है, उनके सुस्वर का उदय विरोधी नहीं है तथा देशविरत अथवा सर्वविरत मनुष्यों के यथायोग्य रूप से वैक्रिय एवं आहारक शरीर की जब विकुर्वणा करें तब उद्योत का उदय होता है किन्तु अन्य सामान्य मनुष्य के उद्योत का उदय नहीं होता है।[1]

इस प्रकार से जिसका उदय रहते जिसका उदय संभव है या नहीं है, का विचार करके अब नामकर्म के उदयस्थानों को बतलाते हैं।

नामकर्म के उदयस्थान

> **अडनववीसिगवीसा चउवीसेगहिय जाव इगितीसा।**
> **चउगइएसु बारस उदयट्ठाणाइं नामस्स ॥७३॥**

---

१ मनुष्यगति में वैक्रिय और आहारक शरीरी यति को उद्योत का उदय होता है, अन्य किसी मनुष्य को नहीं होता है। प्रथमकर्मग्रन्थ में 'जइदेवुत्तरविक्किय' पद से यति और देव उत्तर वैक्रिय करें तब उनको उद्योत का उदय होता है, कहा है तथा कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा १३ में तथा उसकी टीका में भी इसी प्रकार कहा है। छठे कर्मग्रन्थ में भी ऐसा ही संकेत किया है परन्तु यहाँ वैक्रिय शरीर में वर्तमान देशविरत मनुष्य को भी उद्योत का उदय होता है, यह कहा है। विज्ञजन समाधान करने की कृपा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**अडनववीसिगवीसा**—आठ, नौ, बीस, इक्कीस, **चउवीसेगहिय**—चौबीस और उसके बाद एक-एक अधिक, **जाव**—तक, **इगितीसा**—इकत्तीस, **चउगइएसु**—चारों गतियों में, **बारस**—बारह, **उदयट्ठाणाइं**—उदयस्थान, **नामस्स**—नामकर्म के।

गाथार्थ—चारों गति के जीवों में आठ, नौ, बीस, इक्कीस, चौबीस और उसके बाद एक-एक अधिक इकत्तीस तक नामकर्म के बारह उदयस्थान होते हैं।

विशेषार्थ—'चउगइएसु बारस' अर्थात् चारों गति के जीवों की अपेक्षा सब मिलाकर नामकर्म के बारह उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

आठ, नौ, बीस, इक्कीस, चौबीस प्रकृतिक और उसके बाद चौबीस में एक-एक बढ़ाते यावत् इकतीस अर्थात् पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक।

इन बारह उदयस्थानों में से चतुर्गति के जीवों के यथायोग्य संभव उदयस्थानों का आगे विचार किया जा रहा है।

चारों गति में नामकर्म के उदयस्थान

मणुएसु अचउवीसा वीसडनववज्जियाउ तिरिएसु।
इगपण सगट्ठनववीस नारए सुरे सतीसा ते॥७४॥

शब्दार्थ—**मणुएसु**—मनुष्यों में, **अचउवीसा**—चौबीस प्रकृतिक के सिवाय, **वीसडनववज्जियाउ**—बीस, आठ, नौ प्रकृतिक के सिवाय, **तिरिएसु**—तिर्यंचों में, **इगपण सगट्ठनववीस**—एक, पांच, सात, आठ, नौ अधिक बीस, **नारए**—नारकों में, **सुरे**—देवों में, **सतीसा**—तीस प्रकृतिक सहित, **ते**—नरकगति में कहे गए वे पांच।

गाथार्थ—मनुष्यों में चौबीस के सिवाय सब, तिर्यंचों में बीस, आठ और नौ प्रकृतिक के सिवाय शेष सब, एक, पांच, सात, आठ और नौ अधिक बीस प्रकृतिक नारकों में तथा तीस सहित नरकोक्त पांचों उदयस्थान देवगति में होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—नामकर्म के बारह उदयस्थानों का उल्लेख पूर्व में किया है। उनमें से चतुर्गति में प्राप्त उदयस्थानों का संकेत यहां किया है—

'मणुएसु अचउवीसा' अर्थात् चौबीस प्रकृतिक को छोड़कर शेष ग्यारह उदयस्थान मनुष्यगति में होते हैं। चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान मनुष्यों में नहीं पाये जाने का कारण यह है कि यह उदयस्थान मात्र एकेन्द्रियों में ही होता है। इसीलिये उसका निषेध किया है। तथा—

बीस, आठ और नौ प्रकृतिक इन तीन उदयस्थानों को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान तिर्यंचगति में होते हैं—'वीसडनववज्जियाउ तिरिएसु।' इन बीस, आठ और नौ प्रकृतिक उदयस्थानों का तिर्यंच-गति में नहीं होने के कारण यह है कि बीस प्रकृतिक उदयस्थान केवलिसमुद्घात अवस्था में और आठ, नौ प्रकृतिक उदयस्थान अयोगिकेवली गुणस्थान में होते हैं। तथा—

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान नरकगति में होते हैं तथा इन पांच में तीस प्रकृतिक उदयस्थान को और मिलाने से कुल मिलाकर छह उदयस्थान देवगति में होते हैं।

इस प्रकार चारों गतियों में सामान्य से नामकर्म के उदयस्थान जानना चाहिये। जिनका विस्तार से विशेष वर्णन आगे किया जा रहा है। लेकिन उसके पूर्व गुणस्थानों में नामकर्म के उदयस्थानों को बतलाते हैं।

गुणस्थानों में नामकर्म के उदयस्थान

इगवीसाई मिच्छे सगट्ठवीसा य सासणे हीणा।
चउवीसूणा सम्मे सपंचवीसाए जोगिम्मि ॥७५॥
पणवीसाए देसे छव्वीसूणा पमत्ति पुण पंच।
गुणतीसाई मीसे तीसिगुतीसा य अपमत्ते ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठो नवो अजोगिस्स वीसओ केवलीसमुग्घाए।
इगिवीसो पुण उदओ भवंतरे सव्वजीवाणं ॥७७॥

शब्दार्थ—**इगवीसाई**—इक्कीस प्रकृतिक आदि, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **सगट्ठवीसा**—सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक, **य**—और, **सासणे**—सासादन में, **हीणा**—छोड़कर, **चउवीसूणा**—चौबीस प्रकृतिक रहित, **सम्मे**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, **सपंचवीसाए**—पच्चीस प्रकृतिक सहित, **जोगिम्मि**—सयोगिकेवली गुणस्थान में।

पणवीसाए—पच्चीस प्रकृतिक आदि, **देसे**—देशविरत गुणस्थान में, **छव्वीसूणा**—छब्बीस प्रकृतिक को छोड़कर, **पमत्ते**—प्रमत्तसंयत में, **पुण**—पुनः और, **पंच**—पांच, **गुणतीसाई**—उनतीस प्रकृतिक आदि, **मीसे**—मिश्र गुणस्थान में, **तीसिगुतीसा**—तीस और इकत्तीस प्रकृतिक, **य**—और, **अपमत्ते**—अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में।

अट्ठो **नवो**—आठ और नौ प्रकृतिक, **अजोगिस्स**—अयोगिकेवली गुणस्थान में, **वीसाओ**—बीस प्रकृतिक, **केवलीसमुग्घाए**—केवलिसमुद्घात में, **इगिवीसो**—इक्कीस प्रकृतिक, **पुण**—और, पुनः, **उदओ**—उदय, **भवंतरे**—भवांतर में जाते, **सव्वजीवाणं**—सभी जीवों के।

गाथार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में इक्कीस आदि नौ उदयस्थान होते हैं। उनमें से सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक को छोड़कर शेष सात सासादन गुणस्थान में तथा चौबीस प्रकृतिक को छोड़कर शेष आठ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, और चौबीस के साथ पच्चीस प्रकृतिक को छोड़कर शेष सात सयोगिकेवली गुणस्थान में होते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक रहित पच्चीस प्रकृतिक आदि छह उदयस्थान देशविरतगुणस्थान में, छब्बीस प्रकृतिक रहित पच्चीस प्रकृतिक आदि पांच प्रमत्तसंयत में, उनतीस प्रकृतिक आदि तीन मिश्रगुणस्थान में तथा तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठ और नौ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान अयोगिकेवली गुणस्थान में होते हैं तथा बीस प्रकृतिक उदयस्थान मात्र केवलि समुद्‌घात अवस्था में ही होता है और इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान भवांतर में जाते सभी जीवों के होता है।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में नामकर्म के बारह उदयस्थानों को गुणस्थानों में घटित किया है कि प्रत्येक गुणस्थान में कितने और कितनी प्रकृतियों वाले उदयस्थान होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

'मिच्छे इगवीसाई' अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में इक्कीस प्रकृतिक आदि नौ उदयस्थान होते हैं, यानि इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्‌ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये नौ उदयस्थान मिथ्यात्वगुणस्थान में होते हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान एकेन्द्रियादि चारों गति के जीवों में होने से, उक्त सभी नौ उदयस्थान संभव हैं। इनके अतिरिक्त बीस, नौ और आठ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान न होने का कारण यह है कि बीस प्रकृतिक उदयस्थान केवलि समुद्‌घात अवस्था में और नौ एवं आठ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में होते हैं। इसी कारण इन तीन उदयस्थानों का मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में निषेध किया है।

सासादनगुणस्थान में 'सगट्‌ठवीसा हीणा' सत्ताईस और अट्‌ठाईस प्रकृतिक के बिना शेष मिथ्यात्वगुणस्थान में बताये गये उदयस्थान होते हैं। इसका आशय यह है कि पहले जो मिथ्यात्वगुणस्थान में इक्कीस से लेकर इकत्तीस प्रकृतिक तक नौ उदयस्थान बतलाये हैं उनमें से सत्ताईस और अट्‌ठाईस प्रकृतिक इन दो उदयस्थानों को कम कर देने पर शेष सात उदयस्थान सासादन गुणस्थान में होते हैं और इन सात उदयस्थानों को मानने में हेतु इस प्रकार है—

इक्कीस प्रकृतिक उदय एक भव से भवान्तर में जाते होता है, चौबीस प्रकृतिक उदय पर्याप्त प्रत्येक बादर एकेन्द्रिय को जन्म-उत्पत्ति के प्रथम समय में होता है, छब्बीस प्रकृतिक उदय द्वीन्द्रियादि को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पत्ति के प्रथम समय में होता है, पच्चीस प्रकृतिक उदय उत्तर वैक्रियशरीर की विकुर्वणा करते समय प्रारम्भ में होता है। उनतीस प्रकृतिक उदय पर्याप्त नारक के होता है। तीस प्रकृतिक उदय पर्याप्त मनुष्य और देवों के होता है,[1] और इकत्तीस प्रकृतिक उदय उद्योत के उदय वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के होता है। इस प्रकार से विचार करने पर यहाँ सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान घटित न होने से शेष सात उदयस्थान सासादन गुणस्थान में बताये हैं और सत्ताईस एवं अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि वे न्यून अपर्याप्तावस्था में होते हैं कि जिस समय सासादनत्व नहीं होता है।[2]

---

१ उद्योत का उदय होने के पहले तिर्यंचों को भी तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

२ सासादनगुणस्थान करण-अपर्याप्तावस्था में शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होता है, उसके बाद नहीं होता है और पर्याप्तावस्था में तो हो ही सकता है। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होने का कारण यह है कि सासादान में आने वाला उपशम सम्यक्त्व से गिरकर आता है और उपशम सम्यक्त्व किसी को भी अपर्याप्त अवस्था में उत्पन्न होता ही नहीं है। पूर्वजन्म में अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर अनन्तानुबंधिकषाय का उदय होने से सम्यक्त्व का वमन कर सासादान भाव को प्राप्त कर मरकर यथायोग्य गर्भज मनुष्य, तिर्यंच, देव, बादर पर्याप्त पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो सकता है। पूर्वजन्म का लाया हुआ वह सासादन सम्यक्त्व शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले चला जाता है। जिससे सासादान गुणस्थान में उपर्युक्त जीवों के शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले जो उदयस्थान होते हैं, वे हो सकते हैं और पर्याप्तावस्था में तो चारों गति के संज्ञी पर्याप्त जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें अनन्तानुबंधि के उदय से सासादनत्व भी प्राप्त हो सकता है। जिससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते हैं। यह चौथा गुणस्थान चारों गति के जीवों में करण-अपर्याप्त और पर्याप्त दोनों अवस्थाओं में होता है। यद्यपि अपर्याप्त-अवस्था में कोई भी नया सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु पूर्वभव से लाया हुआ हो सकता है। मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान में प्राप्त नौ उदयस्थानों में से मात्र चौबीस प्रकृतिक उदय-स्थान यहाँ नहीं होता है। इसका कारण यह है कि वह चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियों में ही होता है और एकेन्द्रियों में चौथा गुणस्थान नहीं होता है।

पूर्वोक्त अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती आठ उदयस्थानों में से पच्चीस प्रकृतिक को छोड़कर शेष सात तथा आठवां 'वीसओ केवली समुग्घाए' पद द्वारा जिसका संकेत किया है वह बीस प्रकृतिक कुल मिलाकर आठ उदयस्थान सयोगिकेवली गुणस्थान में होते हैं। जो इस प्रकार हैं—२०, २१, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक। इनमें से २०, २१, २६, २७ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान समुद्घात अवस्था में, २८, २९ प्रकृतिक योगनिरोध अवस्था में, ३० प्रकृतिक स्वभावस्थ सामान्य केवली को अथवा वचनयोग का निरोध करने के बाद तीर्थंकर केवली को होता है और इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ तीर्थंकर भगवान को होता है। तथा—

"पणवीसाए देसे छव्वीसूणा" अर्थात् छब्बीस प्रकृतिक न्यून पच्चीस प्रकृतिक से लेकर इकत्तीस प्रकृतिक के छह उदयस्थान देश-विरत गुणस्थान में होते हैं। वे इस प्रकार हैं—२५, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक। उनमें से पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस

चारों गति के जीवों में पर्याप्तावस्था में संभव उदयस्थान होते हैं। इस प्रकार अपर्याप्तावस्था के २१, २४, २५, २६ प्रकृतिक ये चार और पर्याप्तावस्था के २९, ३०, ३१ प्रकृतिक इस तरह तीन, सब मिलकर सात उदयस्थान यहाँ संभव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक ये चार उदयस्थान उत्तर वैक्रियशरीर करते मनुष्य, तिर्यंचों के होते हैं और तीस प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ पर्याप्त तिर्यंच-मनुष्यों के तथा उद्योत के वेदक उत्तर वैक्रियशरीरी तिर्यंच के होता है। इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत के वेदक स्वभावस्थ तिर्यंच को होता है। देशविरत गुणस्थान संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज, पर्याप्त तिर्यंच तथा मनुष्यों के होता है, जिससे पर्याप्तावस्था में हो सकता है तथा वैक्रियशरीर करने पर जो उदयस्थान हो सकते हैं वे यहां होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में छब्बीस प्रकृतिक के सिवाय पच्चीस से तीस प्रकृतिक तक के पाँच उदयस्थान होते हैं—"छव्वीसूणा पमत्ति पुण पंच।" इनमें से पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये चार उदयस्थान उत्तर वैक्रियशरीर और आहारकशरीर करते संयत को होते हैं और स्वभावस्थ संयत को तीस प्रकृतियों का उदय होने से तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत के उदय वाले तिर्यंचों ही के होता है, जिससे वह संयत को होता नहीं है और प्रमत्तसंयतगुणस्थान मात्र संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज, पर्याप्त मनुष्य को ही होता है। जिससे पर्याप्तावस्था सम्बन्धी एवं वैक्रिय व आहारक शरीर करने पर जो उदयस्थान हो सकते हैं, वही होते हैं और वे हैं, छब्बीस प्रकृतिक रहित पच्चीस से लेकर तीस प्रकृतिक तक के पाँच। इसीलिये छठे गुणस्थान में पाँच उदयस्थान संभव हैं। तथा—

'गुणतीसाई मीसे' अर्थात् तीसरे सम्यक्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) गुणस्थान में उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक उदय रूप तीन उदयस्थान होते हैं। यह गुणस्थान चारों गति के जीवों के पर्याप्तावस्था में ही होता है। जिससे पर्याप्तावस्था में संभव उदयस्थान ही यहाँ होते हैं। इन उदयस्थानों में से उनतीस प्रकृतिक उदय नारकों के, तीस प्रकृतिक उदय देव, मनुष्य और तिर्यंचों को तथा इकत्तीस प्रकृतिक उदय तिर्यंचों के होता है। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उनतीस एवं तीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं। उनमें से उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान वैक्रिय और आहारक शरीरी को होता है। जिसका आशय यह है कि वैक्रिय और आहारक शरीर करने की शुरुआत तो छठे गुणस्थान में करता है, परन्तु उन दोनों शरीर के योग्य सभी पर्याप्तियां पूर्ण होने के बाद अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में जा सकता है। वैक्रिय या आहारक शरीर की अपर्याप्तावस्था में कोई जीव अप्रमत्तावस्था प्राप्त नहीं कर सकता है, मात्र उद्योत का उदय शेष रह सकता है। यानि कोई उद्योत का उदय होने के पहले जाता है और कोई उद्योत का उदय होने के बाद भी जाता है। जिससे वैक्रिय या आहारक शरीरी को अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उद्योत के उदय बिना का उनतीस प्रकृतिक और उद्योत का उदयवाला तीस प्रकृतिक इस प्रकार दोनों उदस्थान होते हैं। और स्वभावस्थ संयत को तो एक तीस प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है। तथा—

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादरसंपराय, सूक्ष्मसंपराय, उपशांतमोह और क्षीणमोह इन पाँच गुणस्थानों में तीस प्रकृति का उदय रूप एक ही उदयस्थान होता है। यद्यपि गाथा में इसका उल्लेख नहीं किया है किन्तु प्रसंगानुसार स्वयमेव इसका ग्रहण कर लेना चाहिए।

अयोगि केवली भगवान को आठ और नौ प्रकृति के उदय रूप दो उदयस्थान होते हैं। उनमें से सामान्य केवली के आठ प्रकृतियों और तीर्थंकर केवली के नौ प्रकृतियों का उदय होता है—'अट्ठो नवो अजोगिस्स।'

बीस प्रकृतियों का उदय केवलिसमुद्घात में तीसरे, चौथे और पांचवें समय में सामान्य केवली को और उसी अवस्था अर्थात् केवलिसमुद्घात अवस्था और उन्हीं समयों में यानि तीसरे, चौथे और पांचवें समयों में तीर्थंकर केवली को तीर्थंकरनाम के साथ इक्कीस प्रकृतियों का उदय होता है तथा भव से भवान्तर जाते सभी संसारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों के इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है—'इगवीसो पुण उदओ …………सव्वजीवाणं।'

इस प्रकार से गुणस्थानों में नामकर्म के उदयस्थानों की संभवता को जानना चाहिये। अब तिर्यंचगति आदि में उनका विचार करते हैं।

तिर्यंच और मनुष्यों में नामकर्म के उदयस्थान

चउवीसाई चउरो उदया एगिंदिएसु तिरिमणुए।
अडवीसाइ छव्वीसा एक्केक्कूणा विउव्वंति ॥७८॥

शब्दार्थ—**चउवीसाई**—चौबीस प्रकृतिक आदि, **चउरो**—चार, **उदया**—उदयस्थान, **एगिंदिएसु**—एकेन्द्रियों में, **तिरिमणुए**—तिर्यंच और मनुष्यों में, **अडवीसाइ**—अट्ठाईस प्रकृतिक आदि, **छव्वीसा**—छब्बीस प्रकृतिक, **एक्केक्कूणा**—एक-एक प्रकृति द्वारा न्यून, **विउव्वंति**—वैक्रिय शरीर करते।

गाथार्थ—एकेन्द्रियों में चौबीस प्रकृतिक आदि चार उदयस्थान होते हैं। तिर्यंच और मनुष्यों में अट्ठाईस प्रकृतिक आदि चार एवं छब्बीस प्रकृतिक कुल पांच उदयस्थान होते हैं तथा वैक्रिय शरीर करते उनमें एक-एक प्रकृति द्वारा न्यून पांच उदयस्थान होते हैं।

विशेषार्थ—तिर्यंच गति में नाम कर्म के उदयस्थानों का निरूपण एकेन्द्रिय जीवों से प्रारंभ किया है। क्योंकि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव तिर्यंच गति वाले होते हैं। एकेन्द्रियों में चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृति रूप चार उदयस्थान होते हैं तथा पूर्व में यह कहा गया है कि भवान्तर में जाते सभी जीवों के इक्कीस प्रकृतियों का उदय होता है। इसलिये इन चार उदयस्थानों के साथ उस अनुक्त इक्कीस प्रकृति रूप उदयस्थान को मिलाने पर पांच उदयस्थान एकेन्द्रिय जीवों में जानना चाहिये। इसी प्रकार से द्वीन्द्रिय आदि अन्य जीवों के लिये भी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान का ग्रहण समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये छह उदयस्थान होते हैं और इन छह में से इकत्तीस प्रकृतिक के सिवाय पांच उदयस्थान प्राकृत (सामान्य) मनुष्यों को जानना चाहिये। क्योंकि इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत नाम सहित है और प्राकृत मनुष्यों के उद्योत का उदय नहीं होता है।

वैक्रिय और आहारक शरीर की विकुर्वणा करते मनुष्य, तिर्यंचों के पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतियों के उदय रूप पांच उदयस्थान होते हैं। मात्र मनुष्यों में उद्योत का उदय वाला उदयस्थान वैक्रिय या आहारक शरीरी यति को होता है। वैक्रिय शरीर करते वायुकायिक को चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृति रूप तीन उदयस्थान होते हैं और तेज-वायुकायिक जीवों में उद्योत का उदय न होने से उनको सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान नहीं बताया है।

अब एकेन्द्रियों के उक्त उदयस्थानों का विचार करते हैं।

एकेन्द्रियों के उदयस्थान

गइआणुपुव्विजाई थावरदुभगाइतिण्णि धुवउदया।

एगिंदियइगिवीसा सेसाण व पगइ वच्चासो ॥७६॥

शब्दार्थ—गइआणुपुव्विजाई—गति, आनुपूर्वी, (एकेन्द्रिय) जाति, **थावरदुभगाइतिण्णि**—स्थावरत्रिक दुर्भगत्रिक, **धुवउदया**—ध्रुवोदया बारह प्रकृति, **एगिंदिय**—एकेन्द्रिय को, **इगिवीसा**—इक्कीस प्रकृति, **सेसाण**—शेष जीवों के लिये, **व**—और, **पगइ**—प्रकृतियों का, **वच्चासो**—परिवर्तन।

गाथार्थ—गति, आनुपूर्वी, (एकेन्द्रिय) जाति, स्थावरत्रिक, दुर्भगत्रिक और ध्रुवोदया बारह प्रकृति कुल मिलाकर इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय भवान्तर में जाने पर एकेन्द्रियों को होता है। शेष जीवों के लिये प्रकृतियों का व्यत्यास करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रिय के उदयस्थानों का विचार किये जाने से गति—तिर्यंचगति, आनुपूर्वी-तिर्यंचानुपूर्वी, जाति--एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त रूप स्थावरत्रिक, दुर्भग,अनादेय और अयशः-कीर्ति रूप दुर्भगत्रिक, एवं नामकर्म की ध्रुवोदया—तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ रूप—बारह प्रकृति, इस तरह सब मिलाकर इक्कीस प्रकृतियों का उदय भव से भवान्तर में जाते एकेन्द्रिय को होता है।

एक भव से भवान्तर में जाते एकेन्द्रियों को बादर, पर्याप्त और यशःकीर्ति का भी उदय संभव है। जिससे उन प्रकृतियों को भी परावर्तन के क्रम से इक्कीस में मिलाने से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के पांच भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—१. बादर-अपर्याप्त-अयशः-कीर्ति, २. बादर-पर्याप्त-अयशःकीर्ति, ३. सूक्ष्म-अपर्याप्त अयशःकीर्ति, ४. सूक्ष्म-पर्याप्त-अयशःकीर्ति और ५. बादर पर्याप्त-यशःकीर्ति।

यशःकीर्ति का उदय बादर और पर्याप्त नाम के उदय के साथ हो सकता है, किन्तु सूक्ष्म या अपर्याप्त नाम के उदय के साथ नहीं होता है। इसीलिये जहाँ-जहाँ सूक्ष्म या अपर्याप्त नाम का उदय हो वहाँ मात्र अयशःकीर्ति के उदय के ही भंग लेना चाहिये। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के पांच भंग—विकल्प होते हैं।

शेष द्वीन्द्रियादि जीवों के भी एक भव से दूसरे भव में जाने पर इक्कीस प्रकृतियों का उदय होता है। इसलिये उस-उस गति और द्वीन्द्रियादित्व का विचार करके गति, जाति आदि प्रकृतियों का व्यत्यास-विपर्यास-परावर्तन स्वयमेव करके उन-उनके उदयस्थानों का विचार करना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण द्वीन्द्रियादि के उदय-स्थानों का विचार करते समय हो जायेगा तथा—

सा आणुपुव्विहीणा अपज्जएगिंदितिरियमणुयाणं।
पत्तउवघायसरीरहुण्डसहिया उ चउवीसा ॥८०॥

शब्दार्थ—**सा**—पूर्वोक्त वे प्रकृति, **आणुपुव्विहीणा**—आनुपूर्वी के बिना, **अपज्जएगिंदितिरियमणुयाणं**—अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि तिर्यंचों और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों के, **पत्ते**—प्रत्येकनाम, **उवघाय**—उपघात, **सरीर**—(औदारिक) शरीर, **हुण्डसहिया**—हुण्डसंस्थान सहित, **उ**—और, **चउवीसा**—चौबीस।

गाथार्थ—पूर्वोक्त वे (इक्कीस) प्रकृति आनुपूर्वी के बिना बीस होती हैं और उनका उदय अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि तिर्यंचों और मनुष्यों के होता है। उनमें प्रत्येक, उपघात, औदारिक शरीर और हुण्डसंस्थान को मिलाने पर चौबीस प्रकृति होती हैं। (जिनका उदय शरीरस्थ को होता है।)

विशेषार्थ—एक भव से भवान्तर में जाने पर जो इक्कीस प्रकृतियों का उदय बताया है, उनमें से आनुपूर्वी को कम करने पर बीस प्रकृतियों का उदय अपर्याप्त (पर्याप्त) एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि तिर्यंचों और मनुष्यों को अवश्य होता है। बीस में से एक भी प्रकृति कम नहीं होती है और आनुपूर्वी नाम को कम करने का कारण यह है कि उसका उदय भवान्तर में जाने पर विग्रहगति में ही होता है एवं भवान्तर में जाने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान पहले कहा जा चुका है।

अब उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होने पर जितनी प्रकृतियों का उदय होता है, उसको बतलाते हैं—इक्कीस प्रकृतियों में से आनुपूर्वी को कम करके उनमें प्रत्येक, उपघात, औदारिक शरीरनाम और हुण्डसंस्थान इन चार प्रकृतियों को मिलाने से चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। उसका उदय शरीरस्थ को—उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न हुए को—होता है। इन चौबीस में साधारणनाम का भी उदय संभव है। जिससे प्रत्येकनाम के स्थान पर उसे विकल्प से मिलाने पर दस भंग होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

१. बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-यशःकीर्ति, २. बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-अयशःकीर्ति, ३. बादर-पर्याप्त-साधारण-यशःकीर्ति, ४. बादर-पर्याप्त-साधारण-अयशःकीर्ति, ५. बादर-अपर्याप्त-प्रत्येक-अयशःकीर्ति, ६. बादर-अपर्याप्त-साधारण-अयशःकीर्ति, ७. सूक्ष्म-पर्याप्त-प्रत्येक-अयशःकीर्ति,

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

८. सूक्ष्म-अपर्याप्त-प्रत्येक-अयशःकीर्ति, ९. सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण-अयशःकीर्ति और १०. सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-अयशःकीर्ति।

बादर वायुकायिक के लिये वैक्रिय शरीर करने पर औदारिक के स्थान पर वैक्रिय का उदय कहना चाहिये। उसे भी उपर्युक्त चौबीस प्रकृतियों का उदय होता है। मात्र यहाँ बादर-पर्याप्त-प्रत्येक और अयशःकीर्ति के साथ एक ही भंग होता है। तेज तथा वायुकाय के जीवों के यशःकीर्ति और साधारण नाम का उदय होता ही नहीं है। जिससे तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं। इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भंग होते हैं।

तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त उस एकेन्द्रिय को पूर्वोक्त चौबीस प्रकृतियों के उदय में पराघात के उदय को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतियों का उदयरूप स्थान होता है। यह पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त-नामकर्म के उदय वाले को ही होता है, जिससे अपर्याप्त-नामकर्म के विकल्प के भंग नहीं होते हैं। अपर्याप्तनाम के उदय वाले किसी भी जीव को अपने-अपने उदयस्थानों में से आदि के दो उदयस्थान ही होते हैं। यहाँ छह भंग इस प्रकार होते हैं—१. बादर-प्रत्येक-यशःकीर्ति, २. बादर-प्रत्येक-अयशःकीर्ति, ३. बादर-साधारण-यशःकीर्ति, ४. बादर-साधारण-अयशःकीर्ति, ५. सूक्ष्म-प्रत्येक-अयशःकीर्ति और ६. सूक्ष्म-साधारण-अयशःकीर्ति।

बादर वायुकायिक को वैक्रिय शरीर करने पर उसको शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होने के बाद पराघात का उदय मिलाने पर भी पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-अयशःकीर्ति यह एक ही भंग होता है। सब मिलाकर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान के सात विकल्प होते हैं।

तत्पश्चात् प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पच्चीस प्रकृतियों के उदय में कहे गये अनुसार छह भंग होते हैं। अथवा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने से पहले किसी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतप का, किसी को उद्योत का उदय हो सकता है। यहाँ उद्योत के उदय युक्त छब्बीस प्रकृतियों के उदय के चार और आतप के उदय युक्त छब्बीस प्रकृतियों के उदय के दो भंग, कुल मिलाकर छह विकल्प होते हैं। जो इस प्रकार—

१. बादर-प्रत्येक-उद्योत-यशःकीर्ति, २. बादर-प्रत्येक-उद्योत-अयशःकीर्ति ३. बादर-साधारण-उद्योत-यशःकीर्ति, ४. बादर-साधारण-उद्योत-अयशःकीर्ति, ५. बादर-प्रत्येक-आतप-यशःकीर्ति और ६. बादर-प्रत्येक-आतप-अयशःकीर्ति।

उद्योत का उदय बादर प्रत्येक या साधारण को होता है, सूक्ष्म को नहीं होता है और आतप का उदय बादर-प्रत्येक को ही होता है। जिससे अनुक्रम से चार और दो ही विकल्प हो सकते हैं।

बादर वायुकायिक को वैक्रिय शरीर करने पर प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को पच्चीस प्रकृतियों के उदय में उच्छ्वास का उदय मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्ववत् एक ही भंग होता है। तेज और वायुकायिक जीवों के आतप, उद्योत और यशःकीर्ति का उदय नहीं होता है जिससे तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं। सब मिलाकर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान के तेरह विकल्प होते हैं। तथा—

प्राणापानपर्याप्ति से उच्छ्वास के उदय सहित छब्बीस प्रकृति के उदय में आतप या उद्योत का उदय मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ उद्योत या आतप के उदययुक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में जैसे पहले छह भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी छह भंग होते हैं।

इस प्रकार से एकेन्द्रिय के पाँच उदयस्थान जानना चाहिये और उन उदयस्थानों के कुल मिलाकर बयालीस भंग होते हैं। तथा—

परघायसासआयवजुत्ता पणछक्कसत्तवीसा सा।
संघयणअंगजुत्ता चउवीस छवीस मणुतिरिए ॥८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—परघायसासआयवजुत्ता—पराघात, उच्छ्वास और आतप से युक्त करने पर, **पणछक्कसत्तवीसा**—पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस, **सा**—वे प्रकृतियाँ, **संघयणअंगजुत्ता**—संहनन और अंगोपांग युक्त, **चउवीस**—चौबीस, **छवीस**—छब्बीस, **मणुतिरिए**—मनुष्य तिर्यंचों में होती हैं।

गाथार्थ—पूर्वोक्त चौबीस प्रकृतियों को अनुक्रम से पराघात, उच्छ्वास और आतपयुक्त करने पर पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतियाँ होती हैं। पूर्वोक्त चौबीस प्रकृतियों को संहनन और अंगोपांगयुक्त करने पर छब्बीस होती हैं और उनका उदय मनुष्य तथा तिर्यंचों को होता है।

विशेषार्थ—चौबीस के उदय में पराघात का उदय मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है और पच्चीस के उदय में उच्छ्वास का उदय मिलाने पर छब्बीस का और उसमें आतप का उदय मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतियों का उदयस्थान होता है। यहाँ आतप का उदय उपलक्षण हैं। उससे उद्योत का भी ग्रहण कहना चाहिये। जिससे यह अर्थ हुआ कि उद्योत का उदय मिलाने पर भी सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। आतप और उद्योत का उदय एक साथ एक जीव को नहीं होता है। जिसको उद्योत का उदय हो उसको आतप का और जिसको आतप का उदय हो उसको उद्योत का उदय नहीं होता है।

भवांतर में जाने से लेकर स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करे तब तक जिस क्रम से प्रकृतियों का उदय होता है, उसको यहाँ बताया है।

इस प्रकार एकेन्द्रिय के उदयस्थान और उनमें होने वाले विकल्प जानना चाहिये।

विकलत्रिकों के उदयस्थान

अब क्रम-प्राप्त विकलत्रिकों के उदयस्थानों को बतलाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन तीन जाति के जीवों की विकलत्रिक यह संज्ञा है। उनमें से पहले द्वीन्द्रिय के उदयस्थानों का निरूपण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियों के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक ये छह उदयस्थान होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

पूर्वोक्त एकेन्द्रिययोग्य इक्कीस प्रकृतियों में से कुछ प्रकृतियों में फेरफार करके द्वीन्द्रिय के लिये भी जानना चाहिये। वे इस प्रकार— तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्त-अपर्याप्त में से एक, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और निर्माण नाम। इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय भवान्तर में जाते द्वीन्द्रिय को होता है। यहाँ तीन भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. अपर्याप्त नाम के उदय वाले द्वीन्द्रिय को अयशःकीर्ति के साथ एक भंग और

२-३. पर्याप्त नाम के उदय वाले द्वीन्द्रिय को यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति के साथ एक-एक भंग। इस प्रकार दो भंग होते हैं। जो कुल मिलाकर तीन भंग हो जाते हैं।

तत्पश्चात् शरीरस्थ—उत्पत्तिस्थान में उत्पन्न हुए द्वीन्द्रिय को पूर्वोक्त इक्कीस के उदयस्थान में से आनुपूर्वीनाम को कम करके उसमें प्रत्येक, उपघात, औदारिक-शरीर, औदारिक-अंगोपांग, हुण्डसंस्थान और सेवार्त संहनन इन छह प्रकृतियों को मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान की तरह तीन विकल्प होते हैं।

एकेन्द्रिय को अंगोपांग और संहनन का उदय नहीं होता है, किन्तु द्वीन्द्रिय को होता है, जिससे शरीरस्थ एकेन्द्रिय के चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान में इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। तथा—

परघायखगइजुत्ता अडवीसा गुणतीस सासेणं।
तीसा सरेण सुज्जोव तित्थ तिरिमणुय इगतीसा ॥८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**परघायखगइजुत्ता**—पराघात और विहायोगति सहित, **अड-वीसा**—अट्ठाईस प्रकृतिक, **गुणतीस**—उनतीस प्रकृतिक, **सासेणं**—उच्छ्वास सहित, **तीसा**—तीस प्रकृतिक, **सरेण**—स्वरयुक्त करने पर, **सुज्जोव**—उद्योत सहित, **तित्थ**—तीर्थंकर, **तिरिमणुय**—तिर्यंचों और मनुष्यों में, **इगतीसा**—इकत्तीस प्रकृतिक ।

गाथार्थ—पराघात और स्वगतियुक्त अट्ठाईस का उदय होता है । उच्छ्वास युक्त उनतीस, स्वरयुक्त तीस, और उद्योतयुक्त इकत्तीस का उदय होता है । तिर्यंचों में उद्योत के उदययुक्त इकत्तीस का और मनुष्यों में तीर्थंकरनाम का उदययुक्त इकत्तीस का उदय होता है ।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और अशुभ विहायोगति को मिलाने द्वीन्द्रियादि सभी तिर्यंचों और मनुष्यों को अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है ।[1] इस अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान में द्वीन्द्रिय के उदयस्थान में यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से दो भंग होते हैं । यहाँ से समस्त उदयस्थान पर्याप्त नाम के उदय वाले को ही होते हैं । जिससे अपर्याप्त नाम के उदय के भंग नहीं होते हैं ।

तत्पश्चात् प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी पूर्ववत् यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन दो पदों के दो भंग होते हैं । अथवा शरीर-पर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने से पहले किसी को उद्योत का उदय होता है, जिससे अट्ठाईस प्रकृतियों में उद्योत का उदय मिलाने पर भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी पूर्ववत् दो भंग होते हैं और कुल मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदय-स्थान के चार भंग होते हैं ।

---

१ यहाँ द्वीन्द्रिय के उदयस्थानों का कथन करने के प्रसंग मेंस ामान्य से तिर्यंच और मनुष्यों के उदयस्थान ग्रंथलाघव की दृष्टि से कहे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् भाषापर्याप्ति से पर्याप्त के उच्छ्वास युक्त उनतीस प्रकृतियों के उदय में सुस्वर या दुःस्वर में से किसी एक के उदय को मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ चार भंग इस प्रकार होते हैं—

१. सुस्वर-यशःकीर्ति, २. सुस्वर-अयशःकीर्ति, ३. दुःस्वर-यशः-कीर्ति और ४. दुःस्वर-अयशःकीर्ति।

अथवा स्वर का उदय होने के पहले उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त के उद्योत का उदय होता है। अतः उससे भी तीस प्रकृतियों का उदय होता है। यहां यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के साथ दो भंग होते हैं।

कुल मिलाकर तीस प्रकृतिक उदयस्थान के छह भंग होते हैं।

तदनन्तर भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर सहित तीस प्रकृतियों के उदय में उद्योत का उदय मिलाने पर इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां सुस्वर-दुःस्वर, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के साथ चार भंग इस प्रकार होते हैं—

१. सुस्वर-यशःकीर्ति, २. सुस्वर-अयशःकीर्ति, ३. दुःस्वरयशः-कीर्ति, ४. दुःस्वर-अयशःकीर्ति।

प्रत्येक तिर्यंच में इकत्तीस प्रकृतियों का उदय उद्योत के साथ और मनुष्यों में इकत्तीस प्रकृतियों का उदय तीर्थंकर नाम के साथ होता है।

द्वीन्द्रिय के समस्त उदयस्थानों के कुल मिलाकर बाईस भंग होते हैं।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के भी छह-छह उदयस्थान और उनके बाईस-बाईस भंग जानना चाहिये। इतना विशेष है कि द्वीन्द्रियजाति के स्थान पर त्रीन्द्रिय के लिये त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रिय के लिये चतुरिन्द्रियजाति शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार विकलेन्द्रियों के कुल छियासठ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सामान्य पंचेन्द्रियों के उदयस्थानों का विचार करते हैं।

सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदयस्थान

सामान्य—प्राकृत तिर्यंच पंचेन्द्रिय के यह प्रकृति संख्या वाले छह उदयस्थान हैं—२१, २६, २८, २९, ३०, और ३१ प्रकृतिक। इनका विवरण इस प्रकार है—

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्त-अपर्याप्त में से एक, सुभग-दुर्भग में से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, तैजस-कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और वर्णचतुष्क। कुल मिलाकर ये इक्कीस प्रकृतियां हैं।

इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय भवान्तर में जाते तिर्यंच पंचेन्द्रिय को होता है। यहाँ नौ भंग होते हैं। उनमें पर्याप्त नाम के उदय वाले को सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के साथ आठ तथा अपर्याप्त नाम के उदय वाले को दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति के साथ एक भंग होता है। क्योंकि अपर्याप्त नाम के उदय वाले को परावर्तमान अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होता है, जिससे विकल्प का अभाव होने से एक ही भंग होता है।

कितने ही आचार्यों का मंतव्य इस प्रकार है—सुभगनाम के उदय वाले को आदेय और दुर्भगनाम के उदय वाले को अनादेय का उदय अवश्य होता है। जिससे सुभग-आदेय और दुर्भग-अनादेय का साथ ही उदय होता है। इसलिये पर्याप्त का सुभग-आदेय युगल और दुर्भग-अनादेय युगल का यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति के साथ व्यत्यास करने से चार भंग होते हैं और अपर्याप्त का एक भंग होता है। इस प्रकार मतान्तर से कुल पाँच भंग होते हैं।

इसी प्रकार से आगे के उदयस्थानों में भी मतान्तर से भंगों की विषमता का विचार स्वयमेव कर लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद शरीरस्थ को आनुपूर्वी के उदय बिना के बीस प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिकद्विक, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहनन में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों को मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर दो सौ नवासी (२८९) भंग होते हैं। उनमें पर्याप्त के छह संहनन, छह संस्थान, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने पर दो सौ अठासी भंग होते हैं और अपर्याप्त को परावर्तमान हुण्डसंस्थान आदि सभी अशुभ प्रकृतियों का उदय होने से एक ही भंग होता है। मतान्तर से एक सौ पैंतालीस (१४५) भंग होते हैं।

इन्हीं छब्बीस प्रकृतियों के उदय में शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होने के बाद पराघात और विहायोगतिद्विक में से एक को मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी जो पर्याप्त के छब्बीस प्रकृतिक उदय के दो सौ अठासी भंग कहे हैं, उनको विहायोगतिद्विक से गुणा करने पर पाँच सौ छियत्तर (५७६) भंग होते हैं। अपर्याप्त को अट्ठाईस प्रकृतियों का उदय नहीं होता है। जिससे इस उदयस्थान से तत्संबन्धी भंग नहीं होते हैं। मतान्तर से दो सौ अठासी भंग होते हैं।

इसके बाद प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त के उच्छ्वास के उदय को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्व की तरह पाँच सौ छियत्तर भंग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने से पहले किसी को उद्योत का उदय होने से भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पाँच सौ छियत्तर (५७६) भंग होते हैं। सब मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह सौ बावन (११५२) भंग और मतान्तर से पाँच सौ छियत्तर भंग होते हैं।

तत्पश्चात् भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को सुस्वर-दुःस्वर में से एक का उदय मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ उच्छ्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास के साथ उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के जो पाँच सौ छियत्तर भंग कहे हैं उनको दोनों स्वरों से गुणा करने पर ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं। अथवा प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर का उदय होने के पहले किसी को उद्योत का उदय होता है। जिससे उसको मिलाने पर भी तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके पाँच सौ छियत्तर भंग होते हैं और कुल मिलाकर तीस प्रकृतिक उदयस्थान के सत्रह सौ अट्ठाईस (१७२८) भंग होते हैं तथा मतान्तर से आठ सौ चौसठ (८६४) भंग होते हैं।

तत्पश्चात् स्वर सहित तीस प्रकृतियों के उदय में उद्योत का उदय मिलाने पर इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। उसमें स्वर सहित तीस प्रकृतिक उदयस्थान में जिस प्रकार से ग्यारह सौ बावन भंग कहे हैं, वही यहाँ भी जानना चाहिये और मतान्तर से पाँच सौ छियत्तर होते हैं।

इस प्रकार से प्राकृत-सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भंग जानना चाहिये। अब वैक्रिय शरीर करते तिर्यंच पंचेन्द्रियों के उदयस्थान कहने का अवसर प्राप्त है परन्तु सामान्यतः समान संख्या होने से वैक्रिय शरीर करते तिर्यंचों और मनुष्यों के तथा आहारक शरीर करते यति के उदयस्थानों का निरूपण करते हैं।

वैक्रिय और आहारक शरीर सम्बन्धी उदयस्थान

तिरिउदय छव्वीसाइ संघयणविवज्जियाउ ते चेव।
उदया नरतिरियाणं विउव्वगाहारगजईणं ॥८३॥

शब्दार्थ—तिरिउदय—तिर्यंचों के उदयस्थान, **छव्वीसाई**—छब्बीस प्रकृतिक आदि, **संघयणविवज्जियाउ**—संहनन के बिना, **ते चेव**—वही, **उदया**—उदयस्थान, **नरतिरियाणं**—मनुष्यों और तिर्यंचों के, **विउव्वगाहारगजईणं**—वैक्रिय और आहारक शरीर करते यति का।

गाथार्थ—तिर्यंचों के जो छब्बीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान कहे हैं, संहनन बिना के वे ही उदयस्थान वैक्रिय शरीर करने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंचों और मनुष्यों को तथा आहारक शरीर करने पर यति को होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में कतिपय विशिष्ट स्थितियोंगत, मनुष्यों, तिर्यंचों के उदयस्थानों का निरूपण किया है—

'तिरिउदय छव्वीसाइ' अर्थात् सामान्य तिर्यंचों के पूर्व में छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृति रूप जो उदयस्थान कहे हैं वे सभी "संघयणविवज्जियाउ" संहनननामकर्म के बिना उत्तर वैक्रिय शरीरी तिर्यंचों और मनुष्यों तथा आहारक शरीरी यति-संयत को होते हैं। इस सामान्य कथन का तिर्यंचों और मनुष्यों के क्रम से विवरण इस प्रकार है—

उत्तर वैक्रिय शरीर करते तिर्यंचों के पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान होते हैं। वैक्रिय और आहारक शरीर की विकुर्वणा पर्याप्तावस्था में ही होती है, जिससे भवान्तर में जाने पर संभव इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान यहाँ नहीं होता है तथा वैक्रिय और आहारक शरीर में हड्डियां नहीं होने से अस्थिबंध रूप संहनन भी नहीं होता है। जिससे सामान्य तिर्यंचों के जो छब्बीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान पूर्व में कहे हैं, उन प्रत्येक में से संहनन नामकर्म को कम करने पर ये पच्चीस प्रकृतिक आदि पाँच उदयस्थान होते हैं। पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान की प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

वैक्रियद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, प्रत्येक, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग-दुर्भग में से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क और निर्माणनाम। यहाँ सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के साथ आठ भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. सुभग-आदेय-यशःकीर्ति, २. सुभग-आदेय-अयशःकीर्ति, ३. सुभग-अनादेय-यशःकीर्ति, ४. सुभग-अनादेय-अयशःकीर्ति, ५. दुर्भग-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आदेय-यशःकीर्ति, ६. दुर्भग-आदेय-अयशःकीर्ति, ७. दुर्भग-अनादेय-यशःकीर्ति, ८. दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति ।

तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को पराघात और प्रशस्त विहायोगति का उदय मिलने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं।

इसके बाद उच्छ्‌वासपर्याप्ति से पर्याप्त को श्वासोच्छ्‌वास का उदय मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्ववत् आठ भंग होते हैं। अथवा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्‌वास का उदय होने से पूर्व किसी को उद्योत का भी उदय होने से अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं और कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग होते हैं।

तदनन्तर भाषापर्याप्ति से पर्याप्त के उच्छ्‌वास सहित अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में सुस्वर का उदय मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।[1] यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं। अथवा प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर का उदय होने के पहले किसी को उद्योत का उदय होता है और उसके उदय में भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं और कुल मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग होते हैं।

इसके बाद सुस्वर सहित उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत के उदय को मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्व की तरह आठ भंग जानना चाहिये।

सब मिलाकर वैक्रिय तिर्यंचों के पाँच उदयस्थानों के छप्पन (५६) भंग होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के उनचास सौ बासठ (४९६२) भंग

---

१ उच्छ्‌वास का उदय होने के पूर्व किसी को भी स्वर का उदय नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानना चाहिये तथा एकेन्द्रियादि समस्त तिर्यंचों के कुल मिलाकर पाँच हजार सत्तर (५०७०) भंग होते हैं।

इस प्रकार से तिर्यंचगति संबन्धी समस्त उदयस्थानों का वर्णन जानना चाहिये। अब मनुष्यों के उदयस्थानों का विचार करते हैं।

यद्यपि तिर्यंच पंचेन्द्रियों के उदयस्थानों के साथ मनुष्यों के भी उदयस्थानों का सामान्य से उल्लेख किया है। परन्तु उनका अलग से भी उल्लेख किया जाना आवश्यक होने से पृथक् निर्देश करते हैं।

सामान्य मनुष्यों में यह पाँच उदयस्थान होते हैं–इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक। इनमें से इक्कीस, छब्बीस और अट्ठाईस प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान जैसे तिर्यंच पंचेन्द्रियों के लिये कहे हैं, वैसे यहां भी समझना चाहिये। मात्र तिर्यंचगति-आनुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति-आनुपूर्वी कहना चाहिये और भंग भी पूर्ववत् (तिर्यंच पंचेन्द्रियों के समान) संख्या प्रमाण कहना चाहिये।

उनतीस और तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी तिर्यंचों की तरह हैं। मात्र उद्योत नाम के उदयरहित कहना चाहिये। क्योंकि मनुष्यों में उद्योत का उदय वैक्रिय और आहारक शरीरी संयत के सिवाय अन्य किसी को नहीं होता है। इसलिये तिर्यंच संबन्धी उनतीस और तीस प्रकृतिक उदयस्थानों के भंगों में से उद्योत के उदय से होने वाले भंगों को कम करने पर मनुष्यों के उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में पाँच सौ छियत्तर और तीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं। सब मिलाकर सामान्य मनुष्य के छब्बीस सौ दो (२६०२) भंग होते हैं।

वैक्रिय मनुष्यों के पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान होते हैं। उनमें मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियशरीर, वैक्रिय अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग-दुर्भग में से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, तैजस-कार्मण, वर्णचतुष्क,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माणनाम इस प्रकार पच्चीस प्रकृतियां होती हैं ।

यहां सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति का विपर्यास करने पर आठ भंग होते हैं। देशविरत श्रावकों और सर्वविरत मुनियों को दुर्भग, अनादेय और अयश:कीर्ति का गुणप्रत्यय से ही उदय नहीं होता है। जिससे वैक्रिय शरीर करने पर उन्हें सुभग, आदेय और यश:कीर्ति का ही उदय होने से सर्वप्रशस्त एक ही भंग होता है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को पराघात और प्रशस्त विहायोगति का उदय होता है, जिससे इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं।

प्राणापानपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उच्छ्वास नाम का उदय होता है। जिससे उसका उदय मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं। अथवा संयत को उत्तर वैक्रिय शरीर करने पर शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने के पहले किसी को उद्योत का उदय होता है। जिससे उसके उदय को मिलाने पर भी अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां एक ही भंग होता है। क्योंकि संयत को अप्रशस्त प्रकृति—दुर्भग, अनादेय और अयश:कीर्ति का उदय नहीं होता है। कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के नौ भंग होते हैं।

तत्पश्चात् भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास सहित अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में सुस्वर के उदय को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं। अथवा संयत को स्वर का उदय होने के पहले उद्योत का उदय होने पर भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्ववत् एक ही भंग होता है और कुल मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के नौ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरसहित उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में संयत को उद्योत का उदय मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस तीस के उदयस्थान में संयत को समस्त प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होने से एक ही भंग होता है और सब मिलाकर वैक्रिय मनुष्य के पांच उदयस्थान के पैंतीस भंग होते हैं।

आहारक संयत के पांच उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक। इनमें से पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान में निम्नलिखित प्रकृतियों का समावेश है—

आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, प्रत्येक, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और निर्माण। यहाँ सभी प्रकृतियां प्रशस्त होने से एक ही भंग होता है। क्योंकि आहारक संयत को दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का उदय नहीं होता है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को पराघात और प्रशस्त विहायोगति का उदय बढ़ाने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी एक ही भंग होता है।

प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त के उच्छ्‌वास का उदय मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी एक ही भंग होता है। अथवा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के उच्छ्‌वास का उदय होने से पहले किसी को उद्योत का उदय होता है। जिससे उसको मिलाने पर भी अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी एक ही भंग होता है और सब मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग होते हैं।

भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्‌वास के उदययुक्त अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान में स्वर के उदय को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान होता है। यहां भंग एक ही होता है। अथवा प्राणापान-पर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर का उदय होने के पहले किसी को उद्योत का उदय होने से भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भंग होता है और सब मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो विकल्प होते हैं।

इसके बाद भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर सहित उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत का उदय मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है और भंग एक ही होता है। तथा सब मिलाकर आहारक शरीरी के पाँच उदयस्थान के सात भंग होते हैं।

इस प्रकार से मनुष्ययोग्य नामकर्म के उदयस्थान जानना चाहिये।[1]

अब देव और नारक योग्य उदयस्थानों का निरूपण करते हैं।

देव और नारक प्रायोग्य उदयस्थान

देवाणं सव्वेवि हु ते एव विगलोदया असंघयणा।
संघयणुज्जोयविवज्जिया उ ते नारएसु पुणो ॥८४॥

शब्दार्थ—**देवाणं**—देवों के, **सव्वेवि**—सभी, **हु**—अवधारणात्मक अव्यय, **ते वि**—वही, **विगलोदया**—विकलेन्द्रियों में उदय होने वाले, **असंघयणा**—संहनन रहित, **संघयणुज्जोयविवज्जिया**—संहनन और उद्योत से रहित, **उ**—और, **ते**—वे, **नारएसु**—नारकों में, **पुणो**—पुनः।

गाथार्थ—संहनन बिना के विकलेन्द्रियों के सभी उदयस्थान देवों के भी होते हैं तथा संहनन और उद्योत उदय बिना के वे ही सब नारकों में होते हैं।

---

१ संमूर्च्छिम मनुष्यों में इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक ये दो ही उदयस्थान होते हैं। उनमें परावर्तमान सभी अशुभ प्रकृति होती हैं। विकल्प नहीं होने से एक-एक भंग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—गाथा में अनुक्रम से देव और नारकों के उदयस्थान बतलाये हैं। इन दोनों के उदयस्थान तो वही हैं जो पूर्व में विकलेन्द्रियों को बतलाये हैं। लेकिन वे संहनन और उद्योत नाम से रहित जानना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

विकलेन्द्रियों में इक्कीस प्रकृतिक आदि जो छह उदयस्थान पूर्व में कहे हैं, वे सभी उदयस्थान संहनन के उदय बिना के देवों में होते हैं। इसका कारण यह है कि देवों के वैक्रिय शरीर होता है और वैक्रिय शरीर में हड्डियां नहीं होने से संहनन का उदय नहीं होता है। मात्र देवगति आश्रयी विकलेन्द्रिय के उदयस्थान कहने पर कितनीक प्रकृतियों का फेरफार स्वयमेव कर लेना चाहिये। ऐसा करने पर इक्कीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

देवगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग-दुर्भग में से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क और निर्माण नाम। इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति पद के आठ विकल्प होते है। दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का उदय पिशाचादि को होता है।

शरीरस्थ देव के देवानुपूर्वी कम करके वैक्रिय शरीर वैक्रिय-अंगोपांग, उपघात, प्रत्येक, और समचतुरस्रसंस्थान का उदय मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी पूर्वोक्त आठ भंग होते हैं।

तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के पराघात और प्रशस्त विहायोगति का उदय मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी वही आठ भंग होते हैं। देवों के अप्रशस्त विहायोगति का उदय नहीं होने से तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं।

इसके बाद उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त को श्वासोच्छ्वास के उदय को मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी वही आठ भंग होते हैं। अथवा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने से पहले किसी को उद्योत का उदय[1] होता है। जिससे उसको मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं और सब मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग होते हैं।

तत्पश्चात् भाषापर्याप्ति से पर्याप्त के सुस्वर का उदय[2] मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी आठ भंग होते हैं। अथवा प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को स्वर का उदय होने के पूर्व उद्योत का उदय होने से भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी वही आठ भंग होते हैं और सब मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग होते हैं।

तदनन्तर भाषापर्याप्ति से पर्याप्त के सुस्वरयुक्त उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योतनाम का उदय मिलाने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर भी वही आठ भंग होते हैं और सब मिलाकर देवों के छह उदयस्थानों के चौंसठ (६४) भंग होते हैं।

इस प्रकार देव सम्बन्धी उदयस्थानों का कथन जानना चाहिए। अब नारकों के उदयस्थानों का निरूपण करते हैं—

पूर्व में जो विकलेन्द्रियों के इक्कीस प्रकृतिक आदि छह उदयस्थान कहे हैं, वही सब संहनन और उद्योत के उदय बिना के नारकों के होते हैं। नारकों में हड्डियों का अभाव होने से संहनन नामकर्म का उदय नहीं होता है एवं अत्यन्त पाप के उदयवाले होने से उद्योत का भी

---

१ यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि देवों के अपर्याप्तावस्था में उद्योत का उदय नहीं होता है। किन्तु पर्याप्तावस्था में उत्तरवैक्रिय शरीर करने पर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत का उदय हो सकता है।

२ देवों के दुःस्वर का उदय नहीं होता है, जिससे तत्सम्बन्धी विकल्प नहीं होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय नहीं होता है। अतएव विकलेन्द्रियों के उदयस्थानों में से इन दो प्रकृतियों को कम करना चाहिये तथा नारकों के उदयस्थानों का कथन करने के प्रसंग में नरकगति का अनुसरण करने वाली प्रकृतियों में फेर-बदल कर लेना चाहिये और ऐसा करने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान की प्रकृतियों के नाम इस प्रकार होंगे—

नरकगतिद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण और निर्माण नाम। नरकगति सम्बन्धी उदयस्थानों में प्रायः सभी प्रकृतियां अशुभ होने से इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान का एवं आगे कहे जाने वाले उदयस्थानों का एक-एक ही भंग होता है।

तत्पश्चात् शरीरस्थ के इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में से नरकानुपूर्वी को कम करके वैक्रियद्विक, प्रत्येक, उपघात, हुण्डसंस्थान इन पाँच प्रकृतियों के उदय को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

इसके बाद शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के पराघात और अशुभ विहायोगति के उदय को मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

तत्पश्चात् उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त होने के बाद श्वासोच्छ्वास का उदय मिलाने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

इसके बाद भाषापर्याप्ति से पर्याप्त को दुःस्वर का उदय मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है तथा सब मिलाकर नारकों के पाँच उदयस्थानों के पाँच ही भंग होते हैं।

इस प्रकार से नरकगति सम्बन्धी नामकर्म के उदयस्थान जानना चाहिए। अब मनुष्यों में विशिष्ट ज्ञान के धारक केवली भगवन्तों के उदयस्थानों का विचार करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवली भगवन्तों के उदयस्थान

तसबायरपज्जत्तं सुभगाएज्जं पंचिंदिमणुयगई ।
जसकीत्तितित्थयरं अजोगिजिण अट्ठगं नवगं ।।८५।।
निच्चोदयपगइजुआ चरिमुदया केवलीसमुग्घाए ।
संठाणेसु सव्वेसु होंति दुसरावि केवलिणो ।।८६।।
पत्तेउवघायउरालदु छ य संठाण पढमसंघयणा ।
छूढे छसत्तवीसा पुव्वुत्ता सेसया उदया ।।८७।।

शब्दार्थ—**तसबायरपज्जत्तं**—त्रस, बादर, पर्याप्त, **सुभगाएज्जं**—सुभग, आदेय, **पंचिंदिमणुयगई**—पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति, **जसकीत्तितित्थयरं**—यशःकीर्ति, तीर्थंकर नाम, **अजोगिजिण**—अयोगि जिन, (केवली) **अट्ठगं**—आठ प्रकृतिक, **नवगं**—नौ प्रकृतिक ।

निच्चोदयपगइजुआ—ध्रुवोदया प्रकृतियों सहित, **चरिमुदया**—चरमोदय वाले, **केवलीसमुग्घाए**—केवलि समुद्घात् में, **संठाणेसु सव्वेसु**—सभी संस्थानों में, **होंति**—होते हैं, **दुसरावि**—दुःस्वर भी, **केवलिणो**—केवली भगवान को ।

पत्ते—प्रत्येक, **उवघाय**—उपघात, **उरालदु**—औदारिकद्विक, **छ**—छह, **य**—और, **संठाण**—संस्थान, **पढमसंघयणा**—प्रथम संहनन, **छूढे**—मिलाने पर, **छसत्तवीसा**—छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक, **पुव्वुत्ता**—पूर्व में कहे गये अनुसार, **सेसया**—शेष, **उदया**—उदयस्थान ।

गाथार्थ—त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति, यशःकीर्ति, इन आठ प्रकृतियों का उदय सामान्य अयोगिकेवली को और तीर्थंकर नाम सहित नौ प्रकृतियों उदय तीर्थंकर केवली को होता है ।

ध्रुवोदया प्रकृतियोंयुक्त पूर्वोक्त चरमोदया प्रकृतियों सहित उदयस्थान केवली समुद्घात में होते हैं। केवली भगवान को सभी संस्थान होते हैं एवं दुःस्वर का भी उदय होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पूर्वोक्त दो उदयस्थानों में) प्रत्येक, उपघात, औदारिकद्विक, छह संस्थानों में से एक संस्थान और प्रथम संहनन का प्रक्षेप करने पर छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं और शेष उदय पूर्व में कहे अनुसार जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यद्यपि मनुष्यों में पाये जाने वाले उदयस्थान केवली भगवन्तों में भी होते हैं। फिर भी इनमें मनुष्यसामान्य की अपेक्षा विशेषता है। अतः इनके उदयस्थानों का पृथक् से निर्देश किया है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार हैं—

केवली भगवान में आठ, नौ, बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये दस उदयस्थान होते हैं। उनमें से आठ और नौ प्रकृतिक उदयस्थानगत प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, पंचेन्द्रियजाति और मनुष्यगति, इन आठ प्रकृतियों का उदय अयोगिकेवली गुणस्थान में सामन्य केवली के होता है। इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान का एक ही भंग होता है तथा तीर्थंकर भगवन्तों के तीर्थंकर नाम का भी उदय होता है। अतएव पूर्वोक्त आठ प्रकृतियों में उसको मिलाने पर नौ का उदयस्थान होता है। इसका भी एक ही भंग है।

इस प्रकार आठ और नौ प्रकृतिक उदयस्थान अयोगिकेवली गुण-स्थान के अनुक्रम से सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली को होते हैं। तथा—

पूर्वोक्त आठ और नौ प्रकृतिक उदयस्थान में ध्रुवोदया, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माणनाम रूप बारह प्रकृतियों को मिलाने पर बीस और इक्कीस प्रकृतिक यह दो उदयस्थान इस प्रकार होते हैं—पूर्वोक्त आठ प्रकृतियों में ध्रुवोदया बारह प्रकृतियों को मिलाने से बीस प्रकृतिक एवं नौ प्रकृतियों में मिलाने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमशः सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली को जानना चाहिए।

ये दोनों उदयस्थान केवलिसमुद्घात में कार्मणकाययोग में रहते तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में होते हैं। इन दोनों उदयस्थानों का एक-एक भंग होता है।

इस प्रकार से अभी तक केवली के आठ, नौ, बीस, और इक्कीस प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों का कथन करने के बाद अब जो उदयस्थान कहे जाने वाले हैं उनमें होने वाले भंगों के जानने के लिये सामान्य केवली को जितने संस्थान और स्वर का उदय संभव है उनका निर्देश करते हैं—

'संठाणेसु सव्वेसु होंति दुसरावि केवलिणो' अर्थात् सामान्य केवली के सभी संस्थान संभव हैं तथा वे दुःस्वर वाले भी होते हैं तथा –'वि–अपि' शब्द से सुस्वर वाले भी होते हैं। अर्थात् उनको दुस्वर का भी और सुस्वर का भी उदय होता है। किन्तु तीर्थंकर केवली के तो एक समचतुरस्र संस्थान और सुस्वर का ही उदय होता है। अतएव—

पूर्वोक्त बीसप्रकृतिक उदयस्थान में प्रत्येक, उपघात, औदारिकद्विक, छह संस्थान में से एक संस्थान और प्रथम संहनन— वज्रऋषभनाराचसंहनन इन छह प्रकृतियों का प्रक्षेप करने से छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है और यह उदयस्थान केवली समुद्घात में दूसरे, छठे और सातवें समय में वर्तमान औदारिकमिश्रयोगी सामान्य केवली को होता है। यहाँ छह संस्थान के छह भंग होते हैं।

तीर्थंकर केवली के पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में प्रत्येक आदि छह प्रकृतियों का प्रक्षेप करने से सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन सत्ताईस प्रकृतियों का उदय समुद्रघात के दूसरे, छठे और सातवें समय में वर्तमान औदारिकमिश्रयोगी तीर्थंकर भगवान को होता है। तीर्थंकर भगवान को समचतुरस्रसंस्थान का ही उदय होने से यहाँ एक भंग होता है।

शेष अट्ठाईस प्रकृतिक आदि उदयस्थान पहले 'पराघायखगइजुत्ता अडवीसे' इत्यादि गाथा द्वारा कहे गये हैं, वही यहाँ भी समझ लेना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। जो इस प्रकार हैं—

अनन्तरोक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और अन्यतर विहायोगति का प्रक्षेप करने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान जिसने स्वर और उच्छ्वास का रोध किया है, ऐसे सामान्य केवली को होता है। यहाँ छह संस्थान और विहायोगतिद्विक का व्यत्यास करने से बारह भंग होते हैं।[1]

इस अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान को तीर्थंकरनाम युक्त करने पर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान का उदय ऐसे तीर्थंकर केवली को होता है जिनने स्वर और उच्छ्वास का रोध किया है। तीर्थंकर केवली के अशुभ संस्थान और अशुभ विहायोगति का उदय नहीं होने से एक ही भंग होता है।

अनन्तरोक्त सामान्यकेवली संबन्धी अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में उच्छ्वास को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक एवं तीर्थंकर संबन्धी उनतीस प्रकृतियों के उदय में उच्छ्वास का प्रक्षेप करने पर तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह दोनों उदयस्थान ऐसे सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली को अनुक्रम से होते हैं जिन्होंने स्वर का रोध किया है। इनमें से सामान्य केवली संबन्धी उनतीस प्रकृतिक

---

१ यहां सामान्य केवली को अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान में छह सस्थान और विहायोगतिद्विक के साथ बारह-बारह भंग बतलाये हैं। परन्तु सित्तरिचूर्णि और सप्ततिका भाष्य गाथा ११८,११९ की टीका में स्वर के रोध के बाद उनतीस और उच्छ्वास के रोध के बाद अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होने से उस समय काययोग के निरोध करने का भी समय होने से अत्यन्त नीरस ईख के समान विहायोगतिद्विक के रस विहीन दलिकों का ही उदय होता है। किन्तु गति की चेष्टा नहीं होती हैं। जिससे अट्ठाईस और उनतीस के उदयस्थान में सामान्य केवली को बारह के बदले छह संहननों के छह भंग ही बताये हैं। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान के छह संस्थान और विहायोगतिद्विक के विकल्प होने से बारह भंग होते हैं और तीर्थंकर केवली संबन्धी तीस प्रकृतिक उदयस्थान का पूर्ववत् एक ही भंग होता है।

सामान्य केवली सम्बन्धी उनतीस प्रकृतियों को स्वर युक्त होने पर तीस प्रकृतिक और तीर्थंकर संबन्धी तीस प्रकृतिक को स्वर युक्त करने पर इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। दोनों उदयस्थान अनुक्रम से जिन्होंने न तो समुद्घात करना हो और न योग का रोध करना प्रारंभ किया है ऐसे सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली को होते हैं। इनमें से तीस प्रकृतिक उदयस्थान में छह संस्थान, विहायोगतिद्विक और स्वरद्विक का परावर्तन करने पर चौबीस भंग होते हैं और इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान का पूर्ववत् मात्र एक ही भंग होता है। क्योंकि तीर्थंकर केवली के प्रथम संस्थान, शुभ विहायोगति और सुस्वर रूप प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होता है।

सब मिलाकर सामान्य सयोगिकेवली और तीर्थंकर सयोगिकेवली के बासठ (६२) भंग होते हैं। परन्तु उनमें से सामान्य केवली के छब्बीस प्रकृति के उदय के छह, अट्ठाईस प्रकृति के उदय के बारह, उनतीस प्रकृति के उदय के बारह और तीस प्रकृति के उदय के चौबीस, कुल चौवन भंग सामान्य मनुष्य के उदयस्थानों में भी होने से उनको अलग नहीं गिना है। शेष आठ प्रकृति के उदय का एक, नौ प्रकृति के उदय का एक, बीस प्रकृति के उदय का एक, इक्कीस प्रकृति के उदय का एक, सत्ताईस प्रकृति के उदय का एक, उनतीस प्रकृति के उदय का एक तथा तीस और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय का एक-एक भंग, कुल आठ भंग जो सामान्य मनुष्यों के उदयस्थानों में नहीं गिने हैं, परमार्थतः उन्हीं को विशेष भंग के रूप में जानना चाहिये। इन विशेष आठ भंगों में के बीस और आठ इन दो उदयस्थानों के दो भंग सामान्य केवली के और शेष छह भंग तीर्थंकर केवली के हैं।

इस प्रकार से केवली भगवन्तों में संभव उदयस्थान और उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगविकल्प जानना चाहिये । अब ऊपर जो अट्ठाईस से लेकर इकत्तीस प्रकृतिक तक के चार उदयस्थान केवली में कहे हैं उनके लिये आचार्य कुछ विशेष बतलाते हैं—

तित्थयरे इगतीसा तीसा सामण्णकेवलीणं तु ।
खीणसरे गुणतीसा खीणुस्सासम्मि अडवीसा ॥८८॥

शब्दार्थ—**तित्थयरे**—तीर्थंकर को, **इगतीसा**—इकत्तीस प्रकृतिक, **तीसा**—तीस प्रकृतिक, **सामण्णकेवलीणं**—सामान्य केवली को, **तु**—और, **खीणसरे**—स्वर का उदय क्षीण होने पर, **गुणतीसा**—उनतीस प्रकृति, **खीणुस्सासम्मि**—उच्छ्वास का उदय क्षीण होने पर, **अडवीसा**—अट्ठाईस प्रकृतिक ।

गाथार्थ—तीर्थंकर को इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान और सामान्य केवली को तीस प्रकृतिक होता है । स्वर का उदय क्षीण होने पर उनतीस और उच्छ्वास का उदय क्षीण होने पर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है ।

विशेषार्थ—औदारिककाययोग में वर्तमान तीर्थंकर केवली को इकत्तीस प्रकृतियों का उदय होता है और जब वे वचनयोग का रोध करते हैं तब सुस्वर नामकर्म का उदयविच्छेद होता है, जिससे तीस प्रकृतियों का उदय होता है । तत्पश्चात् उच्छ्वास का रोध करने पर श्वासोच्छ्वास नामकर्म का उदयविच्छेद होता है, जिससे उनतीस प्रकृतियों का उदय होता है । तथा—

औदारिककाययोग में वर्तमान सामान्य केवली के तीस प्रकृतियों का उदय होता है और जब वे वचनयोग का रोध करते हैं तब सुस्वर या दुःस्वर का उदय न होने पर उनतीस प्रकृतियों का उदय होता है और उसके बाद जब उच्छ्वास का रोध करते है तब श्वासोच्छ्वास नाम का उदय कम होने पर अट्ठाईस प्रकृतियों का उदय होता है ।

समस्त उदयस्थानों के भंगों की संख्या सात हजार सात सौ इक्यानवै (७७९१) होती है । जो इस प्रकार जानना चाहिये—एकेन्द्रियों के ४२, विकलेन्द्रियों के ६६, सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९०६, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के ५६, सामान्य मनुष्य के २६०२, केवली के ८, वैक्रिय मनुष्य के ३५, आहारक संयत के ७, देवों के ६४ और नारकों के ५। इस प्रकार चारों गति के जीवों के सभी उदयस्थानों के कुल भंगों की संख्या सात हजार सात सौ इक्यानवें होती है।

इस प्रकार से चारों गति में संभव नामकर्म के उदयस्थानों को जानना चाहिये। अब नामकर्म की जो प्रकृतियां जिस गुणस्थान तक उदय और जिस गुणस्थान में जिनका उदयविच्छेद होता है, उसको स्पष्ट करते हैं।

नामकर्म की प्रकृतियों के उदययोग्य गुणस्थान

साहारणाउ मिच्छे सुहुमअपज्जत्तआयवाणुदओ।
सासायणंमि थावरएगिंदिविगलजाईणं ॥८९॥

शब्दार्थ—**साहारणाउ**—साधारण का, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **सुहुमअपज्जत्तआयवाणुदओ**—सूक्ष्म अपर्याप्त, आतप का उदय, **सासायणंमि**—सासादन गुणस्थान में, **थावरएगिंदिविगलजाईणं**—स्थावर, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जाति का।

गाथार्थ—साधारण, सूक्ष्म, अपर्याप्त और आतप का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में और स्थावर, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जाति का सासादन गुणस्थान में उदय होता है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान में भिन्न भिन्न जीवों की अपेक्षा तीर्थंकर और आहारकद्विक[1] के बिना नामकर्म की चौसठ प्रकृतियों का उदय होता है। इनमें से साधारण, सूक्ष्म, अपर्याप्त और आतप नाम

---

१ तीर्थंकर नाम का उदय तेरहवें चौदहवें गुणस्थान में और आहारकद्विक का उदय छठे सातवें गुणस्थान में होने से यहाँ उनका निषेध किया है। यहाँ रसोदय की विवक्षा है, प्रदेशोदय की नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदयविच्छेद होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस प्रकृति का जिस गुणस्थान में उदयविच्छेद होता है, उसी गुणस्थान तक ही उस प्रकृति का उदय होता है, उसके बाद के गुणस्थान में उदय नहीं होता है। अतएव इस नियम के अनुसार साधारणनाम आदि प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही उदय होता है। सासादन आदि गुणस्थानों में उदय नहीं होता है।

उक्त चौंसठ प्रकृतियों में से चार प्रकृतियों के कम हो जाने से सासादन गुणस्थान में साठ प्रकृतियों का उदय होता है और यहाँ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति और स्थावरनाम इन पांच प्रकृतियों का उदयविच्छेद होने से मिश्रदृष्टि आदि आगे के गुणस्थानों में इनका उदय नहीं होता है। अर्थात् एकेन्द्रियजाति आदि पांच प्रकृतियों का उदय सासादन गुणस्थान तक ही होता है। अतएव साठ प्रकृतियों में से इन पांच प्रकृतियों को कम करने से मिश्र गुणस्थान की उदययोग्य पचपन प्रकृतियां हैं। किन्तु मिश्र गुणस्थान की इतनी विशेषता है कि मिश्रदृष्टि काल नहीं करता है। जिससे चारों आनुपूर्वियों का उदय संभव नहीं है। अतः एकेन्द्रियजाति आदि पांच प्रकृतियों के साथ चार आनुपूर्वी को भी कम करने से इक्यावन प्रकृतियों का उदय मिश्रदृष्टि गुणस्थान में होता है।

इस प्रकार से आदि के तीन गुणस्थानों में नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियों को बतलाने के बाद चौथे आदि गुणस्थानों में उदययोग्य प्रकृतियों को बतलाते हैं—

सम्मे विउव्विछक्कस्स दुभगणाएज्जअजसपुव्वीणं।
विरयाविरए उदओ तिरिगइउज्जोयपुव्वाणं ॥९०॥

शब्दार्थ—**सम्मे**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, **विउव्विछक्कस्स**—वैक्रियषट्क का, **दुभगणाएज्जअजसपुव्वीणं**—दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, आनुपूर्वी का, **विरयाविरए**—विरताविरत (देशविरत) में, **उदओ**—उदय, **तिरिगइउज्जोयपुव्वाणं**—तिर्यंचगति और उद्योत नाम सहित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—वैक्रियषट्क, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और आनुपूर्वी का उदय अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होता है तथा तिर्यंचगति और उद्योत नाम सहित उदय देशविरत गुणस्थान होता है।

विशेषार्थ—यहाँ चौथे और पाँचवें गुणस्थान तक नामकर्म की उदययोग्य प्रकृतियों के नाम बताये हैं। वे इस प्रकार हैं—

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान, अपान्तरालगति—विग्रहगति में भी होता है, जिससे चारों आनुपूर्वियों का उदय संभव है। अतएव उन चार का उदय पूर्वोक्त इक्यावन के उदय में बढ़ाने पर पचपन प्रकृतियों का उदय अविरतसम्यग्दृष्टि को होता है।

उनमें से वैक्रियषट्क—देवगतिद्विक, नरकगतिद्विक, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, तिर्यंचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी इन ग्यारह प्रकृतियों का उदयविच्छेद होता है। यानि इन ग्यारह प्रकृतियों का उदय चौथे गुणस्थान तक होता है। पांचवें आदि गुणस्थानों में नहीं होता है।[1] जिससे पचपन में से ग्यारह प्रकृतियों को कम करने पर पाँचवें गुणस्थान में चवालीस प्रकृतियों का उदय होता है।

विरताविरत—देशविरत गुणस्थान में तिर्यंचगति और उद्योत

---

१ यहाँ पांचवें गुणस्थान में जो वैक्रियशरीर और वैक्रियअंगोपांगनाम के उदय का निषेध किया है वह कर्मस्तव के अभिप्रायानुसार किया है। पंचसंग्रहकार ने तो देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तगुणस्थान में भी उनका उदय स्वीकार किया है। क्योंकि अपनी स्वोपज्ञ वृत्ति में उनसे होने वाले भंगों का गाथा १२६ में विचार किया है।

यहाँ भवधारणीय वैक्रियशरीर की विवक्षा है क्योंकि भवधारणीय वैक्रियशरीर चौथे गुणस्थान तक ही होता है। कृत्रिम वैक्रियशरीर पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थान तक भी होता है। उसकी विवक्षा से सातवें गुणस्थान तक वैक्रिय शरीर के उदय को ग्रहण किया जा सकता है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नाम का उदयविच्छेद होता है यानि देशविरत गुणस्थान तक ही उनका उदय होता है और प्रमत्तसंयत आदि आगे के गुणस्थानों में उदय नहीं होता है। जिससे चवालीस प्रकृतियों में से उनको कम करने तथा—

विरयापमत्तएसुं अंततिसंघयणपुव्वगाणुदओ।
अपुव्वकरणमादिसु दुइयतइज्जाण खीणाओ ॥६१॥
नामधुवोदय सूसरखगईओरालदुव च पत्तेयं।
उवघायति संठाणा उसभ जोगम्मि पुव्वुत्ता ॥६२॥

शब्दार्थ—**विरयापमत्तएसुं**—प्रमत्त और अप्रमत्त विरत में, **अंततिसंघयणपुव्वगाणुदओ**—अन्तिम तीन संहनन प्रकृतियों का उदय, **अपुव्वकरणमादिसु**—अपूर्वकरण आदि में, **दुइयतइज्जाण**—दूसरे और तीसरे संहनन का, **खीणाओ**—क्षीणमोह गुणस्थान आदि में।

नावधुवोदय—नामध्रुवोदयी, **सूसरखगईओरालदुव**—सुस्वरद्विक, खगतिद्विक, औदारिकद्विक, **पत्तेयं**—प्रत्येक, **उवघायति**—उपघातत्रिक, **संठाणा**—संस्थान, **उसभ**—वज्रऋषभनाराचसंहनन, **जोगम्मि**—सयोगिकेवली के, **पुव्वुत्ता**—(अयोगि) के पूर्वोक्त (आठ या नौ)।

गाथार्थ—प्रमत्त और अप्रमत्त विरत गुणस्थान में अंतिम तीन संहननादि का तथा अपूर्वकरणादि में दूसरे-तीसरे संहनन आदि का उदय होता है। क्षीणमोह आदि गुणस्थानों में—

नामध्रुवोदयी, सुस्वरद्विक, खगतिद्विक और औदारिकद्विक, प्रत्येक, उपघातत्रिक, संस्थान और प्रथम संहनन का सयोगिकेवलीगुणस्थान में उदय होता है और अयोगि में पूर्वोक्त (आठ या नौ) का उदय होता है।

विशेषार्थ—प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थान में अंतिम तीन संहनन—अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त संहनन आदि बयालीस तथा यहाँ आहारकद्विक का भी उदय संभव होने से उन दो को भी बयालीस में मिलाने पर कुल चवालीस प्रकृतियों का उदय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम तीन संहननों का अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में उदयविच्छेद होता है और आहारकद्विक का उदय भी श्रेणि में नहीं होने से अपूर्वकरण से उपशांतमोहगुणस्थान तक में उनतालीस प्रकृतियों का उदय होता है।

ऋषभनाराच और नाराच संहनन का उदय अपूर्वकरण से उपशांतमोह गुणस्थान तक ही होता है। क्षीणमोहादि गुणस्थानों में नहीं होता है। जिससे उन्हें कम करने पर क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थानों में सैंतीस प्रकृतियों का उदय होता है तथा तीर्थंकरनाम के उदय वाले सयोगिकेवली के तीर्थंकरनामकर्म के साथ अड़तीस प्रकृतियों का उदय होता है। तथा—

नामकर्म की ध्रुवोदया—स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण रूप बारह प्रकृति, सुस्वरद्विक, विहायोगतिद्विक, औदारिकद्विक, प्रत्येक, उपघातत्रिक–उपघात, पराघात और उच्छ्वास, छह संस्थान, वज्रऋषभनाराचसंहनन, इन पुद्गलविपाकी उनतीस प्रकृतियों का सयोगिकेवलीगुणस्थान में उदयविच्छेद होता है। यानि इन उनतीस प्रकृतियों का उदय सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होता है, अयोगिकेवली गुणस्थान में नहीं होता है।

अयोगिकेवली गुणस्थान में मात्र जीवविपाकी—त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, पंचेन्द्रियजाति और मनुष्यगति रूप आठ प्रकृतियों का सामान्यकेवली के और तीर्थंकर भगवान को तीर्थंकरनाम सहित नौ प्रकृतियों का उदय है तथा उनका भी अयोगि के चरम समय में उदयविच्छेद होता है।

इस प्रकार गुणस्थानों में नामकर्म का प्रकृतियों का उदय और उदयविच्छेद जानना चाहिये और इस वर्णन के साथ नामकर्म की प्रकृतियों के उदयाधिकार का वर्णन पूर्ण हुआ।[1] अब नामकर्म के

---

१ नामकर्म के उदयस्थानों सम्बन्धी वर्णन के प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं।

नामकर्म के सत्तास्थान

पिंडे तित्थगरुणे आहारुणे तहोभयविहूण।
पढमचउक्कं तस्सउ तेरसगखए भवे बीयं ॥९३॥
सुरदुगवेउव्वियगइदुगे य उव्वट्टिए चउत्थाओ।
मणुदुगेय नवट्ठय दुहा भवे संतयं एक्कं ॥९४॥

शब्दार्थ—**पिंडे**—सभी प्रकृतियों का पिंड रूप, **तित्थगरुणे**—तीर्थंकर नाम से न्यून, **आहारुणे**—आहारकचतुष्क न्यून, **तहोभयविहूणे**—तथा दोनों से न्यून, **पढमचउक्कं**—प्रथम चतुष्क, **तस्सउ**—उसमें से, **तेरसगखए**—तेरह प्रकृतियों का क्षय होने पर, **भवे**—होता है, **बीयं**—दूसरा चतुष्क, **सुरदुग**—देवगतिद्विक, **वेउव्वियगइदुगे**—वैक्रियद्विक, गतिद्विक, **य**—और, **उव्वट्टिए**—उद्वलना करने पर, **चउत्थाओ**—चौथे स्थान में से, **मणुदुगेय**—और मनुष्यद्विक, **नवट्ठय**—नौ और आठ प्रकृतिक, **दुहा**—दो प्रकार से, **भवे**—होता है, **संतयं**—सत्ता, **एक्कं**—एक।

गाथार्थ—नामकर्म की सभी तेरानवै प्रकृतियों का पिंड रूप पहला सत्तास्थान, उसमें से तीर्थंकरनाम न्यून होने पर, आहारकचतुष्क न्यून होने पर और उभय न्यून होने पर बानवै, नवासी, और अठासी प्रकृतिक इस तरह कुल चार सत्तास्थान होते हैं। इनकी प्रथम सत्ताचतुष्क यह संज्ञा है। इनमें से तेरह प्रकृतियों का क्षय होने पर दूसरा सत्ताचतुष्क होता है। प्रथम सत्ताचतुष्क के चौथे सत्तास्थान में से देवद्विक, वैक्रियद्विक (चतुष्क) की, तत्पश्चात् (नरक) गतिद्विक और उसके बाद मनुष्यद्विक की उद्वलना होने पर तीन सत्तास्थान होते हैं तथा नौ और आठ प्रकृतिक कुल तेरह सत्तास्थान होते हैं। इनमें से अस्सी की सत्ता दो प्रकार से होती है, उसे एक प्रकार से गिनने पर नामकर्म के बारह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—नामकर्म की सभी प्रकृतियाँ तेरानवै हैं। उन सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियों के समुदाय की पिंड यह संज्ञा है। यहाँ बंधन के पाँच भेदों की विवक्षा होने से तेरानवै प्रकृतियाँ कही हैं। इन तेरानवै प्रकृतियों का समूह रूप पहला सत्तास्थान है। किसी जीव को एक साथ तेरानवै प्रकृतियां भी सत्ता में होती हैं।

उक्त तेरानवै प्रकृतियों में से तीर्थंकरनाम को कम करने पर बानवै प्रकृति प्रमाण दूसरा सत्तास्थान होता है तथा उक्त तेरानवै प्रकृतियों में से आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग, आहारकबंधन और आहारकसंघात रूप आहारकचतुष्क को न्यून करने पर नवासी प्रकृति प्रमाण तीसरा सत्तास्थान होता है और तेरानवै में से तीर्थंकरनाम व आहारकचतुष्क दोनों को कम करने पर अठासी प्रकृतिक चौथा सत्तास्थान होता है। इन चार सत्तास्थानों को प्रथम सत्तास्थानचतुष्क कहते हैं।

पूर्वोक्त प्रथम चतुष्क में से क्षपकश्रेणि में नौवें गुणस्थान में नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का क्षय होने पर अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृतिक इस तरह चार सत्तास्थान होते हैं। इनकी द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क यह संज्ञा है।

पहले सत्तास्थानचतुष्क के चौथे अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान में से देवगति, देवानुपूर्वी की (अथवा नरकगति, नरकानुपूर्वी की) उद्वलना होने पर छियासी प्रकृति प्रमाण पहला अध्रुव संज्ञा वाला सत्तास्थान होता है। उसमें से यदि पहले नरकद्विक की उद्वलना हुई हो तो देवद्विक और वैक्रियचतुष्क की उद्वलना होने पर अथवा यदि पहले देवद्विक की उद्वलना हुई हो तो नरकद्विक और वैक्रियचतुष्क की उद्वलना होने पर अस्सी प्रकृति का समूह रूप अध्रुवसंज्ञा वाला दूसरा सत्तास्थान होता है। उसमें से मनुष्यद्विक की उद्वलना होने पर अठहत्तर प्रकृति का समुदाय रूप अध्रुव संज्ञा वाला तीसरा सत्तास्थान होता है तथा नौ प्रकृति प्रमाण और आठ प्रकृति प्रमाण कुल मिलाकर नामकर्म के बारह सत्तास्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित यह कहा जाये कि ऊपर जो सत्तास्थान कहे हैं उनका जोड़ करने पर तेरह सत्तास्थान इस प्रकार होते हैं—प्रथम सत्तास्थान-चतुष्क, द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क, अध्रुवसंज्ञावालात्रिक और आठ, नौ प्रकृतिक। इनका कुल जोड़ तेरह होता है तो फिर बारह सत्ता-स्थान कैसे हुए ? तो इसका उत्तर यह है कि अस्सी प्रकृतिक सत्ता-स्थान दो प्रकार से होता है एक तो तेरानवै में से नामकर्म की तेरह प्रकृतियां क्षय होने पर होता है और दूसरा अठासी प्रकृतियों में से देवद्विक, नरकद्विक और वैक्रियचतुष्क की उद्वलना होने पर। परन्तु संख्या तुल्य होने से एक की ही विवक्षा की है। इसीलिये नामकर्म के बारह सत्तास्थान कहे हैं।

इस प्रकार से सप्ततिका के अभिप्रायानुसार नामकर्म के बारह सत्तास्थान जानना चाहिये। किन्तु कर्मप्रकृति आदि के अभिप्राया-नुसार इसी प्रकार से एक सौ तीन आदि समझना चाहिये। वे इस प्रकार हैं—कर्मप्रकृतिकारादि बन्धन पन्द्रह मानते हैं। जिससे एक सौ तीन प्रकृतियों का पिंड पहला सत्तास्थान, उसमें से तीर्थंकरनाम को कम करने पर एक सौ दो प्रकृति प्रमाण दूसरा सत्तास्थान, एक सौ तीन में से आहारकसप्तक को कम करने पर छियनावै प्रकृति प्रमाण तीसरा सत्तास्थान और एक सौ तीन में से तीर्थंकरनाम एवं आहारक सप्तक को न्यून करने पर पंचानवै प्रकृति प्रमाण चौथा सत्तास्थान होता है। इन चार सत्तास्थानों को प्रथम सत्तास्थानचतुष्क के नाम से कहा जाता है।

इस प्रथम सत्तास्थानचतुष्क में से तेरह प्रकृतियों का क्षय होने के बाद नव्वै, नवासी, तिरासी, और बयासी प्रकृति रूप चार सत्ता-स्थान होते हैं। इनकी द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क यह संज्ञा है।

प्रथम सत्तास्थानचतुष्क के चौथे पंचानवै प्रकृति रूप सत्तास्थान में से देवद्विक (अथवा नरकद्विक की उद्वलना करे तब तेरानवै प्रकृतिक, उसमें से देवद्विक अथवा नरकद्विक जो अनुद्वलित हो उसकी तथा वैक्रियसप्तक की उद्वलना हो तब चौरासी और उसमें से मनुष्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विक की उद्वलना होने पर बयासी प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं। इन तीन सत्तास्थानों की अध्रुव यह संज्ञा है तथा नौ और आठ प्रकृति रूप, सब मिलाकर नामकर्म के बारह सत्तास्थान होते हैं।

इनमें से बयासी प्रकृति का समूह रूप सत्तास्थान दो प्रकार से होता है। एक तो क्षपकश्रेणि में और दूसरा संसारी जीवों के। ये दोनों सत्तास्थान समसंख्या वाले होने से यहां एक की ही विवक्षा की है। जिससे बारह सत्तास्थान कहे हैं।

अब नौवें गुणस्थान में सत्ता-विच्छिन्न होने वाली नामकर्म की तेरह प्रकृतियों के नाम बतलाते हैं।

नौवें गुणस्थान में सत्ताविच्छिन्न नामकर्म की तेरह प्रकृति

थावरतिरिगइदोदो आयावेगेंदि विगलसाहारं।
नरयदुगुज्जोवाणि य दसाइमेगंततिरिजोगा ।।६५।।

शब्दार्थ—**थावरतिरिगइदोदो**—स्थावरद्विक, तिर्यंच गतिद्विक, **आयावेगेंदि**—आतप, एकेन्द्रिय, **विगलसाहारं**—विकलेन्द्रियत्रिक जाति, साधारण, **नरयदुग**—नरकद्विक, **उज्जोवाणि**—उद्योत नाम, **य**—और, **दसाइमेगंततिरिजोगा**—आदि की दस एकान्त रूप से तिर्यंच प्रायोग्य हैं।

गाथार्थ—स्थावरद्विक, तिर्यंचद्विक, आतप, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियजातित्रिक, साधारण, नरकद्विक और उद्योत ये नाम त्रयोदशक कहलाती हैं। इनमें से आदि की दस प्रकृतियां एकान्त रूप से तिर्यंचगतिप्रायोग्य हैं।

विशेषार्थ—गाथा में नौवें गुणस्थान में विच्छिन्न होने वाली तेरह प्रकृतियों के नाम बतलाये हैं। जिनमें से दस प्रकृतियों का उदय तिर्यंचगति में ही होने से तिर्यंचगतिप्रायोग्यदशक कहलाती हैं। विशेषता के साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'थावरतिरिगइदोदो' अर्थात् स्थावरद्विक–स्थावर और सूक्ष्म नाम, तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी रूप तिर्यंचगतिद्विक, आतप, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधारण, नरकगति, नरकानुपूर्वी और उद्योत ये प्रकृतियां नामत्रयोदश कहलाती हैं। क्षपकश्रेणि के नौवें गुणस्थान के संख्यात भाग जाने के बाद इन तेरह प्रकृतियों का सत्ता में से नाश होता है और इन तेरह में से भी आदि की स्थावर से लेकर साधारण नाम तक दस प्रकृतियों का उदय और उदीरणा मात्र तिर्यंचगति में ही होती हैं।

यद्यपि गाथा में इन दस प्रकृतियों के लिये उदय, उदीरणा की अपेक्षा ऐसा कुछ भी नहीं कहा है। परन्तु गाथा में आगत 'य—च' शब्द अनेक अर्थ वाला होने से एवं युक्ति से 'उदय-उदीरणा आश्रयी' इस पद का ग्रहण किया हुआ समझना चाहिए। क्योंकि आदि की उक्त दस प्रकृति बंध और सत्ता की अपेक्षा तो अन्य जीवों के भी योग्य हैं। जिससे स्थावरादि दस प्रकृतियों का बंध और सत्ता मनुष्यादि अन्य जीवों को भी होती हैं किन्तु मात्र तिर्यंचों को ही उनका बंध और सत्ता होती है यह नहीं समझना चाहिये। लेकिन इन दसों प्रकृतियों की उदय-उदीरणा मात्र तिर्यंचगति में ही होती है। इसीलिये उदय-उदीरणा की अपेक्षा ये दस प्रकृतियां मात्र तिर्यंचगति-योग्य हैं।

ऐसा कहने का प्रयोजन है कि पूर्व में यथायोग्य उन-उन स्थानों पर एकान्त तिर्यंचयोग्य प्रकृतियां का संकेत तो किया, लेकिन उनके नाम नहीं बताये थे। इसलिये जब प्रसंगानुसार नामत्रयोदशक कहने का अवसर आया तो उन नामों को बताते हुए एकान्त तिर्यंचप्रायोग्य दस प्रकृतियों के नामों का भी उल्लेख कर दिया, जिनका नौवें गुणस्थान में सत्ताविच्छेद होता है।

अब पूर्वोक्त अध्रुव संज्ञा वाले नामकर्म के तीन सत्तास्थान के स्वामियों का निर्देश करते हैं।

अध्रुव सत्तास्थानों के स्वामी

एगिंदिएसु पढमदुगं वाऊतेऊसु तइयगमणिच्चं।
अहवा पणतिरिएसुं तस्संतेगिंदियाइसुं ॥९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**एगिंदिएसु**—एकेन्द्रियों में, **पढमदुगं**—आदि के दो, **वाऊतेऊसु**—वायुकायिक और तेजस्कायिक जीवों में, **तइयगमणिच्चं**—तीसरा अध्रुव सत्तास्थान, **अहवा**—अथवा, **पणतिरिएसुं**—पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, **तस्संतेगिंदियाइसुं**—एकेन्द्रियादि से लेकर होता है।

गाथार्थ—एकेन्द्रियों में आदि के दो और वायुकायिक, तेजस्कायिक में तीसरा अध्रुव सत्तास्थान होता है। अथवा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंचों तक होता है।

विशेषार्थ—'एगिंदिएसु पढमदुगं' अर्थात् पृथ्वी, अप् और वनस्पति रूप एकेन्द्रियों में छियासी और अस्सी प्रकृति रूप ये दो अध्रुव संज्ञा वाले सत्तास्थान होते हैं तथा तीसरा अठहत्तर प्रकृति रूप अध्रुव संज्ञा वाला सत्तास्थान तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में होता है। अन्य जीवों में नहीं होता है। अथवा तेज और वायुकाय में मनुष्यद्विक की उद्वलना कर वहां से निकलकर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो तो वहाँ भी जब तक मनुष्यद्विक का बंध न करे तब तक अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। अथवा तेज और वायुकाय के जीव अपने भव से निकलकर तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं, मनुष्य आदि में उत्पन्न नहीं होते हैं। इसीलिये एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यंच पंचेन्द्रिय तक में उत्पन्न हुओं को अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होने का संकेत किया है।

इस प्रकार से अध्रुव संज्ञा वाले सत्तास्थानों के स्वामियों को जानना चाहिये। अब चारों गति में सम्भव सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं।

चतुर्गति में प्राप्त नामकर्म के सत्तास्थान

पढमं पढमगहीणं नरए मिच्छंमि अधुवतियजुत्तं।
देवेसाइचउक्कं तिरिएसु अतित्थमिच्छसंताणि ॥६७॥

शब्दार्थ—**पढमं**—प्रथम सत्तास्थान चतुष्क, **पढमगहीणं**—प्रथम सत्तास्थान हीन, **नरए**—नरकगति में, **मिच्छंमि**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **अधुवति-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यजुत्तं—अध्रुवत्रिक सहित, **देवेसाइचउक्कं**—देवों में आद्य चतुष्क, **तिरिएसु**—तिर्यंचों में, **अतित्थमिच्छसंताणि**—तीर्थंकरनाम के बिना, मिथ्यात्व संबन्धी सत्तास्थान।

गाथार्थ—प्रथम सत्तास्थान हीन प्रथम सत्तास्थान चतुष्क नरकगति में होता है। अध्रुवत्रिक युक्त उक्त तीन स्थान मिथ्यात्व में होते हैं। देवों में आद्यचतुष्क और तिर्यंचों में तीर्थंकरनाम के बिना मिथ्यात्व संबन्धी सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त नामकर्म के सत्तास्थानों में से कौन-कौन किस गति में पाये जाते हैं, इसका संकेत गाथा में किया है—

'पढमं पढमगहीणं नरए' अर्थात् नरकगति में प्रथम सत्ताचतुष्क में से पहला तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान के बिना बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं। तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान न होने का कारण यह है कि वह तीर्थंकरनाम और आहारकचतुष्क सहित होता है और इन दोनों की सत्ता वाला कोई भी जीव नरकगति में उत्पन्न नहीं होता है। जिससे तेरानवै का सत्तास्थान नरकगति में होता ही नहीं है। तथा—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में प्रथम सत्तास्थानचतुष्क में से तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थानहीन तीन और अध्रुव संज्ञा वाले तीन इस प्रकार कुल छह सत्तास्थान होते हैं—'मिच्छंमि अध्रुवतियजुत्तं।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक इस तरह छह सत्तास्थान अनेक जीवों की अपेक्षा होते हैं। किन्तु ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है। क्योंकि आहारकचतुष्क और तीर्थंकरनाम इन दोनों की संयुक्त सत्तावाला कोई भी जीव मिथ्यात्वगुणस्थान में जाता नहीं है। इनके सिवाय शेष सत्तास्थान क्षपकश्रेणि में होते हैं। किन्तु मिथ्यादृष्टि के नहीं होने से उनका निषेध किया है। तथा—

देवगति में प्रथम सत्तास्थानचतुष्क (९३, ९२, ८९, ८८ प्रकृतिक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। क्योंकि इनके अतिरिक्त शेष सत्तास्थान एकेन्द्रिय अथवा क्षपकश्रेणि में सम्भव है। तथा—

तिर्यंचगति में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में जो सत्तास्थान कहे हैं, उनमें से नवासी प्रकृतिक को छोड़कर शेष ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक इस प्रकार पाँच सत्तास्थान होते हैं और नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान न होने का कारण यह है कि निकाचित तीर्थंकरनाम की सत्तावाला कोई भी जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न नहीं होता है। तथा—

उपर्युक्त कथन का यह आशय हुआ कि मनुष्यगति में सभी सत्तास्थान होते हैं। लेकिन इसका अपवाद है कि अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय शेष सभी (११ सत्तास्थान) मनुष्यगति में होते हैं। क्योंकि अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान मनुष्यद्विक की उद्वलना करने के बाद होता है और मनुष्यद्विक की सत्ता बिना का कोई भी मनुष्य होता ही नहीं है। जिससे मनुष्यगति में अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

इस प्रकार से चतुर्गति में नामकर्म के सत्तास्थानों को जानना चाहिये। अब गुणस्थानों में उनका निर्देश करते हैं।

गुणस्थानों में नामकर्म के सत्तास्थान

पढमचउक्कं सम्मा बीयं खीणाउ बार सुहुमे अ।
सासणमीसि वितित्थं पढममजोगंमि अट्ठ नव ॥६८॥

शब्दार्थ—**पढमचउक्कं**—प्रथम सत्तास्थानचतुष्क, **सम्मा**—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान, **बीयं**—द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क, **खीणाउ**—क्षीणमोह से, **बार**—बादर, **सुहुमे**—सूक्ष्मसंपराय, **अ**—और, **सासणमीसि**—सासादन और मिश्रगुणस्थान में, **वितित्थं**—तीर्थंकरनाम रहित, **पढमं**—प्रथम सत्तास्थानचतुष्क, **अजोगंमि**—अयोगिकेवली गुणस्थान में, **अट्ठ नव**—आठ और नौ प्रकृतिक।

गाथार्थ—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर प्रथम सत्तास्थानचतुष्क होता है तथा क्षीणमोह और बादरसंपराय एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसंपराय क्षपक को द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क होता है। तीर्थंकरनाम की सत्ता बिना के प्रथम चतुष्क में के सत्तास्थान सासादन और मिश्रगुणस्थान में होते हैं और अयोगिकेवली गुणस्थान में आठ व नौ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में प्राप्त नामकर्म के सत्तास्थानों का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। अतः अब दूसरे से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक पाये जाने वाले सत्तास्थानों को बतलाते हैं—

'पढमचउक्कं सम्मा' अर्थात् चौथे अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान से लेकर उपशांतमोह गुणस्थान पर्यन्त प्रथम सत्ताचतुष्क (९३, ९२, ८९, ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान) होते हैं तथा सासादन और मिश्र इन दो गुणस्थानों में प्रथम सत्ताचतुष्क में के तीर्थंकरनाम की सत्ता बिना के सत्तास्थान होते हैं। अर्थात् तेरानवै और नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं।

क्षीणमोहगुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त तथा क्षपक को अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में द्वितीय सत्तास्थानचतुष्क यानि ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं और अयोगिकेवली गुणस्थान के चरम समय में आठ और नौ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं।

उक्त संक्षिप्त कथन का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक ये छह सत्तास्थान होते हैं। इनके होने के कारण को पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है तथा सासादन और सम्यक्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) इन दो गुणस्थानों में ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि तीर्थंकरनाम की सत्तावाला इन दो गुणस्थानों को प्राप्त ही नहीं करता है। जिससे तीर्थंकरनाम की सत्तासहित तिरानवै और नवासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते नहीं हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरण इन पाँच गुणस्थानों में ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में उपशमश्रेणि की अपेक्षा ९३, ९२, ८९, ८८ प्रकृतिक ये चार और क्षपकश्रेणि में तेरह प्रकृतियों का क्षय होने के बाद ८०, ७९, ७६, ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

उपशान्तमोह गुणस्थान में ९३, ९२, ८९, ८८ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थानों में ८०, ७९, ७६, ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

अयोगिकेवली गुणस्थान में ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८, प्रकृतिक ये छह सत्तास्थान होते हैं। इनमें से आदि के चार भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा द्विचरम समय पर्यन्त और चरम समय में तीर्थंकरकेवली को नौ प्रकृतिक और सामान्यकेवली को आठ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

अमुक-अमुक गुणस्थान की अपेक्षा अनेक सत्तास्थान होते हैं, परन्तु एक जीव को एक समय में कोई भी एक ही सत्तास्थान होता है, एक साथ अनेक सत्तास्थान नहीं होते हैं और एक गुणस्थान में भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा अनेक सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से गुणस्थानों में नामकर्म के सत्तास्थानों का वर्णन जानना चाहिए। अब बंध, उदय और सत्तास्थानों का परस्पर संवेध का कथन करते हैं।

नामकर्म के बंधादि स्थानों का संवेध

नवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णवीस छब्बीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नवसत्तिगुणतीसतीसे य ॥९९॥
एक्केक्के इगतीसे एक्के एक्कुदय अट्ठ संतंसा।
उवरयबंधे दस दस नामोदय संतठाणाणि ॥१००॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**नवपंचोदयसत्ता**—नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान, **तेवीसे पण्णवीस छब्बीसे**—तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान में, **अट्ठ चउरट्ठवीसे**—अट्ठाईस प्रकृतियों के बंध में आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान, **नवसत्ति**—नौ उदयस्थान, सात सत्तास्थान, **गुणतीसतीसे**—उनतीस और तीस प्रकृतियों के बंध में, **य**—और।

एक्केक्के—एक-एक उदय व सत्तास्थान, **इगतीसे**—इकत्तीस के बंध में, **एक्के**—एक के बंध में, **एक्कुदय**—एक का उदय, **अट्ठ**—आठ, **संतंसा**—सत्तास्थान, **उवरयबंधे**—उपरतबंध होने पर, **दस-दस**—दस, दस, **नामोदय-संतठाणाणि**—नामकर्म के उदय और सत्तास्थान होते हैं।

गाथार्थ—तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के बंध में नौ उदयस्थान और पांच सत्तास्थान होते हैं। अट्ठाईस के बंध में आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं। उनतीस और तीस प्रकृतियों के बंध में नौ उदयस्थान और सात सत्तास्थान होते हैं। इकत्तीस के बंध में एक उदयस्थान और एक सत्तास्थान होता है। एक के बंध में एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं तथा उपरतबंध होने पर नामकर्म के दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का विस्तार से वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। अतएव अब इन दो गाथाओं में नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का परस्पर संवेध बताया है कि किस बंधस्थान में कितने और कौन-कौन से उदय व सत्तास्थान अविरोधि रूप से होते हैं। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के बंध में नौ-नौ उदयस्थान और पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं—'नवपंचोदयसत्ता।' इनमें से तेईस प्रकृतियों का बंध अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य है। जिससे अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर तेईस प्रकृतियों का बंध होता

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

है और उसके बंधक पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य हैं।

अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियादि सभी तिर्यंच और मनुष्य तेईस प्रकृतियों के बंधक हो सकने से अपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था में मनुष्य और तिर्यंचों के सम्भव सभी उदयस्थान तेईस प्रकृतियों का बंध करने पर सम्भव हैं। वे उदयस्थान नौ हैं, जो इस प्रकार प्रकृति-संख्या वाले हैं—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्रकृतिक। अब इन उदयस्थानों के होने का विस्तृत विवेचन करते हैं—

उपर्युक्त इक्कीस प्रकृतिक आदि नौ उदयस्थानों में से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान विग्रहगति में वर्तमान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के होता है, ये सभी इक्कीस प्रकृतियों के उदय वाले जीव अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य तेईस प्रकृतियों को बांध सकते हैं।

चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान मात्र अपर्याप्त-पर्याप्त एकेन्द्रियों के ही होता है, अन्यत्र नहीं होता है।

पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त (पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले) एकेन्द्रिय और उत्तर वैक्रियशरीर करने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंचों के होता है। जो तद्योग्य क्लिष्ट परिणाम के योग में अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों को, पर्याप्त-अपर्याप्त यानि पर्याप्त नामकर्म के उदयवाले या अपर्याप्त नामकर्म के उदय-वाले मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रियों को, तिर्यंच पंचेन्द्रियों को और मनुष्यों को होता है।

सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय और मिथ्यादृष्टि वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच-मनुष्यों के होता है।

अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पर्याप्त विकलेन्द्रिय (सामान्य या वैक्रिय शरीरी) तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य को होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रियों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है।

इनके सिवाय अन्य देव, नारक या युगलिक तेईस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। तेईस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि को ही होने से सर्वत्र मिथ्यादृष्टि विशेषण दिया है।

यह विवेचन तो हुआ तेईस प्रकृति के बंधक के नौ उदयस्थानों का, अब उसी के सत्तास्थानों को बतलाते हैं—

तेईस के बंधक उपर्युक्त समस्त जीवों को सामान्य से बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक ये पांच सत्तास्थान होते हैं। इनमें इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में वर्तमान समस्त जीवों के पांच में से कोई भी सत्तास्थान हो सकता है। मात्र इक्कीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान तेईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य को अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वलना होने के बाद होता है। मनुष्य को उनकी उद्वलना सम्भव नहीं है, इसलिये मनुष्य को अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है।

चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान में भी उक्त पांच सत्तास्थान सम्भव हैं। मात्र चौबीस प्रकृतियों के उदय वाले वैक्रियशरीर करते वायुकार्य को अस्सी और अठहत्तर के बिना बानवै, अठासी और छियासी प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि वैक्रियषट्क और मनुष्यद्विक की तो उसको अवश्य सत्ता है और इसका कारण यह है कि वैक्रियशरीरी को तो साक्षात् अनुभव होता है, अनुभव उदय बिना होता नहीं, जिससे वह उसकी उद्वलना नहीं करता है और उसकी उद्वलना हुए बिना देवद्विक या नरकद्विक की भी उद्वलना नहीं करता है। क्योंकि तथास्वभाव से वैक्रियषट्क की समकाल में उद्वलना होती है और वैक्रियषट्क की उद्वलना होने के बाद ही मनुष्यद्विक की उद्वलना करता है, इससे पूर्व नहीं। इसलिए अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान वैक्रिय वायुकायिक जीव को नहीं होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान में भी पूर्वोक्त पांचों स्थान होते हैं। उनमें पच्चीस प्रकृतियों के उदय में अठत्तर का सत्तास्थान वैक्रिय शरीरी के सिवाय अन्य वायुकाय तेजस्काय जीवों के होता है, उनके अतिरिक्त पृथ्वीकायादि को नहीं होता है। क्योंकि तेज और वायुकाय जीवों के अलावा अन्य समस्त पर्याप्त जीव मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी को अवश्य बांधते हैं। जिससे अठत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान अन्यत्र संभावित नहीं है।

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में भी पांच सत्तास्थान होते हैं। यहां भी अठत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान अवैक्रिय वायु और तेजस्काय जीवों के होता है (पृथ्वी, अप् और वनस्पति में नहीं होता है।) अथवा तेज और वायु में से मनुष्यद्विक की उद्वलना कर पर्याप्त-अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में आये हुए को होता है। क्योंकि वे सभी जब तक मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी को नहीं बांधते तब तक उनको अठत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, उसके बाद नहीं होता।

सत्ताईस प्रकृति रूप उदयस्थान में अठत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि सत्ताईस प्रकृतियों का उदय तेज और वायुकाय के जीवों को छोड़कर पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय और वैक्रिय तिर्यंच, मनुष्यों को होता है। उनको अवश्य मनुष्यद्विक का बंध सम्भव होने से अठत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान घटित नहीं होता है।

तेज और वायुकाय के जीवों में सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि छब्बीस प्रकृतियों के उदयवाले एकेन्द्रिय के आतप या उद्योत के उदय में सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु तेज और वायुकायिक जीवों के उद्योत या आतप का उदय होता ही नहीं है। जिससे तेज और वायुकाय के जीवों में सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान संभव न होने से उसका निषेध किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय रूप चार उदयस्थानों में भी अठत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष चार-चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि अट्ठाईस आदि प्रकृतियों का उदय पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले विकलेन्द्रिय तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होता है। मात्र इकत्तीस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय को होता है। क्योंकि इकत्तीस प्रकृतियों का उदय उद्योतनाम युक्त है और उद्योत का उदय तिर्यंचों में होता है। वे अट्ठाईस आदि सभी प्रकृतियों के उदय वाले जीव अवश्य मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता वाले होते हैं।

इस प्रकार तेईस प्रकृतियों के बंधक जीवों के नौ उदयस्थानाश्रयी चालीस सत्तास्थान होते हैं।

जिस प्रकार से तेईस प्रकृतियों के बंधक के उदयस्थानों और सत्तास्थानों का कथन किया है, उसी प्रकार पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के बंधकों के लिये भी समझ लेना चाहिये।

ये दोनों—पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर बंधते हैं और उनके बंधक तिर्यंच, मनुष्य और ईशान स्वर्ग तक देव हैं तथा पच्चीस प्रकृतियों का बंधस्थान अपर्याप्त विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य योग्य बंध करने पर भी बंधता है। उसके बंधक मनुष्य और तिर्यंच हैं। उपर्युक्त जीव अपने-अपने सभी उदयों में पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। उस समय तेईस प्रकृतियों के बंध में जो और जिस प्रकार से पाँच सत्तास्थानों का कथन किया है, वही पांच सत्तास्थान होते हैं। मात्र पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों का बंध करते देवों के अपने इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इन छहों उदयस्थानों में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। देव, अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय या अपर्याप्त मनुष्यगति योग्य पच्चीस प्रकृतियों का बंध करते ही नहीं हैं। क्योंकि वे अपर्याप्त विकलेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। सामान्य से पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के बंध में नौ उदयस्थानाश्रयी चालीस-चालीस सत्तास्थान होते हैं।

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में आठ उदयस्थान इस प्रकार हैं—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक। जिनका विवरण इस प्रकार है—

अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध देवगति और नरकगति योग्य इस प्रकार दो तरह का है और उसके बंधक सामान्य से मनुष्य और तिर्यंच हैं। उनमें देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का जब बंध होता है तब भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा उपर्युक्त आठ उदयस्थान संभव है और नरकगति योग्य जब अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध हो तब तीस और इकत्तीस प्रकृतिक यही दो उदयस्थान होते हैं।

नरकगतियोग्य दो उदयस्थान कहने का कारण यह है कि नरकगतियोग्य बंध पहले गुणस्थान में ही होता है और वह भी संपूर्ण पर्याप्त अवस्था में होता है और पर्याप्त अवस्था में उक्त दो ही उदयस्थान होते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव अपर्याप्त अवस्था में नरक या देवगति योग्य बंध करते नहीं हैं। जिससे मिथ्यादृष्टि के देवगतियोग्य बंध करने पर भी उक्त दो ही उदयस्थान होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में देवगति का बंध सम्यग्दृष्टि को होता है। जिससे अपर्याप्तावस्था में संभव इक्कीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान चौथे गुणस्थान में होते हैं। पांचवें आदि गुणस्थान तो पर्याप्त अवस्था में ही होते हैं जिससे वहाँ पर्याप्तावस्था में संभव उदयस्थान होते हैं। देव-नरकगति के बंधक पर्याप्त संमूर्च्छिम तिर्यंच, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य हैं।

देवगति के योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य को होता है। यहाँ युगलिक तिर्यंचों का ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि संख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यंच के क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है एवं क्षायिक सम्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्त्व लेकर उनमें कोई उत्पन्न भी नहीं होता है। पूर्व में असंख्यात वर्ष प्रमाण तिर्यंच युगलिक की आयु बांधकर कोई मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करे, आयु पूर्ण कर युगलिक में जाये, वहाँ जाने पर विग्रहगति में उनको इक्कीस प्रकृतियों का उदय होने पर भी देवगति-योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करता है। कोई भी देव या नारक उपशम सम्यक्त्व लेकर मनुष्य या तिर्यंच में उत्पन्न होता नहीं है। इसीलिये दो सम्यक्त्व ग्रहण किये हैं।

पच्चीस प्रकृतियों का उदय आहारक संयत और सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वैक्रिय तिर्यंचों या मनुष्यों के होता है। छब्बीस प्रकृतियों का उदय क्षायिक सम्यक्त्वी अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी शरीरस्थ पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के होता है। सत्ताईस प्रकृतियों का उदय आहारक संयत को एवं सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि वैक्रिय तिर्यंच मनुष्यों के होता है। अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक उदय-स्थान अनुक्रम से शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त और उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों तथा आहारक संयत को और सम्यक्त्वी अथवा मिथ्यात्वी वैक्रिय तिर्यंच अथवा मनुष्यों के होता है।

तीस प्रकृतियों का उदय सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अथवा मिश्र-दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों तथा उद्योत के उदय वाले आहारक संयत और वैक्रिय संयत को होता है जो देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं। इकत्तीस प्रकृतियों का उदय सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि उद्योत के उदय वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच को होता है। उपर्युक्त उदय में रहते ऊपर कहे गये वे जीव देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि सातवें गुणस्थान में वर्तमान आहारकशरीरी देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का ही बंध करते हैं। क्योंकि जिनको आहारकद्विक की सत्ता है, वे उसकी बंधयोग्य स्थिति में आहारकद्विक का अवश्य बंध करते हैं। प्रमत्त गुणस्थान में आहा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रकद्विक का बंध नहीं होने से वहाँ आहारकशरीरी देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं। इसी तरह वैक्रियशरीरी यति छठे गुणस्थान में अट्ठाईस प्रकृतियों को ही बांधता है। सातवें गुणस्थान में यदि आहारक की सत्ता है तो देवगति-योग्य आहारकद्विक सहित तीस प्रकृतियों को ही बांधता है अन्यथा अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधता है।

नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों को तीस प्रकृतियों का उदय होता है और इकत्तीस प्रकृतियों का उदय मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होता है, जो अशुभ परिणामों के योग से अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं। नरकगतियोग्य बंध करने वाले पर्याप्त संमूर्च्छिम तिर्यंच, मिथ्यादृष्टि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंच और मनुष्य होते हैं।

अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को सामान्य से बानवै, नवासी, अठासी और छियासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। उनमें इक्कीस के उदय में वर्तमान देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। पच्चीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक आहारकसंयत, वैक्रिय तिर्यंच और वैक्रिय मनुष्यों को बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान सामान्य से होते हैं।

उनमें आहारकसंयत तो अवश्य आहारकद्विक की सत्तावाला होता है, जिससे उसे बानवै प्रकृति रूप ही सत्तास्थान होता है। उसके सिवाय अन्य तिर्यंच अथवा मनुष्य आहारक की सत्ता वाले भी होते हैं और उसकी सत्ता बिना के भी होते हैं। इसलिये उनको दोनों सत्तास्थान होते हैं। यदि आहारकचतुष्क की सत्ता हो तो बानवै प्रकृतिक अन्यथा अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियों का उदय होने पर भी बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान यथायोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रीति से होते हैं। तीस प्रकृतियों के उदय में देवगति या नरकगति-योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को सामान्य से बानवै और अठासी प्रकृतियों की सत्ता जैसे पूर्व में कही है, उस प्रकार यहां भी समझना चाहिये।

नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान इस प्रकार होता है—

कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य नारक की आयु बांध क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपार्जित करे और इसके बाद तथाप्रकार के विशिष्ट परिणाम के योग में तीर्थंकर नाम का निकाचित बंध करे तो वह मनुष्य नरक में जाने के सन्मुख होते अपनी अन्तर्मुहूर्त आयु शेष हो तब सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में जाये, वहां उस समय उस जीव को तीर्थंकर नाम का बंध नहीं होने से नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधने पर नवासी प्रकृतियों सत्ता होती है।

छियासी प्रकृतियों की सत्ता इस प्रकार है—

तीर्थंकरनाम, आहारकचतुष्क, देवद्विक, नरकद्विक और वैक्रिय-चतुष्क की सत्ता जब न हो तब अस्सी प्रकृतियों की सत्ता होती है। अस्सी प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई (एकेन्द्रिय) जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य में उत्पन्न हो सभी स्वयोग्य पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, पर्याप्तावस्था में यदि विशुद्ध परिणाम वाला हो तो देवगतिप्रायोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधे और उनके बंध से देवद्विक एवं वैक्रिय-चतुष्क की सत्ता प्राप्त हो जिससे उसे छियासी प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। अथवा यदि सर्व संक्लिष्ट परिणाम वाला हो तो नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करे और उनके बंध से नरकद्विक एवं वैक्रियचतुष्क की सत्ता प्राप्त होती है। इस प्रकार भी छियासी प्रकृतियों का सत्तास्थान प्राप्त होता है।

इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में बानवै, अठासी और छियासी इस इस प्रकार तीन सत्तास्थान होते हैं। इसका उदय होने पर भी नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है। क्योंकि इकत्तीस प्रकृतियों का उदय उद्योतनाम के उदय वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में होता है। तिर्यंचों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरनाम की (निकाचित) सत्ता होती ही नहीं है। क्योंकि (निकाचित) तीर्थंकर नाम की सत्ता वाला कोई भी जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न नहीं होता है और छियासी प्रकृतिक सत्तास्थान का विचार ऊपर कहे अनुसार यहां भी समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक के आठ उदयस्थानाश्रयी उन्नीस सत्तास्थान होते हैं।

उनतीस और तीस प्रकृतियों के बंध में नौ-नौ उदयस्थान और सात-सात सत्तास्थान होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान तिर्यंचगति और मनुष्य गति योग्य बंध करने पर बंधता है। उसके बंधक चारों गति के जीव हैं। तीर्थंकरनामकर्म के साथ देवगतियोग्य बंध करने पर भी उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है। उसके बंधक अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक में वर्तमान हैं।

तीस प्रकृतिक बंधस्थान उद्योतनाम सहित तिर्यंचयोग्य बंध करने पर बंधता है, उसके बंधक चारों गति के जीव हैं। तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतियोग्य बंध करने पर भी तीस प्रकृतिक बंधस्थान बंधता है। उसके बंधक चतुर्थ गुणस्थान में वर्तमान देव और नारक हैं, एवं आहारकद्विक के साथ देवगतियोग्य बंध करने पर भी तीस प्रकृतियों का बंध होता है। उसके बंधक सातवें और आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक में वर्तमान यति हैं।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के बंध के नौ उदयस्थान इस प्रकार हैं—इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक। जिनका विवरण इस प्रकार है—

इक्कीस प्रकृतियों का उदय तिर्यंच और मनुष्य गति योग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारकों को विग्रहगति में होता है। चौबीस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय को होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चीस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रिय, देव, नारक और वैक्रिय शरीर की जिन्होंने विकुर्वणा की है ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचों को होता है। छब्बीस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रिय, पर्याप्त-अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होता है। सत्ताईस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रिय, देव, नारक और मिथ्यादृष्टि वैक्रिय तिर्यंच-मनुष्य को होता है। अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, नारक और मिथ्यादृष्टि वैक्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों को होता है। तीस प्रकृतियों का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और उद्योत के वेदक देवों के होता है। इकत्तीस प्रकृतियों का उदय उद्योत के उदय वाले पर्याप्त विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है।

तीर्थंकर नाम के साथ देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्य को यह सात उदयस्थान होते हैं—इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक।

सम्यग्दृष्टि मनुष्य अपर्याप्त या पर्याप्त अवस्था में प्रति समय देवगति योग्य ही बंध करता है और जिसने तीर्थंकरनाम को निकाचित किया है वह तीर्थंकरनाम की बंधयोग्य भूमिका में—चौथे गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक प्रति समय उसका बंध करता ही रहता है, इसलिये देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध अपर्याप्त या पर्याप्त दोनों अवस्थाओं में होता है। जिससे इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध कर सकता है और पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान वैक्रिय अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्य भी ऊपर कहे अनुसार उनतीस प्रकृतियों को बांध सकता है।

देशविरतगुणस्थान पर्याप्तावस्था में ही होता है। जिससे तीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान मनुष्य देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का बंध कर सकता है और पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों में वर्तमान वैक्रिय देशविरत मनुष्य उनतीस का बंध करता है। वैक्रिय मनुष्य को यहाँ तीस प्रकृतियों का उदय नहीं होता है। क्योंकि तीस प्रकृतियों का उदय उद्योत के साथ होता है और मनुष्य में उद्योत का उदय आहारकशरीरी और वैक्रियशरीरी यति को ही होता है किन्तु संयतासंयत (देशविरत) को नहीं होता है।

प्रमत्तसंयत को सामान्य से तीस प्रकृतियों का उदय होता है और वैक्रिय तथा आहारक संयत को पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृति रूप पांच उदयस्थान होते हैं। प्रत्येक उदय-स्थान में वर्तमान देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों को बांध सकता है। तीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान सामान्य अप्रमत्तसंयत उन-तीस, तीस प्रकृतिक उदय में रहते वैक्रियशरीरी अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण में वर्तमान जीव भी पहले कहे गये गये अनुसार उनतीस प्रकृतियों का बंध करता है।

आहारकशरीरी अप्रमत्तसंयत उनतीस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। क्योंकि आहारकशरीरनाम का बंध करने के बाद उसकी बंधयोग्य भूमिका में आहारकशरीरनाम का बंध करता ही रहता है। जिससे आहारकशरीरी अप्रमत्तसंयत देवगति योग्य आहारकद्विक के साथ तीस अथवा आहारकद्विक और तीर्थंकरनाम के साथ इकत्तीस प्रकृतियों का बंध करता है।

सामान्य से उनतीस प्रकृतियों के बंध में सात सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, छियासी, अस्सी और अठत्तर प्रकृतिक। इनमें विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विक-लेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय को इक्कीस प्रकृतियों के उदय में बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी और अठत्तर प्रकृतिक ये पांच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृति रूप तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थानों में भी पांच सत्तास्थान होते हैं। सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इन पांच उदयस्थानों में अठत्तर के अलावा चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इनका विचार पूर्व में किये तेईस प्रकृतिक बंधस्थान के अनुरूप यहाँ भी कर लेना चाहिये।

मनुष्यगति योग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को तथा तिर्यंचगति और मनुष्य-गति योग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर मनुष्यों को यथायोग्य रीति से अपने उदय में रहते अठत्तर के सिवाय बानवै, अठासी, छियासी और अस्सी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगति योग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करने पर अपने-अपने उदय में वर्तमान देवों और नारकों को बानवै एवं अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। मात्र तीर्थंकरनाम की सत्तावाले मिथ्यादृष्टि नारक को मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर पांचों उदयस्थानों में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योंकि जो तीर्थंकरनाम की सत्तावाला आहारकचतुष्क की सत्ता बिना का हो उसे मिथ्यात्वगुणस्थान में एवं नरक में जाना सम्भव है। इसलिये तेरानवै में से आहारकचतुष्क की सत्ता को कम करने पर नवासी प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं।

तीर्थंकरनाम के साथ उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर इक्कीस प्रकृतिक उदय में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्य को तेरानवै और नवासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी तरह पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतियों के उदय में भी यही दो-दो सत्तास्थान होते हैं। मात्र अपने-अपने उदय में वर्तमान आहारकसंयत को तेरानवै प्रकृति रूप एक ही सत्तास्थान होता है।

इसी प्रकार सामान्य से उनतीस प्रकृतियों के बंध और इक्कीस प्रकृतियों के उदय में सात सत्तास्थान, चौबीस प्रकृतियों के उदय में पांच, पच्चीस प्रकृतियों के उदय में सात, छब्बीस प्रकृतियों के उदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सात, सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में छह, अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में छह, उनतीस प्रकृतियों के उदय में छह, तीस प्रकृतियों के उदय में छह और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में चार सत्तास्थान होते हैं और कुल मिलाकर चउवन (५४) सत्तास्थान होते हैं।

जैसे तिर्यंचगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक उदय और सत्तास्थानों का विचार किया है, उसी प्रकार तिर्यंचगतियोग्य उद्योत नामकर्म के साथ तीस प्रकृतियों को बांधने पर एकेन्द्रियादि को भी उदय और सत्तास्थान कहना चाहिये तथा मनुष्यगतियोग्य तीर्थंकर-नाम के साथ तीस प्रकृतियों को बांधने पर अविरतसम्यग्दृष्टि देवों को इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये छह उदयस्थान और नारकों के तीस प्रकृतिक के सिवाय पांच उदय-स्थान होते हैं और सत्तास्थान सामान्यतः तेरानवै और नवासी प्रकृतिक ये दो होते हैं।

उनमें मनुष्यगतियोग्य तीर्थंकरनाम के साथ तीस प्रकृतियों को बांधने पर देवों को अपने सभी उदयस्थानों में तेरानवै और नवासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। तीर्थंकरनाम के साथ मनुष्यगति-योग्य तीस प्रकृतियों को बांधते नारक को अपने चारों उदयस्थानों में मात्र नवासी प्रकृति रूप एक ही सत्तास्थान होता है, तेरानवै प्रकृतिक नहीं होता है। क्योंकि तीर्थंकरनाम और आहारकचतुष्क दोनों की युगपत् सत्तावाला जीव नरक में उत्पन्न नहीं होता है तथा उद्योतनाम का उदय नहीं होने से नारकों के तीस प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है। इसीलिये चार उदयस्थान बताये हैं।

आहारकद्विक और देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करते अप्रमत्तसंयत को तीस प्रकृतिक उदयस्थान और बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। अपूर्वकरण में भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इस तरह सामान्य से तीस प्रकृतियों के बंधक को इक्कीस प्रकृतियों के उदय में सात, चौबीस प्रकृतियों के उदय में पांच, पच्चीस प्रकृतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उदय में सात, छब्बीस प्रकृतियों के उदय में पांच, सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में छह, अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में छह, उनतीस के उदय में छह, तीस प्रकृतियों के उदय में छह और इकतीस के उदय में चार सत्तास्थान होते हैं और सब मिलाकर बावन सत्तास्थान होते हैं।

इकत्तीस प्रकृतियों का बंध करने पर तीस प्रकृति रूप एक ही उदयस्थान होता है। क्योंकि तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक के साथ देवगतियोग्य बांधते अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण को इकत्तीस प्रकृतियों का बंध होता है। वे वैक्रिय या आहारक शरीर की विकुर्वणा नहीं करते हैं। इसलिये पच्चीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान सम्भव नहीं हैं। यहाँ सत्तास्थान मात्र तेरानवै प्रकृतिक ही होता है। क्योंकि तीर्थंकरनाम और आहारकचतुष्क इन दोनों की सत्ता यहाँ पर है।

आठवें गुणस्थान के छठे भाग के बाद देवगतियोग्य कर्म के बंध का विच्छेद होने से मात्र एक यशःकीर्तिनाम का जब बंध होता है तब उदयस्थान मात्र तीस प्रकृतिक ही होता है। क्योंकि अपूर्वकरणादि गुणस्थान वाले एक यशःकीर्ति का बंध करते हैं और वे अति विशुद्ध परिणाम वाले होने से वैक्रिय या आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं। इसलिये पच्चीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान यहाँ नहीं होते हैं।

सत्तास्थान आठ होते हैं। जो इस प्रकृतिसंख्या वाले हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृतिक। इनमें से आदि के चार उपशमश्रेणि में होते हैं और क्षपकश्रेणि में अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान में जब तक नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ, वहाँ तक होते हैं और नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का क्षय होने के बाद अनेक जीवों की अपेक्षा अस्सी आदि प्रकृतिक अन्त के चार सत्तास्थान होते हैं और वे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होते हैं। क्योंकि यशःकीर्तिनाम का वहाँ तक ही बंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधविच्छेद होने के अनन्तर दस उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस, नौ और आठ प्रकृतिक। इनमें से उपशान्तमोहगुण-स्थान में तीस प्रकृति रूप एक ही उदयस्थान होता है और प्रारम्भ के तेरानवै प्रकृतिक आदि चार सत्तास्थान होते हैं। क्षीणमोह गुण-स्थान में भी तीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान होता है और अन्तिम चार सत्तास्थान होते हैं।

सयोगिकेवली गुणस्थान में नौ और आठ प्रकृतिक के सिवाय उपर्युक्त बीस आदि प्रकृतिक सभी उदयस्थान होते हैं। उनमें से बीस और इक्कीस प्रकृतियों का उदय अनुक्रम से केवलीसमुद्घात में कार्मणयोग में वर्तमान सामान्यकेवली और तीर्थंकरकेवली को होता है। औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान उनको ही अनुक्रम से छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक रूप उदय होता है। स्वभावस्थ सामान्यकेवली को तीस प्रकृतिक और स्वर का रोध करने पर उन्हीं को उनतीस प्रकृतिक और उच्छ्वास का रोध करें तब अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

स्वभावस्थ तीर्थंकर भगवान को इकत्तीस प्रकृतिक, स्वर का रोध करने पर तीस प्रकृतिक और उच्छ्वास का रोध करें तब उनतीस प्रकृतिक उदय होता है। इस प्रकार तीस और उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से प्राप्त होते हैं।

अयोगिकेवली तीर्थंकर को नौ प्रकृतियों का और सामान्य केवली को आठ प्रकृतियों का उदय होता है और सत्तास्थान दस होते हैं, जो इस प्रकार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर, पचहत्तर, नौ और आठ प्रकृतिक। जिनका विवरण इस प्रकार है :—

बीस प्रकृतिक उदयस्थान में उन्यासी और पचहत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार छब्बीस और अट्ठाईस प्रकृतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उदय में भी उन्यासी और पचहत्तार प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इक्कीस प्रकृतियों के उदय में अस्सी और छियत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी तरह सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में भी दो सत्तास्थान होते हैं। उनतीस प्रकृतियों के उदय में अस्सी, छियत्तर, उन्यासी, पचहत्तार प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि उनतीस प्रकृतियों का उदय तीर्थंकर और अतीर्थंकर केवली दोनों को होता है। उनमें से आदि के दो सत्तास्थान तीर्थंकर केवली को होते हैं।

यहां यह जानना चाहिये कि सयोगिकेवली गुणस्थान के तीर्थंकर केवली को अपने समस्त उदयस्थानों में अस्सी और छियत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं और सामान्य केवली को अपने सभी उदयस्थानों में उन्यासी और पचहत्तर प्रकृति रूप दो सत्तास्थान होते हैं। सामान्य केवली को बीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान और तीर्थंकर केवली को इक्कीस, सत्ताईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान होते हैं एवं अयोगि के उदयस्थान और सत्तास्थान स्पष्ट हैं।

तीस प्रकृतिक उदय में आठ सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृतिक। इनमें से आदि के चार उपशान्तमोहगुणस्थान में होते हैं। अस्सी प्रकृतिक क्षीणमोह अथवा सयोगिकेवली गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारकचतुष्क की सत्तावाले को होते हैं। उन्यासी प्रकृतिक सत्तास्थान क्षीणमोह या सयोगिकेवलीगुणस्थान में तीर्थंकरनाम की सत्ता विहीन को होता है। छियत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान क्षीणमोह अथवा सयोगिकेवलीगुणस्थान में आहारकचतुष्क की सत्ता विहीन को होता है। पचहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान क्षीणमोहगुणस्थान अथवा सयोगिकेवलीगुणस्थान में तीर्थंकर और आहारकचतुष्क दोनों की सत्ता रहित को होता है।

इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में तीर्थंकर केवली को अस्सी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छियत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं और सामान्य केवली को इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है।

अयोगिकेवली गुणस्थान में नौ प्रकृतियों के उदय में तीर्थंकर भगवान को अयोगिगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त अस्सी और छियत्तर प्रकृतिक तथा चरम समय में नौ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। आठ प्रकृतियों के उदय वाले अयोगि सामान्य केवली को अयोगि गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त उन्यासी और पचहत्तर प्रकृतिक एवं चरम समय में आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

इस प्रकार अबंधक के दस उदयस्थान संबन्धी तीस सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से नामकर्म का विवेचन जानना चाहिये एवं सभी कर्मों के बंध, उदय और सत्तास्थानों का स्वतन्त्र रूप से और संवेध द्वारा गुणस्थानों में विचार किया।[1] अब सभी कर्मों के बंध, उदय और सत्ता को संवेध द्वारा गुणस्थानों में विचार करने की दृष्टि से पहले ज्ञानावरण और उसके समान संख्या वाले अंतराय कर्म का विचार करते हैं।

ज्ञानावरण, अंतराय कर्म का गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता-स्थानों का संवेध

बंधोदयसंतेसुं पण पण पढमंतिमाण जा सुहुमो।
संतोइण्णाइं पुण उवसमखीणे परे नत्थि ॥१०१॥

शब्दार्थ—**बंधोदयसंतेसुं**—बंध, उदय और सत्ता में, **पण-पण**—पाँच-पाँच, **पढमंतिमाण**—पहले और अंतिम कर्म को, **जा**—तक, पर्यन्त, **सुहुमो**—सूक्ष्म-संपरायगुणस्थान, **संतोइण्णाइं**—सत्ता और उदय, **पुण**—पुनः, **उवसमखीणे**—उपशांतमोह और क्षीणमोह में, **परे**—आगे, **नत्थि**—नहीं है।

१ एतद् विषयक प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक पहले और अंतिम कर्म की बंध, उदय और सत्ता में पाँच-पाँच प्रकृतियां होती हैं। उपशांत-मोह और क्षीणमोह में सत्ता और उदय में पाँच-पांच प्रकृति होती हैं। आगे गुणस्थानों में नहीं होती हैं।

विशेषार्थ—गाथा में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की प्रकृतियों का गुणस्थानापेक्षा बंध, उदय और सत्ता का संवेध बतलाया है। जो इस प्रकार हैं—

पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक पहले ज्ञानावरण और अंतिम अंतराय कर्म की बंध, उदय एवं सत्ता में सभी पांच-पांच प्रकृति होती हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि से सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान तक दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण एवं अन्तराय कर्म की पांचों प्रकृतियों का बंध, पांचों प्रकृतियों का उदय और पांचों प्रकृतियों की सत्ता होती है। एक भी कम नहीं होती है। क्योंकि ये प्रकृतियां ध्रुवबंधि, ध्रुवोदया और ध्रुवसत्ता वाली हैं।

बंधविच्छेद होने के बाद उपशांतमोह और क्षीणमोह इन ग्याहरवें और बारहवें गुणस्थान में पांचों का उदय और पांचों की सत्ता होती है और क्षीणमोह गुणस्थान के आगे सयोगिकेवली, अयोगिकेवली गुणस्थानों में इन दोनों कर्मों की एक भी प्रकृति उदय या सत्ता में नहीं होती है। क्योंकि क्षीणमोह गुणस्थान के चरम समय में इन प्रकृतियों का उदय और सत्ता विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार से ज्ञानावरण और अंतराय कर्म प्रकृतियों का गुण-स्थानों में बंध, उदय और सत्तास्थानों का संवेध जाना चाहिये। अब दर्शनावरण कर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का संवेध द्वारा विचार करते हैं।

दर्शनावरणकर्म के त्रिक का संवेध

मिच्छासासायणेसु नवबंधुवलक्खिया उ दो भंगा।
मीसाओ य नियट्टी जा छब्बंधेण दो दो उ ॥१०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउबंधे नवसंते दोण्णि अपुव्वाउ सुहुमरागो जा।
अब्बंधे णवसंते उवसंते हुंति दो भंगा ॥१०३॥

चउबंधे छस्संते बायरसुहुमाणमेगुक्खवयाणं।
छसु चउसु व संतेसु दोण्णि अबंधंमि खीणस्स ॥१०४॥

शब्दार्थ—**मिच्छासासायणेसुं**—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान में, **नवबंधुवलक्खिया**—नौ के बंध से उपलक्षित—नौ के बंधकाल, **उ**—और, **दो**—दो, **भंगा**—भंग, **मीसाओ**—मिश्र गुणस्थान में, **य**—और, **नियट्टी**—अपूर्वकरण, **जा**—तक, **छब्बंधेण**—छह के बंध वाले, **दो-दो**—दो-दो, **उ**—और।

चउबंधे—चार के बंध में, **नवसंते**—नौ की सत्ता में, **दोण्णि**—दो भंग, **अपुव्वाउ**—अपूर्वकरण गुणस्थान से, **सुहुमरागो**—सूक्ष्मसंपराय, **जा**—तक, **अब्बंधे**—बंध का अभाव होने पर, **नवसंते**—नौ की सत्ता के, **उवसंते**—उपशान्तमोहगुणस्थान में, **हुंति**—होते हैं, **दो भंगा**—दो भंग।

चउबंधे—चार के बंध में, **छस्संते**—छह की सत्ता में, **बायरसुहुमाणं**—अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में, **एगुक्खवयाणं**—एक क्षपकश्रेणि में, **छसु**—छह, **चउसु**—चार में, **व**—अथवा, **संतेसु**—सत्ता रहने पर, **दोण्णि**—दो, **अबंधंमि**—बंध नहीं होने पर, **खीणस्स**—क्षीणमोही को।

गाथार्थ—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान में नौ के बंध वाले दो भंग होते हैं और मिश्र से अपूर्वकरण पर्यन्त छह के बंध वाले दो-दो भंग होते हैं।

अपूर्वकरण से सूक्ष्मसंपराय पर्यन्त चार का बंध और नौ की सत्ता होने पर दो-दो भंग होते हैं। बंध का अभाव होने पर उपशान्तमोहगुणस्थान में नौ की सत्ता होने पर दो भंग होते हैं।

क्षपक बादर और सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में चार का बंध, चार का उदय और छह की सत्ता का एक भंग होता है। बंधाभाव में छह अथवा चार की सत्ता होने पर क्षीणमोही के दो भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में दर्शनावरणकर्म के संवेध का विचार किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि और सासादन इन पहले और दूसरे गुणस्थान में दर्शनावरणकर्म के नौ के बंध से उपलक्षित अर्थात् नौ के बंध वाले दो-दो भंग होते हैं—**'नवबंधुवलक्खिया उ दो भंगा।'** वे इस प्रकार जानना चाहिये—(१) नौ प्रकृतियों का बंध, चार का उदय और नौ प्रकृतियों की सत्ता। यह भंग जब निद्रा का उदय न हो तब होता है और (२) नौ का बंध, पाँच का उदय, नौ की सत्ता, यह भंग निद्रा का उदय हो तब होता है।

मिश्रदृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग पर्यन्त छह के बंध वाले दो-दो भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं कि (१) छह का बंध, चार का उदय और नौ की सत्ता, (२) छह का बंध, पांच का उदय और नौ की सत्ता। इन दोनों भंगों में से पहला निद्रा के अनुदयकाल में और दूसरा निद्रा के उदयकाल में होता है। इन गुणस्थानों में स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध नहीं होने से शेष छह प्रकृतियों का बंध बताया है। तथा—

अपूर्वकरण के संख्यातवें भाग में निद्रा और प्रचला का बंधविच्छेद होने के बाद संख्यातवें भाग से लेकर उपशमश्रेणि में सूक्ष्मसंपराय-गुणस्थान पर्यन्त चार का बंध और नौ प्रकृतियों की सत्ता रहते दो भंग होते हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) चार प्रकृतियों का बंध, चार का उदय और नौ की सत्ता, (२) चार का बंध, पांच का उदय और नौ की सत्ता। ये दोनों भंग अनुक्रम से निद्रा के अनुदय और उदयकाल में होते हैं।

बंधविच्छेद होने के बाद उपशान्तमोहगुणस्थान में नौ प्रकृतियों की सत्ता होते दो भंग होते हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) चार का उदय, नौ की सत्ता, (२) पांच का उदय, नौ की सत्ता। उपशमश्रेणि में निद्रा का उदय हो सकता है, जिससे निद्रा के उदय वाला भंग भी संभव है। यहाँ अति मंद निद्रा का उदय होता है। तथा—

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

क्षपकश्रेणि में वर्तमान अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानों में चार प्रकृतियों का बंध, छह प्रकृतियों की सत्ता का एक भंग होता है। वह इस प्रकार—चार प्रकृतियों का बंध, चार प्रकृतियों का उदय और छह प्रकृतियों की सत्ता। क्षपक आत्मा अत्यन्त विशुद्धि वाली होने से उसे निद्रा का उदय नहीं होता है, जिससे पांच का उदय सम्भव नहीं होने से एक ही भंग होता है।

बंधविच्छेद होने के बाद क्षीणमोहगुणस्थान में छह और चार की सत्ता रहते दो भंग इस प्रकार होते हैं—(१) चार का उदय, छह की सत्ता, यह विकल्प क्षीणमोहगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त होता है और चरम समय में, (२) चार का उदय और चार की सत्ता यह भंग होता है।

इस प्रकार दर्शनावरणकर्म का गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता का संवेध जानना चाहिये। अब वेदनीयकर्म के संवेध का विचार करते हैं।

गुणस्थानों में वेदनीयकर्म का संवेध

चत्तारि जा पमत्तो दोण्णि उ जा जोगि सायबंधेणं।
सेलेसि अबंधे चउ इगि सते चरिमसमए दो ॥१०५॥

शब्दार्थ—**चत्तारि**—चार, **जा**—तक, **पमत्तो**—प्रमत्तसंयतगुणस्थान, **दोण्णि**—दो, **उ**—और, **जा**—तक, **जोगि**—सयोगिकेवली, **सायबंधेणं**—साता के बंध से, **सेलेसि**—अयोगिकेवलीगुणस्थान में, **अबंधे**—बंधविच्छेद के बाद, **चउ**—चार, **इगि**—एक, **संते**—सत्ता के, **चरिमसमए**—चरमसमय में, **दो**—दो।

गाथार्थ—प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त वेदनीयकर्म के चार भंग होते हैं। साता के बंध से होने वाले दो भंग सयोगिकेवली पर्यन्त होते हैं। बंधविच्छेद के बाद अयोगिकेवलीगुणस्थान में चार और चरम समय में एक की सत्ता हो तब दो भंग होते हैं।

विशेषार्थ—वेदनीयकर्म के दो भेद हैं—साता और असाता। इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों की अपेक्षा गुणस्थानों से संवेध भंग इस प्रकार हैं—

'चत्तारि जा पमत्तो' अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक कालभेद से अनेक जीवों की अपेक्षा वेदनीयकर्म के चार भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—(१) असाता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता की सत्ता, (२) असाता का बंध, साता का उदय, साता-असाता की सत्ता, (३) साता का बंध, साता का उदय, साता-असाता दोनों की सत्ता, (४) साता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता दोनों की सत्ता। किसी को किसी प्रकृति का बंध होता है और किसी को किसी का होता है। इसी प्रकार किसी को किसी प्रकृति का उदय होता है और किसी को किसी का होता है। जिससे भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा कालभेद से उपर्युक्त भंग बनते हैं।

अप्रमत्तासंयतगुणस्थाय से लेकर सयोगिकेवलीगुणस्थान पर्यन्त साता के बंध वाले दो भंग होते हैं। क्योंकि असातावेदनीय का बंध तो छठे गुणस्थान तक ही होता है, जिससे सातवें गुणस्थान से असाता के बंध वाले भंग नहीं होते हैं। वे दो भंग इस प्रकार हैं—(१) साता का बंध, साता का उदय, साता-असाता की सत्ता। (२) साता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता की सत्ता।

बंधविच्छेद होने के बाद शैलेश-अयोगिकेवली गुणस्थान में चार विकल्प होते हैं। उनमें से दो इस प्रकार हैं—(१) साता का उदय, साता-असाता की सत्ता, (२) असाता का उदय, साता-असाता की सत्ता। ये दो विकल्प अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं।

अयोगिकेवलीगुणस्थान में उसके पहले समय से जिसका उदय हो, वह उसके अंतिम समय तक रहता है। बीच में उदय बदलता नहीं है। किसी आत्मा को यदि प्रथम समय से लेकर असाता का उदय हो तो चरम समय पर्यन्त असाता का ही उदय रहता है और किसी आत्मा को यदि साता का उदय हो तो चरम समय पर्यन्त साता का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय रहता है। अयोगिगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त सत्ता तो दोनों की होती है। चरम समय में जिसका उदय हो उसी की ही सत्ता रहती है। यदि साता का उदय हो तो चरम समय में साता की और यदि असाता का उदय हो तो चरम समय में असाता की सत्ता होती है।

जिसका उदय होता है उसकी सत्ता रहती है और जिसका उदय न हो उसकी सत्ता का द्विचरम समय में नाश होता है। जिससे अयोगिगुणस्थान के चरम समय में कोई भी एक साता या असाता की सत्ता रहते दो भंग होते हैं—(१) असाता का उदय, असाता की सत्ता, यह विकल्प जिसके प्रथम समय से असाता का उदय हो उसके सम्भव है और (२) साता का उदय और साता की सत्ता यह भंग प्रथम समय से ही जिसको साता का उदय हो उसके सम्भव है। चरम समय में जिसका उदय होता है, उसके सिवाय अन्य प्रकृति का द्विचरम समय में सत्ता में से विच्छेद होता है। जिससे चरम समय में एक ही सत्ता में रहता है। तेरहवें गुणस्थान तक साता-असाता परावर्तमान होने से उसका उदय बदलता रहता है। एक जीव को भी किसी एक का उदय कायम नहीं रहता है।

इस प्रकार से वेदनीयकर्म के संवेध भंगों को जानना चाहिये। अब गुणस्थानों में आयुकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध का निरूपण करते हैं।

गुणस्थानों में आयुकर्म के संवेध भंग

अट्ठछलाहियवीसा सोलह वीसं च बारस छ दोसु।
दो चउसु तीसु एक्कं मिच्छाइसु आउए भंगा ॥१०६॥
नरतिरिउदए नारयबंधविहूणा उ सासणि छव्वीसा।
बंधसमऊण सोलस मीसे चउ बंध जुय सम्मे ॥१०७॥
देसविरयम्मि बारस तिरिमणुभंगा छबंधपरिहीणा।
मणुभंगतिबंधूणा दुसु सेसा उभयसेढीसु ॥१०८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**अट्ठछलाहियवीसा**—आठ और छह अधिक बीस (अट्ठाईस, छब्बीस), **सोलस**—सोलह, **बीसं**—बीस, **च**—और, **बारस**—बारह, **छ**—छह, **दोसु**—दो में, **दो**—दो, **चउसु**—चार में, **तीसु**—तीन में, **एक्कं**—एक, **मिच्छाइसु**—मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में, **आउए**—आयुकर्म के, **भंगा**—भंग।

नरतिरिउदए—मनुष्य और तिर्यंच आयु के उदय में, **नारयबंधविहूणा**—नरकायु के बंध के बिना, **उ**—और, **सासणि**—सासादन में, **छब्बीसा**—छब्बीस, **बंधसमऊण**—बंध से संभव भंगों को छोड़कर, **सोलस**—सोलह, **मीसे**—मिश्र गुणस्थान में, **चउबंधजुय**—बंध से संभव चार भंगों सहित, **सम्मे**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में।

देसविरयम्मि—देशविरत में, **बारस**—बारह, **तिरिमणुभंगा**—तिर्यंच और मनुष्य से होने वाले भंग, **छबंधपरिहीणा**—बंध से होने वाले छह भंगों से रहित, **मणुभंगतिबंधूणा**—बंध से होने वाले तीन भंगों से न्यून्य मनुष्य के (छह) भंग, **दुसु**—दो में (प्रमत्त-अप्रमत्त संयत गुणस्थान में) **सेसा**—शेष गुणस्थान सम्बन्धी, **उभयसेढीसु**—दोनों श्रेणियों में कहे अनुसार।

गाथार्थ—अट्ठाईस, छब्बीस, सोलह, बीस, बारह, दो में छह और तीन में एक, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में आयुकर्म के भंग होते हैं।

मनुष्यायु और तिर्यंचायु के उदय में नरकायु के बंध बिना के छब्बीस भंग सासादन गुणस्थान में होते हैं। बंध के समान न्यून (मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होने से बंध से होने वाले भंगों से न्यून) सोलह भंग मिश्रदृष्टि को होते हैं और बंध से होने वाले भंगों को मिलाने पर बीस भंग अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होते हैं।

बंध से होने वाले छह भंगों से रहित तिर्यंच और मनुष्य के बारह भंग देशविरत गुणस्थान में होते हैं। बंध से होने वाले तीन भंग रहित मनुष्य के छह भंग दो (प्रमत्त और अप्रमत्त) गुणस्थान में होते हैं। शेष गुणस्थानों के भंग दोनों श्रेणियों में पूर्व में कहे अनुसार यथायोग्य रीति से समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में आयुकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध का गुणस्थानों में विचार किया है। जो इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त अनुक्रम से आयुकर्म के अट्ठाईस आदि भंग होते हैं। गुणस्थानों के यथाक्रम से भंगों की संख्या इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में आयुकर्म के सभी अट्ठाईस भंग होते हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों गति के जीव होते हैं और वे यथायोग्य रीति से चारों आयु का बंध करते हैं। जिससे आयु के बंध से पूर्व के, आयु के बंध काल में होने वाले और उसके बाद के (उपरत बंधकाल के) सभी भंग यहां संभव हैं। इसलिये नारकों संबन्धी पांच, तिर्यंचों सम्बन्धी नौ, मनुष्यों सम्बन्धी नौ और देवों सम्बन्धी पांच, इस प्रकार कुल मिलाकर अट्ठाईस भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होते हैं।

'सासणि छव्वीसा' अर्थात् सासादन गुणस्थान में छब्बीस भंग होते हैं। क्योंकि सासादन गुणस्थान में वर्तमान मनुष्य, तिर्यंच नरकायु का बंध नहीं करते हैं। जिससे मनुष्य तिर्यंचों के परभवायु के बंधकाल में होने वाला एक-एक भंग नहीं होता है। इसलिये छब्बीस भंग होते हैं।

मिश्रदृष्टिगुणस्थान में सोलह भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि मिश्रगुणस्थान में वर्तमान कोई भी जीव परभवायु का बंध नहीं करता है, इसलिये आयु के बंधकाल में होने वाले नारक के दो भंग, तिर्यंच और मनुष्य के चार-चार भंग तथा देवों के दो भंग कुल बारह भंगों को छोड़कर शेष सोलह भंग मिश्रदृष्टि गुणस्थान में होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बीस भंग होते हैं। इस गुणस्थान में वर्तमान देव, नारक मनुष्यायु का और तिर्यंच, मनुष्य देवायु का बंध करते हैं। जिससे देव और नारक को तिर्यंचायु के बंधकाल के दोनों के मिलकर होने वाले दो भंग और मनुष्य, तिर्यंच को नारक मनुष्य और तिर्यंच आयु के बंधकाल के दोनों के मिलकर होने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छह भंग, सब मिलकर आठ भंगों के सिवाय शेष बीस भंग चौथे गुणस्थान में होते हैं।

देशविरतगुणस्थान में बारह भंग होते हैं—'देसविरियम्मि बारस'। क्योंकि यह गुणस्थान देव व नारकों के नहीं किन्तु मात्र मनुष्य व तिर्यंचों के होता है और वे भी मात्र देवायु का ही बंध करते हैं। जिससे देव के पांच भंग, नारक के पांच भंग और मनुष्यों, तिर्यंचों के मनुष्यायु, तिर्यंचायु और नरकायु के बंधकाल के दोनों के मिलकर होने वाले छह भंग, कुल सोलह भंग अट्ठाईस में से कम करने पर बारह भंग ही होते हैं। और वे इस प्रकार हैं--तिर्यंच और मनुष्य को प्रत्येक को बंधकाल से पूर्व का एक-एक भंग, परभवायु बंध काल का भी एक-एक भंग और परभवायु का बंध करने के बाद के चार-चार भंग, इस प्रकार कुल बारह भंग इस गुणस्थान में होते हैं। कितने ही मनुष्य, तिर्यंच मनुष्यायु, तिर्यंचायु और नरकायु का बंध करके भी यह गुणस्थान और इसके बाद के प्रमत्त, अप्रमत्त संयत गुणस्थान भी प्राप्त करते हैं। जिससे परभवायु बंधकाल के बाद के चार भंग सातवें गुणस्थान तक संभव हैं।

प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थान में छह भंग होते हैं। इन गुणस्थानों को मात्र मनुष्य ही प्राप्त करता है। जिससे देवाश्रयी पांच, नरकाश्रयी पाँच तथा तिर्यंचाश्रयी नौ, कुल उन्नीस भंग तो संभव नहीं हैं किन्तु मनुष्य के नौ भंगों में से भी मनुष्यायु, तिर्यंचायु और नरकायु के बंधकाल के तीन भंग नहीं होते हैं। शेष छह भंग प्रमत्त-अप्रमत्त संयत गुणस्थानों में होते हैं।

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादर संपराय, सूक्ष्मसंपराय और उपशांतमोह गुणस्थान में उपशमश्रेणि आश्रयी ये दो भंग होते हैं—१ मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता। यह परभवायु का बंध करने के पूर्व उपशमश्रेणि पर आरूढ़ होने वाले के होता है। अथवा २ मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु की सत्ता। यह भंग देवायु का बंध करके उपशमश्रेणि पर आरूढ़ होने वाले को होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन गुणस्थानों में वर्तमान आत्मायें अत्यन्त विशुद्धि वाली होने से किसी भी आयु का बंध नहीं करती हैं और यदि किसी भी आयु का बंध कर उपशमश्रेणि पर आरूढ़ हों तो देवायु का बंध करके ही आरूढ़ होती हैं। अन्य किसी भी आयु का बंध करने के बाद आरूढ़ नहीं होती हैं। आयु का बंध किये बिना भी आरूढ़ हो सकती हैं।

इन चार गुणस्थानों में उपशम श्रेणि की अपेक्षा दो-दो भंग होते हैं तथा जिन्होंने परभवायु का बंध किया है, वे क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ नहीं हो सकते हैं। इसलिये क्षपकश्रेणि के अपूर्वकरणादि चार गुणस्थानों में मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता यह एक ही भंग होता है।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों में एक-एक भंग होता है जो इस प्रकार है—मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक आयुकर्म के भंग समझना चाहिये। अब गुणस्थानों में गोत्रकर्म के संवेध भंगों का निरूपण करते हैं।

गुणस्थानों में गोत्रकर्म के संवेध भंग

पंचादिमा उ मिच्छे आदिमहीणा उ सासणे चउरो।
उच्चबन्धेणं दोण्णि उ मीसाओ देसविरयं जा ॥१०६॥
उच्चेणं बन्धुदए जा सुहुमोऽबंधि छट्ठओ भंगो।
उवसंता जाऽजोगीदुचरिम चरिमंमि सत्तमओ ॥११०॥

शब्दार्थ—**पंचादिमा**—आदि के पांच भंग, **उ**—और, **मिच्छे**—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, **आदिमहीणा**—आदि (पहले) भंग के बिना, **उ**—और, **सासणे**—सासादन गुणस्थान में, **चउरो**—चार भंग, **उच्चबन्धेणं**—उच्चगोत्र के बंध वाले, **दोण्णि**—दो, **उ**—और, **मीसाओ**—मिश्र गुणस्थान से, **देसविरयं जा**—देशविरत गुणस्थान तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चेणं—उच्चगोत्र के, **बन्धुदए**—बंध और उदय वाला, **जा सुहुमो**—सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक, **छट्ठओ भंगो**—छठा भंग, **उवसंता**—उपशांतमोह गुणस्थान से, **जाऽजोगीदुचरिम**—अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक, **चरिमंमि**—चरम समय में, **सत्तमओ**—सातवां भंग।

गाथार्थ—(गोत्रकर्म के सात भंगों में से) आदि के पांच भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होते हैं और पहले भंग बिना शेष चार भंग सासादन गुणस्थान में होते हैं एवं उच्चगोत्र के बंध वाले दो भंग मिश्रदृष्टि से देशविरत गुणस्थान तक होते हैं।

उच्चगोत्र का बंध और उदय वाला एक भंग सूक्ष्मसंपराय-गुणस्थान पर्यन्त होता है। बंध के अभाव में उपशांतमोहगुण-स्थान से अयोगिकेवलीगुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त छठा भंग एवं चरम समय में सातवां भंग होता है।

विशेषार्थ—गोत्रकर्म के बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा सात भंग होते हैं। जिनको गुणस्थानों में घटित किया गया है—

'पंचादिमा उ मिच्छे' अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में गोत्रकर्म के सात भंगों में से आदि के पाँच भंग अनेक जीवों की अपेक्षा होते हैं। वे पाँच भंग इस प्रकार हैं—

१. नीचगोत्र का बंध, नीच का उदय, नीच की सत्ता। यह विकल्प उच्चगोत्र की उद्वलना करने के बाद तेज और वायुकाय के जीवों में होता है तथा तेज और वायुकाय में से निकलकर तिर्यंच के जिस भव में उत्पन्न हो वहाँ भी उच्चगोत्र न बाँधे, तब तक उक्त भंग संभव है। तेज और वायुकाय के जीव उच्चगोत्र की उद्वलना करते हैं, क्योंकि वे उसका बंध नहीं करते हैं।

२. नीच का बंध, नीच का उदय, उच्च-नीच की सत्ता, अथवा ३. नीचगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, नीच-उच्च की सत्ता, अथवा ४. उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, उच्च-नीच की सत्ता, अथवा ५. उच्चगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ता। यह क्रम संख्या दो से पाँच तक के चार भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में यथायोग्य रीति से अनेक जीवों की अपेक्षा होते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि देवगति में नीचगोत्र का तथा नरक, तिर्यंचगति में उच्चगोत्र का उदय नहीं होता है और मनुष्यगति में यथायोग्य रीति से दोनों का उदय होता है, किन्तु दोनों गोत्र का बंध तो चारों गति के जीवों के हो सकता है।

उपर्युक्त पाँच भंगों में से पहले भंग को छोड़कर शेष चार भंग सासादनगुणस्थान में होते हैं। पहला भंग तेज और वायुकाय के जीवों में तथा उनके भव से निकलकर जिस तिर्यंचभव में उत्पन्न होकर जब तक न बाँधे तब तक कितनेक काल होता है। तेज और वायुकाय के जीवों के सासादनभाव नहीं होता है तथा तेज और वायुकाय में से निकलकर जहाँ उत्पन्न हुए हैं उसमें भी सासादनभाव नहीं होता है। इसीलिये सासादनगुणस्थान में पहले भंग का निषेध किया है।

तीसरे मिश्रगुणस्थान से लेकर देशविरत गुणस्थान पर्यन्त उच्चगोत्र के बंध द्वारा होने वाले दो भंग होते हैं—१. उच्चगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता, २. उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त उच्चगोत्र का बंध और उच्चगोत्र का उदय होने पर एक भंग इस प्रकार होता है—उच्चगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय, उच्च-नीचगोत्र की सत्ता।

उच्चगोत्र का बंधविच्छेद होने के बाद उपशांतमोह गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान के द्विचरम समयपर्यन्त छठवाँ—उच्चगोत्र का उदय, उच्चनीचगोत्र की सत्ता यह एक ही भंग होता है तथा द्विचरम समय में नीचगोत्र की सत्ता का नाश होता है, जिससे अयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में 'उच्चगोत्र का उदय, उच्चगोत्र की सत्ता' रूप एक ही अन्तिम—सातवाँ भंग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किस गति वाले को कौन-कौन गुणस्थान होते हैं और किस गुणस्थान पर्यन्त किस गोत्र का बंध या उदय होता है, इसका विचार उस-उस गति में जो भंग घटित हो सकता हो, उसे स्वयं घटित कर लेना चाहिये ।

गोत्रकर्म के भंगों को गुणस्थानों में घटित करने के बाद अब मोहनीयकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध का निरूपण करने के पूर्व तत्संबन्धित विशेष कथनीय का विवेचन करते हैं ।

गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के पदप्रमाण

ओहम्मि मोहणीए बंधोदयसंतयाणि भणियाणि ।
अहुणाऽवोग्गडगुण उदयपयसमूह पवक्खामि ॥१११॥
जा जंमि चउव्वीसा गुणियाओ ताउ तेण उदएणं ।
मिलिया चउवीसगुणा इयरपएहिं च पयसंखा ॥११२॥
सत्तसहस्सा सट्ठीए वज्जिया अहव ते तिवण्णाए ।
इगुतीसाए अहवा बंधगभेएण मोहणिए ॥११३॥

शब्दार्थ—**ओहम्मि**—सामान्य से, **मोहणीए**—मोहनीय कर्म के विषय में, **बंधोदयसंतयाणि**—बंध, उदय और सत्तास्थान, **भणियाणि**—कहे हैं, **अहुणा**—अब, **अवोग्गडगुणउदयपयसमूहं**—अव्याकृतोदय (सामान्य उदय) और गुणस्थानों के उदय के पद समूह को, **पवक्खामि**—कहूंगा ।

जा—जितनी, **जंमि**—जिसमें, **चउव्वीसा**—चौबीसी, **गुणियाओ**—गुणाकार करना, **ताउ**—उनका, **तेण**—उसके, **उदएणं**—उदय के साथ, **मिलिया**—जोड़ करना, **चउवीसगुणा**—चौबीस से गुणा करना, **इयरपएहिं**—इतर पदों से, **च**—और, **पयसंखा**—पद संख्या ।

सत्तसहस्सा—सात हजार, **सट्ठीए**—साठ से, **वज्जिया**—रहित, **अहव**—अथवा, **ते**—वे, **तिवण्णाए**—त्रेपन, **इगुतीसाए**—उनतीस, **अहवा**—अथवा, **बंधगभेएण**—बंधकों के भेद से, **मोहणिए**—मोहनीय कर्म के ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गाथार्थ—मोहनीयकर्म के संबन्ध में सामान्य प्ररूपणा करते समय गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता के स्थानों का विचार किया है। अतः यहाँ पुनः उनका विचार न करके अव्याकृतोदय (सामान्य उदय) और गुणस्थानों में उदय के पदसमूह कहूँगा।

जिस गुणस्थान में जितनी चौबीसी होती हैं उनका उस गुणस्थान के साथ गुणा करके जोड़ना और फिर चौबीस से गुणा करके उसमें इतर पदों (नौवें गुणस्थान के पदों) को मिलाने पर पदों की कुल संख्या होती है।

(वह पद संख्या) बंधक जीवों के भेद से (मोहनीय कर्म के) साठ रहित सात हजार, अथवा त्रेपन रहित सात हजार अथवा उनतीस रहित सात हजार होती है।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में से प्रथम में मोहनीय कर्म के उदय के पदसमूह कहने की प्रतिज्ञा की है और शेष दो में पदसमूहों का वर्णन किया है। जो इस प्रकार है—

पूर्व में जब मोहनीय कर्म के संबन्ध में सामान्य वर्णन किया गया था, तब प्रसंगोपात्त गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता के स्थानों का भी विचार किया जा चुका है। परन्तु वहाँ सामान्य उदय और गुणस्थानों के उदय के पदसमूह—पदप्रमाण[1] का संकेत नहीं किया था। जिसका यहाँ निर्देश करते हैं—

दस प्रकृतिक आदि जिन उदयस्थानों में जितनी संख्या वाली चौबीसी होती हों, जैसे कि मिथ्यादृष्टि के दस प्रकृतियों के उदय की

---

१ पद यानी एक उदयस्थान की प्रकृतियां जैसे कि दस के उदय की एक चौबीसी यानी चौबीस भंग होते हैं—दस प्रकृतियों का उदय क्रोधादि के फेरफार से चौबीस प्रकार से होता है। चौबीसों भंगों में दस-दस प्रकृतियाँ होती हैं, जिससे दस को चौबीस से गुणा करने पर दो सौ चालीस पद—अलग-अलग प्रकृतियां होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक, नौ के उदय की छह में से तीन मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, एक सासादन में एक मिश्र और एक अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होती हैं। आठ के उदय की ग्यारह में से तीन मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, दो सासादन में, दो मिश्र में, तीन अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में और एक देशविरत गुणस्थान में होती हैं। सात के उदय की दस में से मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्रदृष्टि गुणस्थान में एक एक, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में तीन, देशविरत गुणस्थान में तीन और प्रमत्ता-प्रमत्त गुणस्थान में एक होती है।[1] छह के उदय में सात में की एक अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, तीन देशविरत, तीन प्रमत्त-अप्रमत्त में, अपूर्वकरण सम्बन्धी छह प्रकृतिक आदि उदयस्थान प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों के उदयस्थान से भिन्न नहीं है। मात्र गुणस्थान के भेद से भिन्न हैं। परन्तु यहां गुणस्थान के भेद से भिन्न चौबीसी की विवक्षा नहीं करने से अपूर्वकरणगुणस्थान की चौबीसी अलग से नहीं गिनी है।

पांच के उदय में चार में की एक देशविरत और तीन प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में होती है। चार के उदय की एक और वह प्रमत्त-अप्रमत्त संयत गुणस्थान में होती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि भिन्न-भिन्न गुणस्थानों में दस से चार तक के उदय की इस प्रकार चौबीसी होती हैं—१, ६, ११, १०, ७, ४, १ और इनका जोड़ करने पर चालीस चौबीसियां होती हैं।

इनकी पदसंख्या प्राप्त करने का उपाय इस प्रकार है—जिस-जिस उदयस्थान की जितनी-जितनी चौबीसियां होती हैं, उतनी-उतनी चौबीसियों को उस-उस उदयस्थान के साथ गुणा करके उन सबका जोड़ किया जाये और फिर चौबीस से गुणा करना और उसके बाद उसमें नौवें गुणस्थान के पदों को मिलाया जाये तो कुल पद संख्या होती है। जैसे—

---

१ प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों के स्वरूप का भेद नहीं होने से उन दोनों गुण-स्थानों के सभी उदयस्थान एक सरीखे होने से एक स्वरूप वाले माने हैं। जिससे उन दोनों की चौबीसी अलग-अलग नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दस के उदय की एक चौबीसी होती है जिससे उसे दस से गुणा करने पर दस, नौ के उदय में छह चौबीसी होती हैं, अतः नौ को छह से गुणा करने पर चउवन, आठ के उदय में ग्यारह चौबीसी होती हैं इसलिये आठ को ग्यारह से गुणा करने पर अठासी, सात के उदय में दस चौबीसी होती हैं, अतएव सात को दस से गुणा करने पर सत्तर, छह के उदय में सात चौबीसी होती हैं, इसलिये छह को सात से गुणा करने पर बयालीस, पांच के उदय में चार चौबीसी होती हैं, इसलिये पांच को चार से गुणा करने पर बीस और चार के उदय में एक चौबीसी होती है, अतः चार को एक से गुणा कर करने पर चार हुए। इनकी स्थापना इस प्रकार होगी—

१०, ५४, ८८, ७०, ४२, २०, ४। इन सबका जोड़ दो सौ अठासी होता है। अब इनको चौबीस से गुणा करने पर उनहत्तर सौ बारह (६९१२) होते हैं। उनमें नौवें गुणस्थान के जो दो के उदय में भंग बारह और पद चौबीस तथा वेद का उदय न रहने पर एक के उदय में चार भंग हैं, और उसमें पद भी चार ही होते हैं। इस प्रकार कुल अट्ठाईस पद होते हैं। इनको पूर्व की संख्या में मिलाने पर कुल उनहत्तर सौ चालीस पद होते हैं।

यहां दसवें गुणस्थान में एक के उदय का जो एक भंग होता है, वह एक के उदय में होने वाले चार भंग में समाविष्ट है अथवा बंध-स्थान के भेद से उदयस्थान का भेद मानें तो पाँच के बंध, दो के उदय में चौबीस पद, चार के बंध, एक उदय में चार पद, तीन के बंध एक के उदय में तीन पद, दो के बंध एक के उदय में दो पद, एक के बंध, एक के उदय में एक पद और बंधविच्छेद होने के बाद दसवें गुण-स्थान में एक के उदय का एक पद ये सब मिलकर पैंतीस पद होते हैं। उनको पूर्व की संख्या (६९१२) में मिलाने पर उनहत्तर सौ सैंतालीस पद होते हैं।

अथवा मतान्तर से चार के बंध, दो के उदय में बारह भंग होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उनके पद चौबीस होते हैं। इन अधिक चौबीस पदों को उनहत्तर सौ सैंतालीस में मिलाने पर उनहत्तर सौ इकहत्तर (६९७१) पर होते हैं।

कितने ही आचार्य वेद के बंध और उदय का साथ ही विच्छेद मानते हैं। उनके मत से पांच के बंध, दो के उदय में चौबीस पद होते हैं और पुरुषवेद के बंध उदय का साथ ही क्षय होने के बाद चार आदि के बंध में एक के उदय में चार आदि पद होते हैं।

कितनेक आचार्य पुरुषवेद का बंधविच्छेद होने के बाद भी अत्यल्प समय के लिये उसका उदय मानते हैं। उनके मत से पांच के बंध, दो के उदय में चौबीस पद और चार के बंध दो के उदय में भी चौबीस पद होते हैं। पश्चात् वेद का उदय उपरत होने के बाद चार के बंध में एक के उदय में चार आदि पद तो ऊपर कहे अनुसार ही होते हैं। मतान्तर से इस तरह होने वाले चौबीस पदों को मिलाने से उनहत्तर सौ इकहत्तर पद होते हैं।

उक्त कथन का सारांश यह है कि बंधक जीवों के भेद से सामान्यतः मोहनीय कर्म की उनहत्तर सौ चालीस (६९४०), उनहत्तर सौ सैंतालीस (६९४७) और उनहत्तर सौ इकहत्तर (६९७१) पद संख्या होती हैं।

इस प्रकार सामान्यतः मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की पदसंख्या का निरूपण करने के बाद अब गुणस्थानों की अपेक्षा गुणस्थान के भेद से उदय पद की संख्या का निरूपण करते हैं।

गुणस्थानापेक्षा मोहनीयकर्म की उदयपद-संख्या

अट्ठट्ठी बत्तीसा बत्तीसा सट्ठिमेव बावन्ना।
चउयाला चउयाला वीसा मिच्छाउ पयधुवगा ॥११४॥
तिण्णिसया बावण्णा मिलिया चउवीसताडिया एए।
बायरउदयपएहिं सहिया उ गुणेसु पयसंखा ॥११५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेवीसूणा सत्तरस वज्जिया अहव सत्तअहियाइं।
पंचासीइसयाइं उदयपयाइं तु मोहस्स ॥११६॥

शब्दार्थ—**अट्ठट्ठी**—अड़सठ, **बत्तीसा**—बत्तीस, **बत्तीसा**—बत्तीस, **सट्ठि**—साठ, **एव**—और, **बावन्ना**—बावन, **चउयाला**—चवालीस, **चउयाला**—चवालीस, **बीसा**—बीस, **मिच्छाउ**—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में, **पयधुवगा**—ध्रुवपद।

तिण्णिसया बावण्णा—तीन सौ बावन, **मिलिया**—जोड़ने पर, **चउवीस-ताडिया**—चौबीस से गुणा करने पर, **एए**—ये, **बायरउदयपएहिं**—बादरसंपरायगुणस्थान के उदयपदों, **सहिया**—सहित, **उ**—और, **गुणेसु**—गुणस्थानों में, **पयसंखा**—पद संख्या।

तेवीसूणा—तेईस कम, **सत्तरसवज्जिया**—सत्रह रहित, **अहव**—अथवा, **सत्तअहियाइं**—सात अधिक, **पंचासीइसयाइं**—पचासी सौ, **उदयपयाइं**—उदयपद, **तु**—और, **मोहस्स**—मोहनीय कर्म के।

गाथार्थ—अड़सठ, बत्तीस, बत्तीस, साठ, बावन, चवालीस, चवालीस, एवं बीस अनुक्रम से मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में ध्रुवपद होते हैं।

इनका जोड़ करने पर ये तीन सौ बावन होते हैं और उन्हें चौबीस से गुणा कर बादरसंपरायगुणस्थान के उदयपद मिलाने पर गुणस्थानों की पद संख्या होती है।

तेईस न्यून पचासी सौ अथवा सत्रह रहित पचासी सौ अथवा सात अधिक पचासी सौ मोहनीय कर्म के उदयपद होते हैं।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में प्रत्येक गुणस्थान का अपेक्षा मोहनीयकर्म के उदयपद बताकर कुल उदयपदों को संख्या बतलाई है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'अट्ठट्ठी बत्तीसा.......' इत्यादि अर्थात् गाथोक्त संख्या को अनुक्रम से मिथ्यात्वादि गुणस्थानों के साथ योजित करने पर उस-उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान के उतने-उतने ध्रुव पद होते हैं। जैसे कि मिथ्यात्व-गुणस्थान में अड़सठ ध्रुवपद[1] हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिए कि दस के उदय में एक चौबीसी होती है। जिससे एक का दस के साथ गुणा करने पर दस हुए। इसी प्रकार नौ के उदय में तीन चौबीसी होती हैं। अतएव तीन का नौ से गुणा करने पर सत्ताईस, आठ के उदय में तीन चौबीसी होती है, इसलिये तीन को आठ से गुणा करने पर चौबीस, सात के उदय में एक चौबीसी होती है, इसलिये एक को सात से गुणा करने पर सात और इन सबका जोड़ करने पर (१०+२७+२४+७=६८) अड़सठ ध्रुवपद होते हैं।

इसी तरह सासादन में बत्तीस, मिश्र में बत्तीस, अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में साठ, देशविरत में बावन, प्रमत्तसंयत गुणस्थान में चवालीस, अप्रमत्त में भी चवालीस और अपूर्वकरण गुणस्थान में बीस ध्रुवपद होते हैं।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक के कुल मिलाकर तीन सौ बावन ध्रुवपद होते हैं और उनको चौबीस से गुणा करने पर चौरासी सौ अड़तालीस (८४४८) पद होते हैं। उनमें पूर्व में कहे अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान के अट्ठाईस और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान का एक इस तरह उनतीस उदयपदों को मिलाने पर कुल पद संख्या तेईस न्यून पचासी सौ अर्थात् चौरासी सौ सतहत्तर (८४७७) होती है।

अथवा बंधस्थान के भेद से उदयस्थान का भेद मानने पर पांच के बंध में चौबीस पद, चार के बंध में चार, तीन के बंध में तीन, दो के बंध में दो, एक के बंध में एक और अबंध में सूक्ष्मसंपराय संबन्धी एक, ये सब मिलाकर पैंतीस होते हैं। इनको पूर्वोक्त राशि में जोड़ने पर चौरासी सौ तेरासी (८४८३) होते हैं। अथवा मतान्तर से चार के बंध में भी दो के उदय के भंग बारह और उनके पद चौबीस होते

१. ध्रुवपद—यानि जिनके साथ चौबीस का गुणा करना हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अतः उस संख्या को और मिलायें तो पचासी सौ सात (८५०७) होते हैं।

गुणस्थान के भेद से कुल पदों की संख्या उपर्युक्तानुसार होती है। सामान्य पद की संख्या में गुणस्थानपरक होने वाला भेद नहीं गिना है। जैसे कि प्रमत्तसंयत गुणस्थान में चवालीस और अप्रमत्तसंयत के चवालीस। यद्यपि गुणस्थान के भेद से भिन्न होते हैं, परन्तु जब सामान्य उदयपद कहे जाते हैं तब दोनों में उदयपदों की समान संख्या होने से भेद नहीं माना जाता है। परन्तु गुणस्थान के भेद से तो संख्या अलग-अलग है। अतः यहाँ अलग-अलग संख्या बताई है। गिनने की रीति पूर्ववत् जानना चाहिये तथा नौवें गुणस्थान के पदों को भी यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार से गुणस्थानापेक्षा प्रत्येक गुणस्थान के उदयपदों की संख्या जानना चाहिये। अब गुणस्थानों में योगादि द्वारा होने वाली पद संख्या का निरूपण प्रारंभ करते हैं। जिसकी प्रतिज्ञा रूप गाथा इस प्रकार है—

एवं जोगुवओगालेसाईभेयओ बहूभेया।
जा जस्स जंमि उ गुणे संखा सा तंमि गुणगारो ॥११७॥

शब्दार्थ—एवं—इसी प्रकार, **जोगुवओगालेसाईभेयओ**—योग, उपयोग, लेश्या आदि के भेद से, **बहूभेया**—बहुत से भेद, **जा**—जो, **जस्स**—जिसकी, **जंमि**—जिसमें, **उ**—और, **गुणे**—गुणस्थान में, **संखा**—संख्या, **सा**—वह, **तंमि**—उसमें, **गुणगारो**—गुणाकार करना चाहिये।

गाथार्थ—इसी प्रकार योग, उपयोग और लेश्यादि, के भेद से मोहनीय कर्म के भंग और पदों के बहुत से भेद होते हैं। जिस गुणस्थान में जिसकी (योगादि की) जो संख्या हो उस संख्या के साथ गुणस्थान के भंगों और पदसंख्या को गुणा करने पर जो लब्ध हो उतनी मोहनीय कर्म के पदों की संख्या जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त गाथानुसार उदयभंगों और उदयपदों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग-उपयोग और लेश्या के भेद से बहुत से भेद हैं। जिनको प्राप्त करने का उपाय इस प्रकार है—

जिस किसी भी गुणस्थान में योगादि की जितनी संख्या हो, उस संख्या के साथ उस-उस गुणस्थान में होने वाले भंगों और पदों का गुणा करने से उस-उस गुणस्थान के योग आदि के भेद से होने वाले भंगों और पदों की संख्या प्राप्त होती है।

अब इस सूत्र के अनुसार योगादि के भेद से मोहनीय कर्म के भंगों को बतलाते हैं। उसमें भी सुगम होने के कारण पहले उपयोग की अपेक्षा वर्णन करते हैं।

उपयोगापेक्षा मोहनीय कर्म के उदयभंग

उदयाणुवयोगेसुं सगसयरिसया तिउत्तरा होंति।
पण्णासपयसहस्सा तिण्णिसया चेव पण्णरसा ॥११८॥

शब्दार्थ—**उदयाणुवयोगेसुं**—उपयोग के भेद से होने वाले उदयभंग, **सगसयरिसया तिउत्तरा**—सत्तहत्तर सौ तीन, **होंति**—होते हैं, **पण्णासपयसहस्सा**—पचास हजार पद, **तिण्णिसया**—तीन सौ, **चेव**—और इसी प्रकार, **पण्णरसा**—पन्द्रह।

गाथार्थ—उपयोग के भेद से होने वाले उदयभंग सतहत्तर सौ तीन होते हैं और इसी प्रकार उदय पद पचास हजार तीन सौ पन्द्रह हैं।

विशेषार्थ—गाथा में योग के संबन्ध में बहुत कहने योग्य होने से उसको छोड़कर पहले उपयोग के भेद से होने वाले मोहनीय कर्म के उदयभंगों का विचार किया है—

मिथ्यात्व गुणस्थान में आठ चौबीसी हैं। सासादन में चार, मिश्र में चार, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में आठ, देशविरत गुणस्थान में आठ, प्रमत्तसंयत में आठ, अप्रमत्तसंयत में आठ और अपूर्वकरण गुणस्थान में चार चौबीसी होती हैं। कुल मिलाकर ये चौबीसी बावन हैं। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ये पाँच उपयोग होते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि और देशविरत गुणस्थान में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ये छह उपयोग और प्रमत्त-संयत से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक पूर्वोक्त छह में मनपर्याय ज्ञान को मिलाने पर सात उपयोग होते हैं।

इस प्रकार जिस गुणस्थान में जितनी चौबीसी होती हैं। उनको उस गुणस्थान में जितने उपयोग हों, उनके साथ गुणा करके फिर उन्हें चौबीस से गुणा करना और उसमें नौवें दसवें गुणस्थान की भंग संख्या को मिलाने पर उपयोग से होने वाली समस्त भंग संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे कि—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आठ चौबीसी होती हैं, सासादन में चार और मिश्र में चार चौबीसी होती हैं। इनका कुल जोड़ सोलह है। उन तीनों गुणस्थानों में पांच-पांच उपयोग होने से पांच से गुणा करने पर अस्सी चौबीसी होती है और उन अस्सी चौबीसियों को चौबीस से गुणा करने पर (८०×२४=१९२०) उन्नीस सौ बीस भंग होते हैं।

यदि पृथक्-पृथक् गुणस्थान में गुणा करना हो तो मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान में आठ चौबीसी होती हैं और पांच उपयोग होते हैं। जिससे आठ को पांच से गुणा करने पर चालीस चौबीसी हुईं। इसी प्रकार सासादन में चार चौबीसी हैं, उनको पांच उपयोग से गुणा करने पर बीस चौबीसी होती हैं। मिश्र में भी चार चौबीसी हैं। उनको भी पांच से गुणा करने पर बीस चौबीसी हुई और उनका कुल जोड़ (४०+२०+२०=८०) अस्सी हुआ और उनके भंग जानने के लिये अस्सी को चौबीस से गुणा करने पर उन्नीस सौ बीस भंग हुए। इसी प्रकार प्रत्येक गुणस्थान के लिये भी समझना चाहिये।

अविरत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थान में आठ चौबीसी हैं और देशविरत-गुणस्थान में भी आठ चौबीसी हैं। उनको उन गुणस्थानों में संभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छह उपयोगों के साथ गुणा करने पर छियानवै चौबीसी होती हैं और उनको चौवीस से गुणा करने पर तेईस सौ चार भंग होते हैं।

प्रमत्त गुणस्थान में आठ, अप्रमत्त गुणस्थान में आठ और अपूर्व-करण गुणस्थान में चार चौबीसी होती है। कुल बीस चौबीसी हुईं। उनको इन गुणस्थानों में संभव सात उपयोग से गुणा करने पर एक सौ चालीस चौबीसियाँ हुई और इनको चौबीस से गुणा करने पर तेतीस सौ साठ भंग होते हैं।

इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक की १९२०+२३०४+३३६० इन तीन संख्याओं का जोड़ करने पर उदयभंगों की कुल संख्या (७५८४) पचहत्तर सौ चौरासी है तथा नौवें गुणस्थान के दो के उदय में बारह और एक के उदय के पांच, कुल सत्रह भंग होते हैं।[1] उनको उस गुणस्थान में संभव सात उपयोगों से गुणा करने पर एक सौ उन्नीस भंग होते हैं। इस संख्या को पूर्व राशि में मिलाने पर उपयोग द्वारा कुल भंग संख्या सत्तहत्तर सौ तीन (७७०३) होती है।

इस प्रकार उपयोग द्वारा संभव भंग संख्या को बतलाने के बाद अब उपयोग के भेद से होने वाली उदयपद की संख्या बतलाते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अड़सठ ध्रुवपद हैं। सासादन में बत्तीस, मिश्र में बत्तीस, अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में साठ, देशविरत में बावन, प्रमत्तसंयत गुणस्थान में चवालीस, अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में चवालीस और अपूर्वकरण गुणस्थान में बीस ध्रुवपद हैं। इन प्रत्येक गुणस्थान के ध्रुवपदों को उस-उस गुणस्थान में संभव उपयोगों के साथ गुणा करने पर उदयपद की संख्या प्राप्त होती है। जैसे कि—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अड़सठ, सासादन में बत्तीस, और मिश्र में बत्तीस ध्रुवपद हैं। इनको उन-उन गुणस्थानों में संभव पांच उपयोगों से गुणा करने पर छह सौ साठ पद होते हैं।

---

१ इन पांच में सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान का एक भंग भी गर्भित है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अविरतसम्यग्दृष्टि के साठ और देशविरत के बावन कुल एक सौ बारह पद होते हैं। इनको उन गुणस्थान सम्बन्धी छह उपयोगों से गुणा करने पर (११२×६=६७२) छह सौ बहत्तर ध्रुवपद चौबीसी होती हैं।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान में चवालीस, अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में चवालीस और अपूर्वकरण में बीस, कुल एक सौ आठ ध्रुवपद होते हैं। इनको उन गुणस्थानों में सम्भव सात उपयोगों से गुणा करने पर सात सौ छप्पन ध्रुवपद चौबीसी होती हैं।

इन सब ध्रुवपद की चौबीसियों का कुल जोड़ दो हजार अठासी है। इस संख्या को चौबीस से गुणा करने पर आठवें गुणस्थान तक के पचास हजार एक सौ बारह उदयपद होते हैं तथा दो के उदय से होने वाले चौबीस पद और एक के उदय से होने वाले पाँच पद, कुल उनतीस होते हैं। उनको नौवें, दसवें गुणस्थान में संभव सात उपयोगों से गुणा करने पर दो सौ तीन होते हैं। इनको पूर्व राशि में मिलाने पर उपयोग के भेद से होने वाले उदयपदों की कुल संख्या पचास हजार तीन सौ पन्द्रह होती है।

इस प्रकार उपयोग-भेद की अपेक्षा उदयभंग और उदयपदों को जानना चाहिये। अब लेश्या से गुणा करने पर होने वाले उदयभंग और उदयपदों का विचार करते हैं।

लेश्यापेक्षा उदयभंग और उदयपद

तिगहीणा तेवन्नसया उ उदयाण होंति लेसाणं।
अडतीससहस्साइं पयाण सय दो य सगतीसा ॥११६॥

शब्दार्थ—**तिगहीणा**—तीन न्यून, **तेवन्नसया**—त्रेपन सौ, **उ**—और, **उदयाण**—उदयभंग, **होंति**—होते है, **लेसाणं**—लेश्याओं के, **अडतीससहस्साइं**—अड़तीस हजार, **पयाण**—उदयपद, **सय दो**—दो सौ, **य**—और, **सगतीसा**—सैंतीस।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—लेश्या के भेद से मोहनीय कर्म के उदयभंग तीन कम त्रेपन सौ (५२९७) और उदयपद अड़तीस हजार दो सौ सैंतीस (३८२३७) होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में लेश्याभेद से मोहनीय कर्म के उदयभंगों और उदयपदों की समस्त संख्या बतलाई हैं। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान में कृष्णादि छह-छह लेश्यायें तथा देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन-तीन शुभ लेश्यायें होती हैं। क्योंकि कृष्णादि अशुभ लेश्याओं के होने पर देशविरतादि गुणों की प्राप्ति नहीं होती है तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादरसंपराय और सूक्ष्मसंपराय इन तीन गुणस्थानों में मात्र एक शुक्ललेश्या ही होती है। अतएव—

जिस-जिस गुणस्थान में जितनी लेश्यायें होती हैं उनके साथ उस-उस गुणस्थान में उदयभंगों और उदयपदों का गुणाकार करने पर लेश्या के भेद से होने वाले उदयभंगों और उदयपदों की संख्या प्राप्त होती है। जैसे कि—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में उदयभंग की संख्या एक सौ बानवै है। क्योंकि यहां आठ चौबीसी हैं और उनको चौबीस से गुणा करने पर एक सौ बानवै गुणनफल होता है तथा इस गुणस्थान में लेश्या छह हैं। इसलिये एक सौ बानवै को छह से गुणा करने पर (१९२ × ६ = ११५२) ग्यारह सौ बावन होते हैं। जो मिथ्यात्वगुणस्थान में लेश्या द्वारा होने वाले उदयभंगों की संख्या होती है।

इसी प्रकार अन्य गुणस्थानों के उदयभंगों एवं उदयपदों की संख्या भी जान लेना चाहिये। जिसको जानने की विधि यह है—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में आठ चौबीसी हैं। सासादन में चार, मिश्र में चार और अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में आठ चौबीसी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे सब मिलकर चौबीस चौबीसी होती हैं। उनको छह लेश्याओं से गुणा करने पर एक सौ चवालीस हुए और देशविरत में आठ, प्रमत्त-संयत में आठ और अप्रमत्तसंयत में आठ चौबीसी हैं। इनका कुल योग चौबीस चौबीसी हुआ। इनको तीन लेश्याओं से गुणा करने पर बहत्तर चौबीसी हुईं। अपूर्वकरण गुणस्थान में चार चौबीसी हैं। परन्तु यहाँ लेश्या एक ही होने से एक से गुणा करने पर चार चौबीसी ही होती हैं।

इस प्रकार पहले मिथ्यात्वगुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त सब मिलाकर दो सौ बीस चौबीसी हुईं। इनको चौबीस से गुणा करने पर बावन सौ अस्सी भंग हुए। उनमें द्विकोदय के बारह और एकोदय के पांच, कुल सत्रह भंगों को जोड़ने पर बावन सौ सत्तानवै (५२९७) उदयभंग होते हैं। ये सब लेश्या के भेद से गुणस्थानों में संभव मोहनीयकर्म के उदयभंग जानना चाहिये।

अब लेश्या के भेद से होने वाले उदयपदों का कथन करते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अड़सठ ध्रुवपद, सासादान में बत्तीस, मिश्र में बत्तीस और अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में साठ ध्रुवपद हैं। इन सबका जोड़ एक सौ बानवै होता है। इन एक सौ बानवै को छह लेश्या से गुणा करने पर ग्यारह सौ बावन गुणनफल होता है।

देशविरत में बावन, प्रमत्त में चवालीस, अप्रमत्त में चवालीस ध्रुवपद हैं। जो मिलकर एक सौ चालीस होते हैं। इनको तीन लेश्या के साथ गुणा करने पर चार सौ बीस होते हैं। अपूर्वकरण में बीस ध्रुवपद हैं। यहां एक ही लेश्या होने से एक से गुणा करने पर बीस ही होते हैं।

सब मिलाकर पन्द्रह सौ बानवै ध्रुवपद चौबीसी होती हैं। उनको चौबीस से गुणा करने पर अड़तीस हजार दो सौ आठ पद होते हैं। उनमें नौवें, दसवें गुणस्थान के पूर्व में कहे द्विकोदय और एकोदय के उनतीस पदों को जोड़ने पर कुल मिलाकर अड़तीस हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो सौ सैंतीस लेश्या के भेद से मोहनीय कर्म के पदों की संख्या होती है।

इस प्रकार लेश्या के भेद से मोहनीय कर्म के उदयभंग और उदयपदों की संख्या जानना चाहिये। अब योग द्वारा होने वाले मोहनीय उदय के भंग और उदयपदों का विचार करते हैं।

योग द्वारा संभव उदयभंग और उदयपद

चोद्दसउ सहस्साइं सयं च गुणहत्तरं उदयमाणं।
सत्तरसा सत्तसया पणनउइ सहस्स पयसंखा ॥१२०॥

शब्दार्थ—**चोद्दसउ सहस्साइं**—चौदह हजार, **सयं**—सौ, **च**—और, **गुणहत्तरं**—उनहत्तर, **उदयमाणं**—उदयभंग, **सत्तरसा**—सत्रह, **सत्तसया**—सात सौ, **पणनउइ**—पंचानवै, **सहस्स**—हजार, **पयसंखा**—पद संख्या।

गाथार्थ—चौदह हजार एक सौ उनहत्तर योग गुणित उदयभंग होते हैं और पंचानवै हजार सात सौ सत्रह पदसंख्या है।

विशेषार्थ—गाथा में गुणस्थानों में योग से गुणित मोहनीयकर्म के सभी उदयभंगों एवं पदों का प्रमाण बतलाया है कि वे अनुक्रम से चौदह हजार एक सौ उनहत्तर और पंचानवै हजार सात सौ सत्रह होते हैं। विस्तार से जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में आठ चौबीसी होती हैं और आहारकद्विक न्यून तेरह योग होते हैं। अतएव तेरह योगों से आठ को गुणा करने पर एक सौ चार होते हैं। सासादनगुणस्थान में चार चौबीसी होती हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त तेरह योग होते हैं। अतएव तेरह को चार से गुणा करने पर बावन होते हैं।

मिश्रगुणस्थान में भी चार चौबीसी होती हैं। परन्तु मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव काल नहीं करने से यहाँ अपर्याप्तावस्था भावीवैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण काययोग भी नहीं होते हैं। इसलिये पूर्वोक्त आहारकद्विक और वैक्रियमिश्र आदि तीन योगों सहित पांच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगों को कम करने पर दस योग ही होते हैं। इसलिये दस के साथ चार को गुणा करने पर चालीस होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में आठ चौबीसी होती हैं। इस गुणस्थान में मरण संभव होने से अपर्याप्तावस्थाभावी पूर्वोक्त तीन योग होते हैं। अतएव यहां तेरह योग संभव होने से तेरह के साथ आठ का गुणा करने पर एक सौ चार होते हैं।

देशविरतगुणस्थान में आठ चौबीसी होती हैं। अपर्याप्तावस्था में देशविरत गुणस्थान संभव नहीं होने से यहां औदारिकमिश्र और कार्मण काययोग यह दो योग एवं आहारकद्विक योग भी नहीं होते हैं, कुल ग्यारह योग होते हैं। इन ग्यारह योगों को आठ से गुणा करने पर अठासी होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आहारकद्विक योग होने से तेरह योग होते हैं। यहाँ आठ चौबीसी होती हैं। इसलिये तेरह को आठ से गुणा करने पर एक सौ चार होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आहारकमिश्र और वैक्रियमिश्र योग नहीं होते हैं एवं अपर्याप्तावस्था भावीऔदारिकमिश्र तथा कार्मण काययोग भी नहीं होने से ग्यारह योग होते हैं। यहाँ चौबीसी आठ होती हैं। जिससे ग्यारह को आठ से गुणा करने पर अठासी होते हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थान में चार चौबीसी हैं। यहां मनोयोग चार, वचनयोग चार और औदारिक काययोग कुल नौ योग होते हैं। अतएव नौ को चार से गुणा करने पर छत्तीस होते हैं।

उपर्युक्त सब मिलाकर छह सौ सोलह चौबीसी होती है। उनको चौबीस से गुणा करने पर चौदह हजार सात सौ चौरासी तथा द्विकोदय और एकोदय के सत्रह भंग होते हैं। नौवें और दसवें गुणस्थान में योग नौ होते हैं। इसलिये सत्रह के साथ नौ का गुणा करने पर एक सौ त्रेपन होते हैं। उनको पूर्व राशि में मिलाने पर चौदह हजार नौ सौ सैंतीस उदयभंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन उदय भंगों में से जो भंग संभव नहीं हैं उन भंगों को कम करना चाहिये। अतएव अब जो भंग संभव नहीं हैं और वे संभव क्यों नहीं है, इसको स्पष्ट करते हैं—

वैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि को अनन्तानुबंधि के उदय बिना की सात के उदय की एक, आठ के उदय की दो और नौ के उदय की एक इस प्रकार चार चौबीसी नहीं होती हैं। इसका कारण यह है—

जो आत्मा पहले क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होने पर अनन्तानुबंधि की विसंयोजना कर कालान्तर में परिणामों के परावर्तन द्वारा सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आकर मिथ्यात्व रूप हेतु के द्वारा अनन्तानुबंधि का बंध प्रारम्भ करे, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को एक आवलिका काल पर्यन्त अनन्तानुबंधि का उदय नहीं होता है।

इसके सिवाय सम्यक्त्व से गिरकर आने वाले जीव के अनन्तानुबंधि का उदय अवश्य होता है। अनन्तानुबंधि की विसंयोजना करने के बाद सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आने वाले का जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त आयु अवशेष होता है, जिससे उसी भव में वर्तमान वह जीव मिथ्यात्व रूप हेतु द्वारा अनन्तानुबंधि को बांधता है और बंधावलिका के जाने के बाद उसका वेदन भी करता है। जिससे विग्रहगति में रहते और भवान्तर में उत्पन्न होते मिथ्यादृष्टि को अनन्तानुबंधि का उदय अवश्य होता है। इसलिये उसके उदय बिना के उदय के विकल्प कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र में नहीं होते हैं। क्योंकि कार्मणयोग विग्रह गति में और उत्पत्ति के प्रथम समय में होता है और औदारिकमिश्र तथा वैक्रियमिश्र भवान्तर में उत्पन्न होते जीव को उत्पत्ति के दूसरे समय से अपर्याप्तावस्था में होता है। जिससे कार्मणकाययोग में सात के उदय की एक, आठ के उदय की दो और नौ के उदय की एक, इस प्रकार कुल चार तथा इसी तरह औदारिकमिश्र की चार और वैक्रियमिश्र की चार कुल बारह चौबीसी नहीं होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ जो वैक्रियमिश्रकाययोग भवान्तर में उत्पन्न होने पर कहा है, वह बहुलता की अपेक्षा है। क्योंकि प्रत्येक देव और नारक को अपर्याप्तावस्था में वैक्रियमिश्रयोग होता है। यदि ऐसा न हो तो वैक्रियशरीर करते पर्याप्त मनुष्यों, तिर्यंचों के भी वैक्रियमिश्र होता है। परन्तु सप्ततिका चूर्णिकार ने उसकी विवक्षा नहीं की है।

उक्त बारह चौबीसी को चौबीस से गुणा करने पर दो सौ अठासी भंग होते हैं। इतने भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में असम्भव हैं, नहीं होते हैं।

वैक्रियमिश्रकाययोग में वर्तमान सासादन सम्यग्दृष्टि को नपुंसक-वेद का उदय नहीं होता है। क्योंकि वैक्रियमिश्र देव और नारकों के होता है। सासादन गुणस्थान लेकर देव में ही उत्पन्न होता है, नारक में उत्पन्न नहीं होता है और देव पुरुष और स्त्रीवेदी होते हैं, परन्तु नपुंसकवदी नहीं होते हैं। इसलिये सासादन गुणस्थान में होती चार चौबीसियों के छियानवै भंग में से नपुंसकवेद के उदय वाले बत्तीस भंग नहीं होते हैं। तथा—

कार्मणकाययोग और वैक्रियमिश्रकाययोग में अविरतसम्यग्दृष्टि को स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। क्योंकि कार्मणकाययोग और वैक्रियमिश्रकाययोग वाले स्त्रीवेद में अविरतसम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते हैं। सम्यक्त्वयुक्त मनुष्य और तिर्यंच को नरक में जाने पर मात्र नपुंसकवेद का उदय होता है और देव में जाने पर पुरुषवेद का ही उदय होता है, परन्तु स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। जिससे अवि-रतसम्यग्दृष्टि को स्त्रीवेद में कार्मणकाययोग और वैक्रियमिश्रयोग नहीं होता है।

यह कथन बहुलता की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि किसी समय स्त्रीवेदी में भी अविरतसम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति होती है। सप्त-तिकाचूर्णि में कहा है—किसी समय स्त्रीवेदी में अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाले की उत्पत्ति भी होती है। परन्तु अनेक जीवों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा जो संभव है उसका निर्देश यहाँ किया है। अतएव आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंगों में से स्त्रीवेद के उदय से होने वाले चौसठ भंग कार्मणकाययोग में और चौंसठ वैक्रियमिश्रकाययोग में नहीं होते हैं और दोनों को मिलाकर एक सौ अट्ठाईस भंग नहीं होते हैं।

औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि को एक पुरुषवेद ही होता है। स्त्रीवेद या नपुंसकवेद नहीं होता है। क्योंकि सम्यक्त्वयुक्त जीव तिर्यंच या मनुष्य में उत्पन्न हो तो पुरुषवेदी में ही उत्पन्न होता है, स्त्री वेदी और नपुंसकवेदी में उत्पन्न नहीं होता है। जिससे आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंग में से स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से होने वाले एक सौ अट्ठाईस भंग औदारिकमिश्रकाययोग में नहीं होते हैं। यह कथन भी बहुलता की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि मल्लिनाथ और राजिमती जैसे अविरत सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व के साथ स्त्रीवेदी में भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु वैसी संख्या अल्प होने से यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की है।

इस प्रकार सब मिलाकर दो सौ छप्पन भंग अविरतसम्यग्दृष्टि में सम्भव नहीं है।

प्रमत्तसंयत के आहारक और आहारकमिश्रकाययोग में स्त्रीवेद नहीं होता है। आहारकशरीर चौदह पूर्वधारी को ही होता है और स्त्रियों को चौदह पूर्व का अध्ययन सम्भव नहीं है। इसलिये प्रमत्तसंयत गुणस्थान की आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंगों में से स्त्रीवेद के उदय में होने वाले चौंसठ भंग आहारककाययोग के और चौंसठ भंग आहारकमिश्रकाययोग के कुल एक सौ अट्ठाईस भंग नहीं होते हैं तथा अप्रमत्तसंयत को भी पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार आहारककाययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये अप्रमत्तसंयत की आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंगों में से स्त्रीवेद के उदय में होने वाले चौंसठ भंग आहारककाययोग में नहीं होते हैं। अप्रमत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयत को आहारककाययोग ही होता है, आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता है। इसलिये चौंसठ भंगों का निषेध किया है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न गुणस्थानों में अमुक-अमुक योग में नहीं होने वाले भंगों का जोड़ सात सौ अड़सठ हैं। इतने भंग पूर्व के चौदह हजार नौ सौ सैंतीस भंगों में से कम करने पर चौदह हजार एक सौ उनहत्तर भंग होते हैं।

इस प्रकार से योगापेक्षा मोहनीयकर्म के गुणस्थानों में उदयभंग जानना चाहिये। अब योगगुणित पद संख्या का विचार करते हैं—

मिथ्यादृष्टि के अड़सठ ध्रुवपद हैं। जिनको तेरह योगों से गुणा करने पर आठ सौ चौरासी होते हैं।

सासादन गुणस्थान में बत्तीस ध्रुवपद हैं। उनको भी तेरह योग से गुणा करने पर चार सौ सोलह होते हैं।

मिश्रगुणस्थान में भी बत्तीस ध्रुवपद हैं। उनको दस योगों से गुणा करने पर तीन सौ बीस होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में साठ ध्रुवपद हैं। उनको तेरह से गुणा करने पर सात सौ अस्सी होते हैं।

देशविरतगुणस्थान में बावन ध्रुवपद हैं। जिनको ग्यारह योगों से गुणा करने पर पाँच सौ बहत्तर होते हैं।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान में चवालीस ध्रुवपद हैं। जिनको तेरह योगों से गुणा करने पर पाँच सौ बहत्तर होते हैं।

अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में भी चवालीस ध्रुवपद हैं। जिनको ग्यारह योगों से गुणा करने पर चार सौ चौरासी होते हैं।

अपूर्वकरणगुणस्थान में बीस ध्रुवपद हैं। उनको नौ योगों से गुणा करने पर एक सौ अस्सी होते हैं।

उक्त सब मिलाकर बयालीस सौ आठ होते हैं और इनको चौबीस से गुणा करने पर एक लाख नौ सौ बानवै होते हैं तथा दो के उदय

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

के चौबीस पद और एक के उदय के पाँच पद कुल उनतीस पद नौवें, दसवें गुणस्थान के होते हैं। वहाँ नौ योग होने से नौ से गुणा करने पर दो सौ इकसठ होते हैं। जिन्हें पूर्व की राशि में मिलाने पर एक लाख एक हजार दो सौ त्रेपन (१०१२५३) होते हैं।

इस राशि में से असम्भव पदों को कम करना चाहिये। अतएव अब उन असम्भव पदों का संकेत करते हैं कि मिथ्यादृष्टि को अनन्तानुबंधि के उदय बिना के सात के उदय में एक चौबीसी के ध्रुवपद सात, आठ के उदय के दो चौबीसी के ध्रुवपद सोलह और नौ के उदय के एक चौबीसी के ध्रुवपद नौ, कुल बत्तीस ध्रुवपद वैक्रियमिश्रकाययोग में, बत्तीस औदारिकमिश्रकाययोग में और बत्तीस कार्मणकाययोग में कुल छियानवै ध्रुवपद नहीं होते हैं। उनको चौबीस से गुणा करने पर तेईस सौ चार होते हैं। इतने मिथ्यादृष्टि के असंभवी पद हैं।

वैक्रियमिश्रयोग में वर्तमान सासादनगुणस्थान वाले को नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है। इसका स्पष्टीकरण पूर्व में किया जा चुका है। नपुंसकवेद के आठ भंग होते हैं। सासादनगुणस्थान में बत्तीस ध्रुवपद होने से आठ को बत्तीस से गुणा करने पर दो सौ छप्पन होते हैं। इतने पद सासादनगुणस्थान में सम्भव नहीं हैं।

कार्मणकाययोग और वैक्रियमिश्रकाययोग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि के स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। अविरतसम्यग्दृष्टि के साठ ध्रुवपद होते हैं। स्त्रीवेद सम्बन्धी एक चौबीसी में आठ भंग होते हैं। उनको साठ से गुणा करने पर चार सौ अस्सी पद कार्मणकाययोग में और चार सौ अस्सी पद वैक्रियमिश्रयोग में और दोनों मिलकर नौ सौ साठ पद नहीं होते हैं तथा औदारिकमिश्रयोग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि के एक पुरुषवेद का ही उदय होता है, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है। स्त्री-नपुंसकवेद के साथ सोलह भंग होते हैं। इसलिये सोलह को साठ से गुणा करने पर

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

नौ सौ साठ होते हैं और कुल मिलाकर अविरतसम्यग्दृष्टि को एक हजार नौ सौ बीस पद सम्भव नहीं हैं।

आहारक और आहारकमिश्र काययोग में वर्तमान प्रमत्तसंयत को स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में चवालीस ध्रुवपद होते हैं। चवालीस में से स्त्रीवेद में आठ भंग होते हैं। अतः आठ को चवालीस से गुणा करने पर तीन सौ बावन होते हैं। इतने आहारक और आहारकमिश्र काययोग में नहीं होते हैं और दोनों के मिलकर प्रमत्तसंयत के सात सौ चार पद सम्भव नहीं हैं।

आहारक काययोग में वर्तमान अप्रमत्तसंयत को भी उक्त प्रकार से तीन सौ बावन पद संभव नहीं होते हैं।

इस प्रकार पहले, दूसरे आदि गुणस्थानों में सब मिलाकर असंभवित पदों की संख्या पचपन सौ छत्तीस (५५३६) होती है। पूर्व राशि में से इतने पद कम करने पर पंचानवै हजार सात सौ सत्रह (९५७१७) रहते हैं। योग के साथ गुणित मोहनीयकर्म के इतने पद सभी गुणस्थानों में होते हैं।

उदयपद के भंगों को बताने के प्रसंग में कम करने योग्य उदय-भंगों का उल्लेख किया है। लेकिन अधिक सुगमता से बोध कराने के लिये सूत्र संकेत रूप में ग्रन्थकार आचार्य स्पष्ट करते हैं—

मीसदुगे कम्मइए अणउदयविवज्जियाउ मिच्छस्स।
चउवीसाउ ण चउरो तिगुणाओ तो रिणं ताओ ।।१२१।।
वेउव्वियमीसम्मि नपुंसवेओ न सासणे होइ।
चउवीसचउक्काओ अओ तिभागा रिणं तस्स ।।१२२।।
कम्मयविउव्विमीसे इत्थीवेओ न होइ सम्मस्स।
अपुमित्थि उरलमीसे तच्चउवीसाण रिणमेय ।।१२३।।
आहारगमीसेसुं इत्थीवेओ न होइ उ पमत्ते।
दोण्णि तिभागाउ रिणं अपमत्तजइस्स उ तिभागो ।।१२४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**मीसदुगे**—मिश्रद्विक में (औदारिकमिश्र वैक्रियमिश्र में), **कम्मइए**—कार्मणकाययोग में, **अणउदयविवज्जियाउ**—अनन्तानुबंधि के उदय बिना की, **मिच्छस्स**—मिथ्यादृष्टि के, **चउवीसाउ**—चौबीसी, **ण**—नहीं, **चउरो**—चार, **तिगुणाओ**—त्रिगुणी, **तो**—फिर, **रिणं**—कम करना, **ताओ**—इनमें से।

वेउव्वियमीसम्मि—वैक्रियमिश्र में, **नपुंसवेओ**—नपुंसकवेद, **न**—नहीं, **सासणे**—सासादन में, **होइ**—होता है, **चउवीसचउक्काओ**—चार चौबीसियों में से, **अओ**—अतः, **तिभागा**—तीसरा भाग, **रिणं**—कम करना, **तस्स**—उसका।

कम्मयविउव्विमीसे—कार्मण और वैक्रिय मिश्र योग में, **इत्थीवेओ**—स्त्रीवेद, **न होइ**—नहीं होता है, **सम्मस्स**—अविरतसम्यग्दृष्टि के, **अपुमित्थि**—नपुंसकवेद और स्त्रीवेद, **उरलमीसे**—औदारिकमिश्र में, **तच्चउवीसाण**—उसकी चौबीसी के, **रिणमेय**—कम करना चाहिये।

आहारगमीसेसु—आहारक और आहारकमिश्रयोग में, **इत्थीवेओ**—स्त्रीवेद, **न होइ**—नहीं होता है, **उ**—और, **पमत्ते**—प्रमत्तसंयत गुणस्थान में, **दोण्णि तिभागाउ**—दो तृतीयांश भाग, **रिणं**—कम करना, **अपमत्तजइस्स**—अप्रमत्तयति के, **उ**—और, **तिभागो**—तीसरा भाग।

गाथार्थ—मिश्रद्विक और कार्मण काययोग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि को अनन्तानुबंधि के उदय बिना की चौबीसी संभव नहीं हैं। अतः त्रिगुणी वे चार चौबीसियां कम करना चाहिये।

सासादन गुणस्थान में वैक्रियमिश्र योग में नपुसंकवेद का उदय नहीं होता है। अतएव उसकी चार चौबीसियों में से तीसरा भाग कम करना चाहिये।

अविरतसम्यग्दृष्टि को कार्मण और वैक्रिय मिश्र में स्त्रीवेद नहीं होता है और औदारिकमिश्र में नपुसंक और स्त्रीवेद नहीं होता है। इसलिये उसकी चौबीसी के असंभव भंग कम करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आहारक और आहारकमिश्र काययोग होने पर स्त्रीवेद नहीं होता है। अतः दो तृतीयांश भाग कम करना चाहिये और अप्रमत्तसंयत में तीसरा भाग कम करने योग्य है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण इन प्रत्येक योग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि को अनन्तानुबंधि के उदय बिना की चार चौबीसी नहीं होती हैं। इसलिये तीन गुणित चार यानि बारह चौबीसी और उनके दो सौ अठासी उदयभंग मिथ्यादृष्टि के कुल भंगों में से कम करना चाहिये और पद तेईस सौ चार कम करना चाहिये।

सासादन गुणस्थान में वैक्रियमिश्र योग में नपुसंकवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये सासादन सम्बन्धी चार चौबीसिय्रों में से उसका बत्तीस भंग रूप तीसरा भाग और पद संख्या दो सौ छप्पन कम करना चाहिये।

कार्मण और वैक्रियमिश्र काययोग में वर्तमान अविरतसम्यग्-दृष्टि को स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये अविरतसम्यग्दृष्टि की आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंग में से तीसरा भाग कम करना चाहिये। यानि कार्मणयोग में स्त्रीवेद के उदय के आठ चौबीसी के चौंसठ भंग और वैक्रियमिश्र योग में स्त्रीवेद के उदय के आठ चौबीसी के चौंसठ भंग, कुल एक सौ अट्ठाईस भंग कम करना चाहिये।

औदारिकमिश्र योग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि के नपुंसक-वेद और स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये चौबीसी का दो तृतीयांश भाग कम करना चाहिये। यानि एक सौ अट्ठाईस भंग कम करना चाहिये। सब मिलाकर दो सौ छप्पन उदयभंग और नौ सौ साठ पद संख्या कम करना चाहिये।

आहारक काययोग और आहारकमिश्र काययोग में वर्तमान प्रमत्तसंयत के स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये प्रमत्तसंयत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आठ चौबीसी में की प्रत्येक चौबीसी में से आहारककाययोगि के स्त्रीवेद में होने वाले आठ-आठ भंग कुल चौंसठ और आहारकमिश्र काययोगि के स्त्रीवेद में होने वाले प्रत्येक चौबीसी के आठ-आठ भंग कुल चौंसठ, कुल मिलाकर एक सौ अट्ठाईस भंग कम करना चाहिये।

छठे गुणस्थान में कुल एक सौ बानवै भंग होते हैं। उनमें से दो योग के एक सौ अट्ठाईस भंग कम करना चाहिये। क्योंकि ये एक सौ अट्ठाईस एक सौ बानवै के दो तृतीयांश भाग हैं तथा पद संख्या सात सौ चार कम करना चाहिये। क्योंकि कम करने योग्य भंगों की पद संख्या उतनी होती है।

आहारककाययोग में वर्तमान अप्रमत्तसंयत आत्मा को स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये अप्रमत्तसंयत को आठ चौबीसी के एक सौ बानवै भंगों में के एक तृतीयांश भाग को कम करना चाहिये यानि चौंसठ भंग कम करना चाहिये और उनके तीन सौ बावन पद अप्रमत्त में होने वाले भंगों और पदों की संख्या में से कम करना चाहिये।

इस प्रकार से गुणस्थान में योगापेक्षा होने वाले मोहनीय कर्म के उदयभंग और पदों को कम करना चाहिये।

अब योग, उपयोग और लेश्या द्वारा होने वाली उदय के भंगों और पदों की संख्या प्राप्त करने का सामान्य उपाय बतलाते हैं।

मोहनीय कर्म के उदय भंगों और पदों की संख्याप्राप्ति का उपाय

उदएसु चउवीसा धुवगाउ पदेसु जोगमाईहिं।
गुणिया मिलिया चउवीसताडिया इयरसंजुत्ता ॥१२५॥

शब्दार्थ—**उदएसु**—उदय में, **चउवीसा**—चौबीसी का, **धुवगाउ**—ध्रुवकों का, **पदेसु**—पदों में, **जोगमाईहिं**—योग आदि से, **गुणिया**—गुणा करके, **मिलिया**—मिलाने पर, **चउवीसताडिया**—चौबीस से गुणा करके, **इयरसंजुत्ता**—इतर संख्या मिलाने पर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—उदयभंगों को जानने के लिये चौबीसियों का और पदों की संख्या के लिये ध्रुवकों का योगादि से गुणा कर और फिर उन सबको जोड़कर उन्हें चौबीस से गुणा करने एवं इतर संख्या मिलाने पर भंग और पद संख्या प्राप्त होती है।

विशेषार्थ—योग, उपयोग और लेश्या द्वारा होने वाली मोहनीय कर्म के उदयभंगों को संख्या प्राप्त करने के लिये जिस-जिस गुणस्थान में जितनी चौबीसी होती हैं, उनका उस-उस गुणस्थान में संभव योग, उपयोग या लेश्याओं के साथ गुणाकार करके प्राप्त गुणनफल को चौबीस से गुणा करें—'जोगमाईहिं गुणिया।' तत्पश्चात् दो और एक के उदय से होने वाले सत्रह भंगों को नौ योग, सात उपयोग और एक लेश्या से गुणा कर प्राप्त संख्या को पूर्व की संख्या में मिलायें और योग द्वारा होने वाली भंगों की संख्या में से पूर्व में कहे गये असंभव भंगों को कम करने पर योग द्वारा होने वाली भंग संख्या प्राप्त होती है। किन्तु लेश्या और उपयोग द्वारा होने वाली भंग संख्या में से उनके असंभव भंग नहीं होने से एक भी भंग कम नहीं किया जाता है।

इसी प्रकार पद की संख्या प्राप्त करने के लिये उस-उस गुणस्थान के ध्रुवपदों का उस-उस गुणस्थान में प्राप्त योग, उपयोग या लेश्याओं के साथ गुणा करके सबका जोड़कर फिर चौबीस से गुणा करना चाहिये। तत्पश्चात् दो के उदय के और एक के उदय के उनतीस पदों को नौ योग, सात उपयोग और एक लेश्या के साथ गुणा करके योग द्वारा होने वाली संख्या में योग द्वारा गुणित, उपयोग द्वारा होने वाली संख्या में उपयोग द्वारा गुणित और लेश्या द्वारा होने वाली संख्या में लेश्या द्वारा गुणित पदों को मिलाने पर उनकी संख्या प्राप्त होती है।

ऐसा करने पर योगगुणित उदयभंग चौदह हजार नौ सौ सैंतीस और पद एक लाख नौ सौ बानवै प्राप्त होते हैं। परन्तु इनमें से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंभवी उदयभंग और पदों को कम करना चाहिये। अतएव अब असंभवी उदयभंगों और पदों की संख्या प्राप्त करने का उपाय बताते हैं।

असम्भवी उदयभंगों व पदों को प्राप्त करने का उपाय

अपमत्तसासणेसु अड सोल पमत्त सम्म बत्तीसा।
मिच्छंमि य छण्णउई ठावेज्जा सोहणनिमित्तं ॥१२६॥
जोगतिगेणं मिच्छे नियनियचउवीसगाहिं सेसाणं।
गुणिऊणं पिंडेज्जा सेसा उदयाण परिसंखा ॥१२७॥

शब्दार्थ—**अपमत्तसासणेसु**—अप्रमत्त और सासादन में, **अड**—आठ, **सोल**—सोलह, **पमत्त**—प्रमत्त में, **सम्म**—अविरतसम्यग्दृष्टि में, **बत्तीसा**—बत्तीस, **मिच्छंमि**—मिथ्यात्व में, **य**—और, **छण्णउई**—छियानवै, **ठावेज्जा**—स्थापित करना चाहिये, **सोहणनिमित्तं**—कम करने के लिये।

जोगतिगेणं—योगत्रिक से, **मिच्छे**—मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के, **नियनियचउवीसगाहिं**—अपनी-अपनी चौबीसी की संख्या द्वारा, **सेसाणं**—शेष गुणस्थानों के, **गुणिऊणं**—गुणा करके, **पिंडेज्जा**—जोड़ करें, **सेसा**—कम करने से, **उदयाण**—उदयभंगों की, **परिसंखा**—पूर्ण संख्या।

गाथार्थ—अप्रमत्त और सासादन गुणस्थान में आठ, प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सोलह, अविरतसम्यग्दृष्टि में बत्तीस और मिथ्यात्व में छियानवै कम करने के लिये स्थापित करना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि के स्थापने योग्य अंकों को योगत्रिक से और शेष गुणस्थानों के स्थापने योग्य अंकों को उस-उस गुणस्थान की चौबीसी की संख्या से गुणा करना चाहिये तथा गुणा करके उनका जोड़ करके उसे कुल संख्या में से कम करने पर उदयभंगों की कुल संख्या प्राप्त होती है।

विशेषार्थ—'अपमत्तसासणेसु अड' अर्थात् अप्रमत्तसंयत और सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान सम्बन्धी कम करने के लिये आठ-आठ तथा प्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी सोलह—'सोल पमत्त' एवं अविरत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टि गुणस्थान सम्बन्धी बत्तीस—'सम्म बत्तीसा' और मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान सम्बन्धी छियानवै स्थापित करना चाहिये। जिसका विशेषता के साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

आहारककाययोग में वर्तमान अप्रमत्तसंयत को स्त्रीवेद नहीं होता है और स्त्रीवेद में एक-एक चौबीसी में आठ-आठ भंग होते हैं। इसीलिये अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में कम करने योग्य आठ स्थापित करने का संकेत किया है।

वैक्रियमिश्रकाययोग में वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि को नपुंसक-वेद नहीं होता है और नपुंसकवेद में एक-एक चौबीसी में आठ-आठ भंग होते हैं। अतएव सासादन गुणस्थान में कम करने योग्य आठ स्थापित करना कहा है।

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग में वर्तमान प्रमत्त यति को स्त्रीवेद नहीं होता है।

स्त्रीवेद में आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के प्रत्येक चौबीसी में आठ-आठ भंग होते हैं। इसीलिये प्रमत्तसंयत गुणस्थान में कम करने के लिये दोनों के आठ-आठ, कुल सोलह स्थापित करना चाहिये।

औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि को स्त्रीवेद और नपुसंकवेद नहीं होता है। स्त्रीवेद नपुंसकवेद के प्रत्येक चौबीसी में आठ-आठ और दोनों मिलकर सोलह भंग होते हैं। इसलिये सोलह तथा वैक्रियमिश्र और कार्मणकाययोग में वर्तमान अविरतसम्यग्दृष्टि के स्त्रीवेद नहीं होता है। अतएव वहां भी पूर्वोक्त रीति से सोलह कुल बत्तीस स्थापित करना चाहिये।

वैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि के उस प्रत्येक योग में अनन्तानुबंधि के उदय बिना की चार-चार चौबीसी होती हैं। चार चौबीसी के छियानवै भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो उक्त तीन योग में से किसी योग में नहीं होते हैं। इसलिये छियानवै स्थापित करने का संकेत किया है।

अब जिस गुणस्थान में जितने स्थाप्य कहे हैं, उनको उस गुणस्थान संबन्धी चौबीसियों के साथ गुणा करना चाहिये। जिससे कम करने योग्य भंगों की संख्या प्राप्त होती है। जैसे कि सासादनगुणस्थान में आठ स्थापित करने का संकेत किया है और उस गुणस्थान में चार चौबीसी होती हैं, अतएव आठ को चार से गुणा करने पर बत्तीस होते हैं, जो कम करने योग्य भंग हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मणकाययोग इन प्रत्येक काययोग में चार-चार चौबीसियां होती ही नहीं हैं, अतएव चार चौबीसियों को चार से गुणा करने पर प्रत्येक योग के कम करने योग्य भंग प्राप्त होते हैं। जो छियानवै होते हैं।

इस प्रकार से स्थापना करने के योग्य अंकों को स्थापित करने के बाद असंभवी संख्या प्राप्त करने की प्रक्रिया यह है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्थापना योग्य छियानवै भंग बताये हैं, वे छियानवै वैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण इन तीनों योगों में नहीं होते हैं। अतएव उनका तीनों योगों से गुणा करने पर (९६ × ३ = २८८) दो सौ अठासी होते हैं।

गाथा में शेष अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में आठ आदि अंक स्थापित करना बताया है। उनको उस-उस गुणस्थान की चौबीसियों से गुणा करना चाहिये। अर्थात् जिस गुणस्थान की जितनी चौबीसियां हैं, उनके साथ उस गुणस्थान के स्थाप्य अंकों का गुणा करना चाहिये। जैसे कि अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आठ चौबीसी हैं। अतः उनके साथ उस गुणस्थान के स्थाप्य आठ का गुणा करने पर कम करने योग्य चौंसठ प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार सासादन गुणस्थान में चार चौबीसी हैं। उनसे उस गुणस्थान के स्थाप्य आठ को गुणा करने पर बत्तीस होते हैं। प्रमत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयतगुणस्थान में आठ चौबीसी हैं। उनको उस गुणस्थान संबन्धी स्थाप्य अंक सोलह से गुणा करने पर एक सौ अट्ठाईस होते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में आठ चौबीसी हैं। इसलिये उनके साथ उसके स्थाप्य बत्तीस अंक का गुणा करने पर दो सौ छप्पन होते हैं।

उक्त कथन का सारांश यह हुआ कि गुणस्थानों के कम करने योग्य भंगों की स्थापना इस प्रकार है—२८८, ६४, ३२, १२८, २५६। इन सबका जोड़ कुल मिलाकर सात सौ अड़सठ होता है। जो पूर्वोक्त उदयभंग की संख्या में से कम करना चाहिये। ऐसा करने पर शेष उदयभंगों की संख्या अर्थात् योगगुणित भंगों की पूर्वोक्त कुल संख्या चौदह हजार एक सौ उनहत्तर (१४१६९) प्राप्त होती है।

अब कम करने योग्य पदों को प्राप्त करने के उपाय का कथन करते हैं—

चउवीसाइगुणेज्जा पयाणि अहिगिच्च मिच्छ छन्नउइ।
सेसाणं धुवगेहिं एगीकिच्चा तओ सोहे ॥१२८॥

शब्दार्थ—**चउवीसाइगुणेज्जा**—चौबीस से गुणा करना चाहिये, **पयाणि-अहिगिच्च**—पदों की अपेक्षा, **मिच्छ**—मिथ्यात्व में, **छन्नउइ**—छियानवै, **सेसाणं**—शेष गुणस्थान के, **धुवगेहिं**—ध्रुवपदों के साथ, **एगीकिच्चा**—जोड़कर, **तओ**—तत्पश्चात्, **सोहे**—कम करना चाहिये।

गाथार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान में पदों की अपेक्षा छियानवै का चौबीस से गुणा करना चाहिये और शेष गुणस्थानों के स्थाप्य अंकों का ध्रुवपदों के साथ गुणा करके और तत्पश्चात् जोड़कर पद की कुल संख्या में से कम करना चाहिये।

विशेषार्थ—गाथा में शोध्य पद—कम करने योग्य पदों को प्राप्त करने की विधि बताई है—

पदापेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में छियानवै को चौबीस से गुणा करना चाहिये और छियानवै के साथ गुणा करने का कारण यह है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि मिथ्यात्व गुणस्थान में वैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण इन प्रत्येक योग में अनन्तानुबंधि के उदय बिना की सात के उदय की एक, आठ के उदय की दो और नौ के उदय की एक इस प्रकार चार चौबीसी नहीं होती हैं।

उनमें सात के उदय में सात पद और आठ के उदय की दो चौबीसी होने से आठ को दो से गुणा करने पर सोलह पद तथा नौ के उदय में नौ पद लेना चाहिये। जो सब मिलाकर बत्तीस पद होते हैं। ये बत्तीस पद वैक्रियमिश्र आदि तीन योगों में नहीं होते हैं। इसलिये बत्तीस के साथ तीन का गुणा करने पर छियानवै होते हैं। ये छियानवै पद चौबीसियों के आश्रित हैं। अतएव छियानवै का चौबीस से गुणा करने पर (९६×२४=२३०४) तेईस सौ चार पद होते हैं।

इसी प्रकार शेष सासादन आदि गुणस्थानों के स्थाप्य अंकों का भी अपने-अपने ध्रुवपदों के साथ गुणा करना चाहिये। सासादन संबन्धी पूर्वोक्त आठ का बत्तीस से गुणा करने पर दो सौ छप्पन होते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि संबन्धी बत्तीस का अपने साठ ध्रुवपदों के साथ गुणा करने पर उन्नीस सौ बीस, प्रमत्तसंयत संबन्धी सोलह का अपने चवालीस ध्रुवपदों के साथ गुणा करने पर सात सौ चार और अप्रमत्तसंयत संबन्धी आठ का अपने चवालीस ध्रुवपदों के साथ गुणा करने पर तीन सौ बावन होते हैं।

ये सभी त्याज्य पद जोड़ करने पर पचपन सौ छत्तीस (५५३६) होते हैं। उनको पूर्व में बताई गई गुणस्थानों के पदों की पूर्ण संख्या में से कम करने पर गुणस्थानों में संभव पदों की कुल संख्या पंचानवै हजार सात सौ सत्रह (९५७१७) होती है।

इस प्रकार से मोहनीय कर्म संबन्धी पूर्व में नहीं कहे गये विशेष का विवरण जानना चाहिये। अब नामकर्म संबन्धी विशेष का प्रतिपादन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्म विषयक विशेष विवेचन

बंधोदयसंताइं गुणेसु कहियाइ नामकम्मस्स।
गइसु य अव्वगडंमि वोच्छामि इंदिएसु पुणो ॥१२६॥

शब्दार्थ—**बंधोदयसंताइं**—बंध, उदय और सत्ता स्थानों का, **गुणेसु**—गुणस्थानों में, **कहियाइ**—कथन किया, **नामकम्मस्स**—नामकर्म के, **गइसु**—गतियों में, **य**—और, **अव्वगडंमि**—अव्याकृत—नहीं कहे गये, **वोच्छामि**—कथन करता हूं, **इंदिएसु**—इन्द्रियों में, **पुणो**—पुनः।

गाथार्थ—पूर्व में नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का कथन करने के प्रसंग में यद्यपि सामान्य से गुणस्थानों और गतियों में बंध, उदय और सत्ता स्थानों का वर्णन किया है। लेकिन अब वहाँ नहीं कहे गये विशेष का बोध करने के लिये गति, गुणस्थान और इन्द्रियों आदि में विस्तार से कथन करता हूँ।

विशेषार्थ—यह प्रतिज्ञा गाथा है कि यद्यपि पूर्व में नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का विचार किया है। परन्तु वह प्रसंग किसी विशेष गुणस्थान या गति में बंध आदि स्थानों के प्रतिपादन करने के लिये नहीं होने से सामान्य रूप से किया गया है तथा

सामान्य रूप में किये गये उक्त विचार का सुगमता से बोध कराने के लिये गुणस्थानों और जीवस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थानों का विस्तार से विचार करते हैं। उसमें भी पहले गुणस्थानों में बंध आदि स्थानों का वर्णन करते हैं। जो इस प्रकार है—

मिथ्यात्व गुणस्थान—में नामकर्म के तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये छह बंधस्थान हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में चारों गति के जीव होते हैं और वे यथायोग्य चारों गति के योग्य बंध करते हैं। जिससे उक्त बंधस्थान संभव हैं। मात्र तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक युक्त बंधस्थान यहां नहीं होते हैं।

इन बंधस्थानों में से कौन किस गति के योग्य और उनके बंधक कौन हैं आदि को इस प्रकार जानना चाहिये—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर तेईस प्रकृतिक बंधस्थान का बंध होता है। उसका बंध करने पर बादर और सूक्ष्म के प्रत्येक और साधारण के साथ चार भंग होते हैं। अर्थात् अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य तेईस प्रकृतियों को कोई बादर और प्रत्येक के साथ, कोई बादर और साधारण के साथ, कोई सूक्ष्म और प्रत्येक के साथ तथा कोई सूक्ष्म और साधारण के साथ बांधता है। जिससे तेईस का बंध चार प्रकार से होता है। अन्यत्र भी भंगों की भावना इसी प्रकार समझना चाहिये।

इस अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृति के बंधक एकेन्द्रियादि सभी तिर्यंच और मनुष्य हैं।[1] वे चारों विकल्प से तेईस प्रकृतियों का बंध करते हैं। देव यद्यपि एकेन्द्रिययोग्य बंध करते हैं, परन्तु वे प्रत्येक-बादर-पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करते हैं, सूक्ष्म-साधारण या अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध नहीं करते हैं।

पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य और अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य योग्य बंध करने पर पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान बंधता है। उसमें पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर बीस भंग होते हैं और अपर्याप्त विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्ययोग्य पच्चीस प्रकृति का बंध करने पर प्रत्येक का एक-एक भंग होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान के पच्चीस भंग होते हैं।[2]

इस पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान के बंधक भी तेईस प्रकृतियों के बंधक की तरह समझना चाहिये। मात्र प्रत्येक-बादर-पर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य पच्चीस प्रकृतियों का बंध ईशान स्वर्ग तक के देव करते हैं।

---

१. युगलिक तिर्यंच और मनुष्य मात्र देवगति में ही जाने से देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान के सिवाय अन्य कोई बंधस्थान का बंध नहीं करते हैं।

२. इसी प्रकरण की गाथा ६० के विवेचन में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतएव देवाश्रयी वह बंधस्थान भी ग्रहण करना चाहिये। देव स्थिर-शुभ-यशःकीर्ति के साथ अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से आठ विकल्पों द्वारा एकेन्द्रिययोग्य पच्चीस प्रकृतियों का बंध करते हैं तथा मनुष्य और तिर्यंच तो यथायोग्य रीति से पच्चीस भंगों द्वारा पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान का बंध करते हैं।

पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर छब्बीस प्रकृतियों का बंध होता है और उनके बंध के सोलह भंग होते हैं। यह बंधस्थान बादर पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य है। क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिययोग्य बांधने पर आतप या उद्योत का बंध नहीं होता है। इस बंधस्थान के बंधक एकेन्द्रिययोग्य पच्चीस के जो बंधक कहे हैं, वे सभी हैं।

देवगतियोग्य या नरकगतियोग्य बंध करने पर अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध होता है। उनमें देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधने पर स्थिर-शुभ-यशःकीर्ति का अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति के साथ परावर्तन करने पर आठ भंग होते हैं तथा नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध होने पर अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति का ही बंध होने से और अन्य परावर्तमान अशुभ प्रकृतियां ही बंधने से एक ही भंग होता है। इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान के कुल नौ भंग हैं।

इन दोनों प्रकार के अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान के बंधक पर्याप्त अवस्था में वर्तमान गर्भज मनुष्य, तिर्यंच और संमूर्च्छिम तिर्यंच हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में अपर्याप्तावस्था में रहते तिर्यंच या मनुष्य देवगति या नरकगति योग्य बंध नहीं करते हैं। इसीलिये पर्याप्तावस्था का ग्रहण किया है और एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय तो नरक या देवगति योग्य प्रकृतियों का बंध ही नहीं करते हैं।

पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य योग्य बंध करने पर नामकर्म की उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है। उसमें पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय योग्य बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने पर प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं, तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य बांधने पर छियालीस सौ आठ और इतने ही भंग अर्थात् छियालीस सौ आठ भंग मनुष्य योग्य बंध करने पर होते हैं। सब मिलाकर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के बानवै सौ चालीस (९२४०) भंग होते हैं।

तीर्थंकर नाम सहित देवगति योग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान मिथ्यादृष्टि को नहीं होता है। क्योंकि तीर्थंकरनाम का बंध सम्यक्त्व रूप हेतु द्वारा होता है और मिथ्यादृष्टि को वह हेतु नहीं है। इसलिये देवगति योग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि को होता नहीं है। किन्तु तिर्यंच या मनुष्य प्रायोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक चारों गति के जीव हैं। चारों गति के जीव यथायोग्य रीति से तिर्यंच या मनुष्य गति योग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। मात्र विकलेन्द्रिय योग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य और तिर्यंच ही होते हैं, देव या नारक नहीं। देव या नारक मात्र संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच या पर्याप्त गर्भज मनुष्य गति योग्य ही बंध करते हैं। अन्य कोई योग्य बंध नहीं करते हैं। मात्र देव बादर पर्याप्त पृथ्वी, बादर पर्याप्त अप् और बादर पर्याप्त प्रत्येक वनस्पति काय योग्य बंध करते हैं। तथा—

पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य बंध करने पर उद्योत नामकर्म के साथ नामकर्म के तीस प्रकृतिक बंधस्थान का बंध होता है। उसमें पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय योग्य तीस प्रकृतियों को बांधने पर प्रत्येक के आठ-आठ भंग तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य बंध करने पर छियालीस सौ आठ भंग होते हैं और कुल मिलाकर तीस प्रकृतिक बंधस्थान के छियालीस सौ बत्तीस (४६३२) भंग होते हैं।

तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतियोग्य तीस प्रकृतिक एवं आहारकद्विक सहित देवगतियोग्य तीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बंधयोग्य ही नहीं हैं। क्योंकि तीर्थंकरनाम का बंधकारण सम्यक्त्व है और आहारकद्विक का संयम कारण है परन्तु ये दोनों कारण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नहीं होने से तीर्थंकरनाम सहित मनुष्य प्रायोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान या आहारकद्विक सहित देव प्रायोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान मिथ्यादृष्टि को नहीं होता है। इस बंधस्थान के बंधक भी उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के बंधक की तरह चारों गति के जीव हैं। मात्र विकलेन्द्रिय योग्य तीस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य और तिर्यंच हैं।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में बंधक भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा छह बंधस्थान होते हैं और इन तेईस प्रकृतिक आदि बंधस्थानों की भंग संख्या इस प्रकार है—

चउ पणवीसा सोलस नव चत्ताला सयाय बाणउइ।

बत्तीसुत्तर छायाल सया मिच्छस्स बंधविही॥

अर्थात् तेईस प्रकृतिक बंधस्थान के चार, पच्चीस प्रकृतिक के पच्चीस, छब्बीस प्रकृतिक के सोलह, अट्ठाईस प्रकृतिक के नौ, उनतीस प्रकृतिक के बानवें सौ चालीस और तीस प्रकृतिक के छियालीस सौ बत्तीस भंग होते हैं। इनका कुल जोड़ तेरह हजार नौ सौ छब्बीस (१३९२६) होता है।

यहां यह विशेष जानना चाहिये कि नामकर्म के आठ बंधस्थानों के कुल भंग तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस है। किन्तु उनमें से तीर्थंकरनामकर्म के साथ देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतिक स्थान के आठ भंग, तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतिप्रायोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान के आठ भंग, आहारकद्विक सहित देवगतियोग्य तीस प्रकृतिक का एक भंग, आहारकद्विक और तीर्थंकरनाम सहित देवगतियोग्य इकत्तीस प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग और यश:कीर्ति रूप एक प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग, कुल उन्नीस भंगों को कम करने पर मिथ्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिगुणस्थान में छह बंधस्थानों के उपर्युक्त (१३९४५—१९= १३९२६) तेरह हजार नौ सौ छब्बीस भंग होते हैं।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान सम्बन्धी नामकर्म के उक्त बंधस्थानों के कथन का सारांश यह है कि यद्यपि नामकर्म के तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक ये आठ बंधस्थान होते हैं।[1] इनमें से कोई तिर्यंचगति, कोई मनुष्यगति, कोई देवगति और कोई नरकगति प्रयोग्य बंधस्थान हैं और इस कारण उनके अनेक अवान्तर भेद भी हो जाते हैं। लेकिन यहाँ उन बंधस्थानों का गुणस्थानों में प्राप्ति की अपेक्षा विचार किया जा रहा है। अतएव अंतिम दो को छोड़कर शेष तेईस से लेकर तीस प्रकृतिक तक छह बंधस्थान मिथ्यात्व गुणस्थान में पाये जाते हैं।[2] इनमें भी तीर्थंकरनाम सहित देवगतिप्रायोग्य उनतीस प्रकृतिक, तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतिप्रायोग्य तीस प्रकृतिक एवं आहारकद्विक सहित देवगतिप्रायोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान के भंगों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। इनके अतिरिक्त सामान्य उनतीस व तीस प्रकृतिक बंधस्थान ग्रहण करना चाहिये।

इन बंधस्थानों में तेईस प्रकृतिक के बंधक मनुष्य तिर्यंच हैं एवं अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य है। पच्चीस प्रकृतिक के बंधक तिर्यंच, मनुष्य व देव हैं तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य प्रायोग्य है। छब्बीस प्रकृतिक के बंधक तिर्यंच, मनुष्य व देव हैं तथा पर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य बंधस्थान है। अट्ठाईस प्रकृतिक के बंधक पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य हैं व यह देव और नरकगति प्रायोग्य

---

१ दिगम्बर कर्म साहित्य में भी इसी प्रकार नामकर्म के आठ बंधस्थान माने हैं। देखिये गो० कर्मकांड गा० ५२१।

२ दिगम्बर कर्म साहित्य में मिथ्यात्व गुणस्थान सम्बन्धी नामकर्म के इसी प्रकार से तेईस से लेकर तीस प्रकृतिक तक छह बंधस्थान बताये हैं। देखें पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गा० ४०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उनतीस प्रकृति के बंधक तिर्यंच, मनुष्य, देव व नारक हैं तथा यह विकलत्रिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य व देवगति प्रायोग्य है। तीस प्रकृति के बंधक मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारक हैं तथा यह विकलत्रिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देवगति प्रायोग्य बंधस्थान है।[1]

इस प्रकार से मिथ्यादृष्टिगुणस्थान संबन्धी नामकर्म के बंधस्थानों का विवरण जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त उदयस्थानों का निरूपण करते हैं—

नामकर्म के बीस, इक्कीस और चौबीस से लेकर इकत्तीस प्रकृतिक तक आठ एवं नौ प्रकृतिक व आठ प्रकृतिक ये बारह उदयस्थान होते हैं।[2] उनमें से मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक ये नौ उदयस्थान होते हैं।[3] ये उदयस्थान किस तरह और उनके कितने-कितने प्रकार होते हैं, आदि समस्त वर्णन पूर्व में विस्तार से किया जा चुका है।[4] लेकिन संक्षेप में पुनः आवश्यक होने से यहाँ संकेत करते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थान में आहारकसंयत, वैक्रियसंयत एवं केवली सम्बन्धी उदयस्थान और उनके भंग नहीं होते हैं। जिससे इस गुणस्थान के कुल सात हजार सात सौ इकानवै (७७९१) भंगों में से आहारक संयत के पाँच उदयस्थानों के सात, वैक्रियसंयत के अट्ठाईस, उनतीस

---

१ इसी प्रकार से दिगम्बर साहित्य में भी नामकर्म के इन बंधस्थानों की प्रायोग्यता का विचार किया गया है। देखिये गो० कर्मकाण्ड गाथा ५२२, ५२३।

२ दिगम्बर साहित्य में भी नामकर्म के इन्हीं प्रकृति संख्या वाले नामकर्म के बारह उदयस्थान माने हैं। देखिए गो० कर्मकाण्ड गा० ५९२।

३ दिगम्बर साहित्य में भी मिथ्यात्वगुणस्थान में इसी प्रकार के नौ उदयस्थान बताये हैं। देखिए पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गा० ४०२।

४ इसी अधिकार की गाथा ७३ से ९१ तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तीस प्रकृतिक इन तीन उदयस्थानों के एक-एक कुल तीन और तीर्थंकर, अतीर्थंकर के दस उदयस्थानों में से सामान्य मनुष्य में नहीं गिने गये आठ भंग कुल अठारह भंगों को कम करने पर सात हजार सात सौ तेहत्तर (७७७३) उदयभंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के इकतालीस भंग होते हैं—एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रिय के नौ, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के नौ, मनुष्य के नौ, देव के आठ, नारक का एक। इनका कुल योग इकतालीस होता है।

चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भंग हैं और यह उदयस्थान एकेन्द्रियों के ही होता है। अन्य किन्हीं भी जीवों के चौबीस प्रकृतियों का उदय नहीं होता है।

पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान के बत्तीस भंग इस प्रकार होते हैं—एकेन्द्रिय के सात, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के आठ, वैक्रिय मनुष्य के आठ, देवों के आठ और नारकों का एक। इन सबका जोड़ बत्तीस है।

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान के छह सौ भंग इस प्रकार हैं—एकेन्द्रिय के तेरह, विकलेन्द्रिय के नौ, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दो सौ नवासी, मनुष्य के दो सौ नवासी। कुल छह सौ हुए।

सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान के इकत्तीस भंग होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—एकेन्द्रिय के छह, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के आठ, वैक्रिय मनुष्य के आठ, देवों के आठ और नारकों का एक।

अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह सौ निन्यानवै भंग होते हैं। जो विभिन्न जीवों की अपेक्षा इस प्रकार हैं—विकलेन्द्रियों के छह, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के पाँच सौ छियत्तर, वैक्रिय तिर्यंच के सोलह, मनुष्य के पाँच सौ छियत्तर, वैक्रिय मनुष्य के आठ, देवों के सोलह और नारकों का एक। कुल मिलाकर इनका जोड़ ग्यारह सौ निन्यानवै होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के सत्रह सौ इक्यासी भंग विभिन्न जीवों की अपेक्षा इस प्रकार जानना चाहिये—विकलेन्द्रियों के बारह, तिर्यंचपंचेन्द्रिय के ग्यारह सौ बावन, वैक्रिय तिर्यंचपंचेन्द्रिय के सोलह, प्राकृत मनुष्य के पाँच सौ छियत्तर, वैक्रिय मनुष्य के आठ, देवों के सोलह और नारकों का एक।

तीस प्रकृतिक उदयस्थान के उनतीस सौ चौदह भंग हैं। विभिन्न जीवों की अपेक्षा वे इस प्रकार हैं—विकलेन्द्रियों के अठारह, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय के सत्रह सौ अट्ठाईस, वैक्रिय तिर्यंच के आठ, मनुष्य के ग्यारह सौ बावन और देवों के आठ।

इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह सौ चौंसठ भंग इस प्रकार जानना चाहिये—विकलेन्द्रिय के बारह और तिर्यंचपंचेन्द्रिय के ग्यारह सौ बावन। जो कुल मिलाकर ग्यारह सौ चौंसठ हुए।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में अपने नौ उदयस्थानों के सब मिलाकर सात हजार सात सौ तिहत्तर (७७७३) भंग होते हैं।

इस प्रकार से मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के उदयस्थान एवं उनके भंगों को जानना चाहिये। यद्यपि नामकर्म के उदयस्थान बारह हैं और उन सबके कुल भंग बीस आदि प्रकृति रूप उदयस्थान के क्रम से १, ४२, ११, ३३, ६००, ३३, १२०२, १७८५, २६१७, ११६५, १, १ हैं और जिनका कुल जोड़ सात हजार सात सौ इक्यानवै है। किन्तु मिथ्या-दृष्टिगुणस्थान में आहारकसंयत, वैक्रियसंयत और केवली सम्बन्धी भंग सम्भव नहीं होने से केवली के आठ, आहारकसंयत के सात और उद्योत सहित वैक्रिय मनुष्य के तीन भंग कुल अठारह भंगों को कम कर देने पर सात हजार सात सौ तिहत्तर भंग प्राप्त होते हैं। जिनका ऊपर उल्लेख किया चुका है।

अब मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के सत्तास्थान बतलाते हैं। नामकर्म के कुल सत्तास्थान बारह हैं। जो इन प्रकृति समुदाय रूप हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, छियासी, अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर, छिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्तर, पचहत्तर, नौ, और आठ प्रकृतिक ।[1] इनमें से मिथ्यादृष्टि के छह सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—बानवै, नवासी, अठासी, छियासी, अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक ।[2] इनमें से बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गति के आहारकचतुष्क की सत्ता वाले मिथ्या-दृष्टियों के होता है तथा मिथ्यादृष्टि के आहारक और तीर्थंकर नाम की एक साथ सत्ता नहीं होने से तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

किसी जीव ने नरकायु का बंध करने के बाद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपार्जित कर तीर्थंकरनाम का निकाचित बंध किया। तत्पश्चात् वह जीव नरक में जाते अपनी आयु के चरम अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यात्वी होकर नरक में गया और वहाँ पर्याप्त होने के बाद पुनः क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपार्जित करे। ऐसे जीव को मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तीर्थंकरनाम की सत्ता अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होती है। जिससे तीर्थंकरनाम युक्त नवासी प्रकृतियों की सत्ता अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थान में संभव होने से नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यात्व गुणस्थान में बताया है।

आहारकचतुष्क और तीर्थंकर नाम रहित अठासी प्रकृतिक सत्ता-स्थान चारों गति के मिथ्यादृष्टियों के संभव है। अठासी की सत्ता वाला यथायोग्य रीति से एकेन्द्रियों में जाकर देवद्विक या नरकद्विक की उद्वलना करे तब छियासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। छियासी प्रकृतियों की सत्ता वाले एकेन्द्रिय अनुद्वलित देवद्विक या नरकद्विक और वैक्रिय चतुष्क की उद्वलना करें तब अस्सी प्रकृतिक

---

१. दि० साहित्य में ६४, ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६ प्रकृतिक ये तेरह सत्तास्थान ताये हैं। देखिए गो. कर्मकाण्ड गाथा ६०६

२. दिगम्बर साहित्य में ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक ये छह सत्तास्थान बताये हैं। देखिये पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गा. ४०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्थान होता है। तेज, वायुकायिक जीवों में जाकर मनुष्यद्विक की उद्वलना करें तब अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। मनुष्य-द्विक की उद्वलना तेज-वायुकाय में गया जीव ही करता है, अन्य कोई नहीं करता है। तेज और वायुकाय में से निकलकर विकलेन्द्रिय या तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो और जब तक मनुष्यद्विक को न बांधे, तब तक यानि अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त उनको भी अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तत्पश्चात् वे अवश्य मनुष्यद्विक का बंध करते हैं, जिससे उनको अस्सी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार सामान्य से मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में बंध, उदय और सत्तास्थानों का कथन करके अब उनके संवेध का विचार करते हैं—

अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों को बांधते मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्वगुणस्थान के उदययोग्य सप्रभेद सभी नौ उदयस्थान जानना चाहिये। अर्थात् नौ में से किसी भी उदयस्थान में और उनके किसी भी भंग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि तेईस प्रकृतियों का बंध करता है। मात्र इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इन छह उदयस्थानों में देवों और नारकों संबन्धी संभव भंग नहीं होते हैं। क्योंकि तेईस प्रकृतियां अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य बंध करने पर बंधती हैं किन्तु देव वहाँ उत्पन्न नहीं होने से अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। नारक भी तेईस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। क्योंकि नारकों के तो एकेन्द्रिययोग्य किसी भी बंधस्थान का बंध नहीं होता है। जिससे देवों और नारकों की अपेक्षा संभव उदयस्थानों और उनके भंगों का तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में निषेध किया है।[1]

सत्तास्थान पांच होते हैं। जो इस संख्यात्मक हैं—

१. जिन्होंने लब्धि प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर किया हो ऐसे मनुष्य तिर्यंच भी क्लिष्ट अध्यवसाय के द्वारा एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक। इक्कीस, चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के उदय में पाँचों सत्तास्थान होते हैं। यहाँ यह जानना चाहिये कि पच्चीस प्रकृतिक उदस्थान में अठहत्तर प्रकृतिक सत्वस्थान तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के ही होता है तथा छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के भी होता है और जो तेज व वायुकाय के जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, कुछ काल तक उनके भी होता है।

सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इन प्रत्येक उदयस्थानों में अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष चार-चार सत्तास्थान होते हैं।

कुल मिलाकर तेईस प्रकृतिक स्थान के बंधक के नौ उदयस्थान संबन्धी चालीस सत्तास्थान होते हैं।

इसी प्रकार पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों के बंधक के लिये भी समझना चाहिये। मात्र यहाँ अपने समस्त उदयस्थानों में वर्तमान देव भी पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों का बंध करते हैं तथा वे मात्र बादर-पर्याप्त पृथ्वी, अप् और प्रत्येक वनस्पति योग्य ही प्रकृतियों का बंध करने वाले होने से स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से होने वाले आठ भंगों से पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

देव सूक्ष्म, साधारण या अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले किसी भी जीवस्थान में उत्पन्न नहीं होते हैं। अतएव उनके योग से होने वाले कोई भी भंग देवों में नहीं होते हैं।

पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानों के सत्तास्थानों का विचार तेईस प्रकृतिक बंधस्थान जैसा करना चाहिये। जिससे पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक इन दो बंधस्थानों में चालीस-चालीस सत्तास्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि यहां देवों के अपने सभी उदयस्थानों में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान ही होते हैं, अन्य कोई सत्तास्थान नहीं होते हैं।

अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक मिथ्यादृष्टि को तीस और इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं।[1] अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान देव या नरक गति योग्य है और उसे पर्याप्त मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं। इसीलिये उक्त दो उदयस्थान ग्रहण किये हैं। उनमें से तीस प्रकृतिक उदयस्थान मनुष्य और तिर्यंच दोनों को होता है और इकत्तीस प्रकृति रूप उदयस्थान मात्र तिर्यंचों को ही होता है।

अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को बानवै, नवासी, अठासी, छियासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। उनमें देव या नरक गति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते तिर्यंच को तीस और इकत्तीस प्रकृति रूप उदयस्थान में बानवै, अठासी और छियासी प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं।

मनुष्य को देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधने पर उपर्युक्त तीन सत्तास्थान होते हैं और नरकगतियोग्य बंध करते मनुष्य को बानवै, नवासी, अठासी, छियासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान संभव हैं। उनमें बानवै और अठासी प्रकृतिक तो सामान्यतः होता है। अस्सी प्रकृतियों की सत्ता लेकर कोई एकेन्द्रिय जीव मनुष्य में उत्पन्न हो, वहां देवद्विक और वैक्रियचतुष्क अथवा नरकद्विक और वैक्रियचतुष्क बांधे तब छियासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तथा—

---

१. यहां दो उदयस्थान बताये हैं। इससे प्रतीत होता है कि उत्तर वैक्रिय शरीरी की विवक्षा नहीं की है। अन्यथा इसी अधिकार की गाथा ९९ में अट्ठाईस प्रकृतियों के बंध में पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में वैक्रिय शरीरी मिथ्यादृष्टि मनुष्यों और तिर्यंचों का भी ग्रहण किया है। अतः उस अपेक्षा यहां पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतिक आदि पांच इस तरह छह उदयस्थान भी हो सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकायु का बंध करने के बाद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपार्जन कर जिसने तीर्थंकर नामकर्म बाँधा हो, ऐसा कोई मनुष्य अपनी अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब परिणामों का परावर्तन होने से मिथ्यात्व में जाये और नरक में जाने के सन्मुख हुआ वह जीव वहाँ नरक गति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करता है तो ऐसे किसी मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा नरकयोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंध में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

तीर्थंकरनाम का बंधक देवों में जाने पर तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व लेकर जाता है जिससे देवयोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधने पर मिथ्यादृष्टि मनुष्य को नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है।

इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में देव या नरक योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधने पर नवासी प्रकृतिक के सिवाय तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थंकरनाम सहित है। निकाचित तीर्थंकर नाम की सत्ता वाला कोई भी जीव तिर्यंचगति में उत्पन्न होता नहीं है।[1] जिससे नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यंचगति में होता नहीं है।

इस प्रकार गति के भेद बिना सामान्य से तीस प्रकृतियों के उदय में चार और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में तीन, कुल सात सत्तास्थान अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में होते हैं।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान मनुष्यगतियोग्य, तिर्यंचगतियोग्य और देवगतियोग्य इस तरह तीन प्रकार का है। उनमें से देवगतियोग्य के सिवाय शेष विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते मिथ्यादृष्टि को सामान्य से पूर्व में कहे

---

१. यहां निकाचित तीर्थंकरनाम की ही विवक्षा है। क्योंकि अनिकाचित तीर्थंकर नाम की सत्ता लेकर तो तिर्यंचगति में जाने से कोई विरोध नहीं है। एतद्विषयक समाधान पूर्व में बंधविधि प्ररूपणा अधिकार में विस्तार से किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गये नौ ही उदयस्थान होते हैं और सत्तास्थान बानवै, नवासी, अठासी, छियासी, अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक[1] ये छह होते हैं। इनमें इक्कीस प्रकृतियों के उदय में छहों सत्तास्थान होते हैं और उनमें भी इक्कीस प्रकृतियों के उदय में मनुष्ययोग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान पूर्व में कहे गये अनुसार जिस मनुष्य ने तीर्थंकरनाम का बंध किया है और मिथ्यात्वी होकर नरक में गया है। वैसे नारक को समझना चाहिये।

बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान देव, नारक, (एकेन्द्रिय) विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन सबको होता है। छियासी और अस्सी प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होते हैं और अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है।

मनुष्य या तिर्यंचगति योग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते चौबीस प्रकृतियों के उदयस्थान में वर्तमान एकेन्द्रियों के नवासी प्रकृतिक के सिवाय शेष पाँच सत्तास्थान होते हैं। यह उदयस्थान मात्र एकेन्द्रियों के ही होता है, अन्य किसी को नहीं होता है। इसलिये चौबीस प्रकृतियों के उदयस्थान में वर्तमान एकेन्द्रियों को होता है, यह संकेत किया है।

१. किसी भी तिर्यंच या मनुष्य योग्य बंध करते मनुष्य को बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। तिर्यंचों के अठहत्तर के साथ पांच होते हैं। नारक को तिर्यंचगतियोग्य बंध करने पर बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो और मनुष्ययोग्य बंध करने पर नवासी प्रकृतिक के साथ तीन होते हैं। देवों के मनुष्य, तिर्यंच के योग्य बंध करने पर बानवै, अठासी प्रकृतिक ये दो होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी बंध, उदय और सत्तास्थानों के पूर्वापर संबन्ध को ध्यान में रखकर विचार करना चाहिये,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान में छहों सत्तास्थान होते हैं। इनका विचार पूर्ववत् इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान जैसा करना चाहिये।

छब्बीस प्रकृतियों के उदय में नवासी प्रकृतिक के सिवाय पांच सत्तास्थान होते हैं और उनका विचार पूर्ववत् करना चाहिये। इस उदयस्थान में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान न होने का कारण यह है कि मिथ्यादृष्टि होने पर नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान नरक में उत्पन्न होते नारकी को होता है, अन्य किसी को नहीं होता है। नारक को छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता, इसीलिये इस उदयस्थान में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान में अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष पाँच सत्तास्थान होते हैं। उनमें नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान पूर्वोक्त स्वरूप वाले नारकी की अपेक्षा होता है। पूर्वोक्त स्वरूप वाले नारक को अपने सभी उदयस्थानों में नवासी प्रकृतियों की सत्ता होती है। बानवै और अठासी प्रकृतियों की सत्ता देव, नारक, मनुष्य, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन सभी को होती है। छियासी, अस्सी प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यापेक्षा होता है। इस उदयस्थान में अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान तो होता नहीं है। क्योंकि सत्ताईस प्रकृतियों का उदय तेज और वायुकाय के जीवों के सिवाय आतप या उद्योत के उदय वाले एकेन्द्रियों अथवा नारकों और देवों के होता है। उनको अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान होता नहीं है। क्योंकि उनको अवश्य मनुष्यद्विक का बंध संभव है।

अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में भी यही पाँच सत्तास्थान जानना चाहिये। उनमें से अठासी, नवासी और बानवै प्रकृतिक का विचार तो पूर्व की तरह करना चाहिये। यानि देवों में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो, नारकों में बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक ये तीन और मनुष्य तिर्यंचों में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान होते हैं। छियासी और अस्सी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यापेक्षा समझना चाहिये। देव और नारकों में ये दो सत्तास्थान नहीं होते हैं।

उनतीस प्रकृतियों के उदय में भी इसी प्रकार यही पाँच सत्तास्थान समझना चाहिये।

तीस प्रकृतिक उदयस्थान में बानवै, अठासी, छियासी और अस्सी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। ये सत्तास्थान विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों सम्बन्धी समझना चाहिये। तीस प्रकृतियों का उदय देव, मनुष्य, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों के होता है। उनमें से देवों के बानवै और अठासी प्रकृतिक, मनुष्यों और विकलेन्द्रियादि तिर्यंचों को बानवै, अठासी, छियासी और अस्सी प्रकृतिक इस प्रकार सत्तास्थान होते हैं।

इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में भी यही चार सत्तास्थान होते हैं। इकत्तीस प्रकृतियों का उदय विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को ही होता है। अतः उपर्युक्त सत्तास्थान भी उनको ही होते हैं।

सब मिलाकर उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर मिथ्यादृष्टि को पैंतालीस सत्तास्थान होते हैं।

देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियां मिथ्यादृष्टि को बंधती नहीं है, इसका कारण पूर्व में कहा जा चुका है।

मनुष्यगति और देवगति योग्य तीस प्रकृतियों के बंध के सिवाय विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य तीस प्रकृतियों को बांधने पर मिथ्यादृष्टि को सामान्य से पूर्व में कहे नौ ही उदयस्थान होते हैं और नवासी प्रकृतिक के सिवाय शेष पाँच सत्तास्थान होते हैं। नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान न होने का कारण यह है कि नवासी प्रकृतियों की सत्ता वाले को तिर्यंचगतियोग्य बंध ही नहीं होता है।

इक्कीस, चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों में वे पांचों सत्तास्थान पूर्व की तरह समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इन प्रत्येक उदयस्थान में अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष चार-चार सत्तास्थान समझना चाहिये। अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान के निषेध का कारण पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये। सब मिलाकर तिर्यंचगतियोग्य तीस प्रकृतियों को बाँधने पर मिथ्यादृष्टि को चालीस सत्तास्थान होते हैं।

तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध होता है और आहारकद्विक सहित देवगतियोग्य तीस प्रकृतियाँ बंधती हैं। वे दोनों बंधस्थान मिथ्यादृष्टि को नहीं होते हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक का बंध होता ही नहीं है।

इस प्रकार से मिथ्यात्व गुणस्थान संबन्धी बंध, उदय और सत्तास्थानों का संवेध जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये उक्त समग्र कथन का प्रारूप पृष्ठ २६९-२७० पर देखिए।

सासादनगुणस्थान—अब इस गुणस्थान के बंध, उदय और सत्तास्थान एवं उनके संवेध का विचार करते हैं।

सासादनगुणस्थान में अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं।[1] इनमें से अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान के दो प्रकार हैं—१. देवगतियोग्य, २. नरकगतियोग्य। किन्तु सासादनगुणस्थान में नरकगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध नहीं होकर देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध होता है और उसके बंधक पर्याप्तावस्था में वर्तमान गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य हैं। उसका बंध करने पर स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के परावर्तन द्वारा आठ भंग होते हैं। अर्थात् इन आठ प्रकारों में से किसी भी एक प्रकार से मनुष्य और तिर्यंच अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

---

१ दिगम्बर साहित्य में भी इसी प्रकार की प्रकृति संख्या वाले तीन बंधस्थान सासादनगुणस्थान में माने हैं। देखो पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गा. ४०३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वगुणस्थान में नामकर्म के बंधादिस्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२३ प्र.	२१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
	२४ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२५ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२६ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२७ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२८ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२९ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३० ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३१ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
२५ प्र.	२१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
	२४ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२५ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२६ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२७ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२८ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२९ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३० ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३१ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
२६ प्र.	२१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
	२४ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२५ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२६ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ ,,
	२७ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२८ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	२९ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३० ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,
	३१ ,,	९२, ८८, ८६, ८० ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान	
२८ प्र.	२१ प्र.	९२, ८०	प्र.
	२५ ,,	९२, ८८	,,
	२६ ,,	९२, ८८	,,
	२७ ,,	९२, ८८	,,
	२८ ,,	९२, ८८	,,
	२९ ,,	९२, ८८	,,
	३० ,,	९२, ८९, ८८, ८६	,,
	३१ ,,	९२, ८८, ८६	,,
२९ प्र.	२१ प्र.	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८	प्र.
	२४ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८	,,
	२५ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८	,,
	२६ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८	,,
	२७ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०,	,,
	२८ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०,	,,
	२९ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०,	,,
	३० ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०,	,,
	३१ ,,	९२, ८९, ८८, ८६	,,
३० प्र.	२१ प्र.	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८	प्र.
	२४ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८,	,,
	२५ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८	,,
	२६ ,,	९२, ८८, ८६, ८०, ७८	,,
	२७ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०	,,
	२८ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०	,,
	२९ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०	,,
	३९ ,,	९२, ८९, ८८, ८६, ८०	,,
	३१ ,,	९२, ८८, ८६, ८०,	,,
योग ६	५३	२३३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनगुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य अथवा मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। तीर्थंकरनाम युक्त देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का यहाँ बंध नहीं होता है। क्योंकि यहाँ तद्योग्य अध्यवसाय के अभाव में तीर्थंकरनाम का बंध संभव नहीं है।

यहाँ भंग चौंसठ सौ (६४००) होते हैं। जो इस प्रकार हैं—यद्यपि सासादनगुणस्थान वाले जीव तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधस्थान का बंध करते हैं, किन्तु उक्त बंधस्थान हुँडक संस्थान या सेवार्त संहनन युक्त नहीं बांधते हैं। क्योंकि हुँडक संस्थान और सेवार्त संहनन का बंध मिथ्यात्वगुणस्थान में ही होता है। इसलिये तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य उनतीस प्रकृतियों को बांधने पर पाँच संहनन, पाँच संस्थान, विहायोगतिद्विक, स्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशः-कीर्ति के साथ परस्पर परावर्तन करने से बत्तीस सौ (३२००) भंग होते हैं। अर्थात् सभी प्रकृतियाँ परावर्तमान होने से उनका परस्पर परावर्तन करने पर उनतीस प्रकृतियों का बंध बत्तीस सौ प्रकार से होता है।

इसी प्रकार मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध भी बत्तीस सौ प्रकार से होता है। इन दोनों को जोड़ने पर कुल मिलाकर चौंसठ सौ भंग होते हैं। तथा—

सासादनगुणस्थान में वर्तमान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी तिर्यंच पंचेन्दिय, मनुष्य, देव और नारक उद्योतनाम युक्त तिर्यंचगति योग्य तीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। परन्तु तथाप्रकार के अध्यव-साय के अभाव में तीर्थंकरनाम युक्त मनुष्यगतियोग्य तीस या आहा-रकद्विक युक्त देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

यहाँ भी जैसे पूर्व में उनतीस प्रकृतियों का बंध होने पर बत्तीस सौ भंग बताये हैं, उसी प्रकार तिर्यंचगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर भी बत्तीस सौ भंग होते हैं। तीनों बंधस्थानों के कुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलाकर छियानवै सौ आठ (६६०८) भंग होते हैं। एतद् विषयक गाथा इस प्रकार है—

अट्ठ सया चोसट्ठी बत्तीससया य सासणे भेया।
अट्ठावीसाइसु सव्वाणट्ठहिय छन्नउइ॥

अर्थात् सासादनगुणस्थान में अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधस्थान के आठ, उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के चौंसठ सौ और तीस प्रकृतिक बंधस्थान के बत्तीस सौ भंग होते हैं और इनका कुल जोड़ छियानवै सौ आठ है।

अब सासादनगुणस्थान के उदयस्थानों का निर्देश करते हैं कि वे इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक, इस प्रकार सात हैं।[1] उनमें से—

इक्कीस प्रकृतियों का उदय पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले बादर पृथ्वी, जल और प्रत्येक वनस्पति रूप एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के होता है। इन सभी जीवों के अपर्याप्तावस्था में शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले सासादन होता है। सासादनभाव को लेकर कोई भी जीव नरक में उत्पन्न नहीं होता है, जिससे तद् विषयक इक्कीस प्रकृतियों का उदय नहीं होता है।

इक्कीस प्रकृतियों के उदय में एकेन्द्रिय के बादर पर्याप्त के साथ यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से संभव दो भंग यहाँ होते हैं, अन्य कोई भंग नहीं होता है। क्योंकि सूक्ष्म और अपर्याप्त में सासादन सम्यक्त्वी उत्पन्न नहीं होता है। इसी कारण विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को भी अपर्याप्त नामकर्म के साथ ही जो एक-एक भंग होता है वह सासादन में नहीं होता है, परन्तु शेष भंग होते हैं। जिससे एकेन्द्रिय के दो, विकलेन्द्रिय के दो-दो कुल छह तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-

१ दिगम्बर साहित्य में भी सासादन गुणस्थान सम्बन्धी सात उदयस्थान बताये हैं। देखो पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गाथा ४०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से होने वाले आठ, इसी प्रकार के मनुष्यों के आठ और देवों के आठ, कुल मिलाकर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के बत्तीस भंग होते हैं।

चौबीस प्रकृतियों का उदय एकेन्द्रिय में उत्पन्न मात्र को होता है। यहाँ भी बादर पर्याप्त के साथ यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने पर संभव जो दो भंग हैं वही होते हैं। क्योंकि सासादन सम्यग्-दृष्टि के सूक्ष्म, साधारण एवं तेज व वायुकाय में उत्पन्न नहीं होने से सूक्ष्मादि के साथ होने वाले कोई भी भंग नहीं होते हैं।

पच्चीस प्रकृतियों का उदय देव में उत्पन्नमात्र को होता है। यहाँ आदेय-अनादेय, सुभग-दुर्भग और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से संभव आठ भंग होते हैं।

छब्बीस प्रकृतियों का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्नमात्र को होता है। उनमें से विकलेन्द्रियों के प्रत्येक के दो-दो कुल छह, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के छह संहनन, छह संस्थान, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के परावर्तन से होने वाले दो सौ अठासी और इसी प्रकार से होने वाले मनुष्य के दो सौ अठासी, कुल मिलाकर पाँच सौ बयासी भंग होते हैं। अपर्याप्त नामकर्म के उदय के साथ होने वाला जो एक भंग, वह यहाँ संभव नहीं है। क्योंकि अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले जीवों में सासादन-गुणस्थान वाले उत्पन्न नहीं होते हैं। जिससे अपर्याप्त नामकर्म के साथ होने वाले भंगों के सिवाय उपर्युक्त शेष भंग संभव हैं।

सासादन सम्यग्दृष्टि को सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान नहीं होते हैं। क्योंकि वे उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त बीतने पर होते हैं और सासादन भाव तो उत्पन्न होने के बाद कुछ कम छह आवलिका मात्र काल ही होता है। इसलिये ये दो उदयस्थान सासादनगुणस्थान में घटित नहीं होते हैं।

उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त देवों और नारकों को होता है। उनतीस प्रकृतियों के उदय वाले देव या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारक उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर अनन्तानुबंधिकषाय के उदय से गिरकर सासादनगुणस्थान प्राप्त करते हैं। उनमें से देवों के उनतीस प्रकृतियों के उदय में पूर्व में कहे गये आठ भंग होते हैं और नारक को एक ही भंग होता है। क्योंकि नारक को सुभग, आदेय और यशः-कीर्ति नाम का उदय नहीं होता है। कुल मिलाकर उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के नौ भंग होते हैं।

तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर वहाँ से पतन कर समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त तिर्यंचों, मनुष्यों और उत्तर वैक्रिय शरीर में वर्तमान देवों के होता है। उनमें से तीस प्रकृतिक उदयस्थान में वर्तमान तिर्यंचों के छह संहनन, छह संस्थान, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, विहायोगतिद्विक और सुस्वर-दुःस्वर के साथ परावर्तन करने पर ग्यारह सौ बावन भंग, मनुष्यों को भी उतने ही भंग अर्थात् ग्यारह सौ बावन व देवों को आठ भंग होते हैं। नारकों के उद्योत का उदय नहीं होता है। जिससे उनको तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी नहीं होता है। सब मिलाकर तीस प्रकृतिक उदयस्थान के तेईस सौ बारह (२३१२) भंग होते हैं।

इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त कर पतित पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय को ही होता है और यहाँ ऊपर कहे अनुसार ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं।

इन सब भंगों की प्ररूपक गाथा इस प्रकार है—

बत्तीस दोन्नि अट्ठ य बासीय सया य पंचनव उदया।
बाराहीया तेवीसा बावन्नेक्कारससया य॥

अर्थात् इक्कीस प्रकृतिक उदय के बत्तीस, चौबीस प्रकृतिक उदय के दो, पच्चीस प्रकृतिक उदय के आठ, छब्बीस प्रकृतिक उदय के पाँच सौ बयासी, उनतीस प्रकृतिक उदय के नौ, तीस प्रकृतिक उदय के तेईस सौ बारह और इकत्तीस प्रकृतिक उदय के ग्यारह सौ बावन भंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं और कुल मिलाकर इन सात उदयस्थानों के सासादनगुणस्थान में चार हजार सत्तानवै भंग होते हैं।

अब सासादनगुणस्थान के सत्तास्थानों को बतलाते हैं। इस गुणस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं।[1] इनमें से जो कोई जीव आहारकचतुष्क को बांधकर उपशम श्रेणि से गिरकर सासादन भाव को प्राप्त करता है उसे बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, अन्य को नहीं होता है और आहारकचतुष्क का बंध किये बिना गिरकर आये हुए चारों गति के सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

अब संवेध का कथन करते हैं—अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करने पर सासादन सम्यग्दृष्टि के तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस प्रकार दो उदयस्थान होते हैं। क्योंकि सासादनगुणस्थान में अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध देवगतिप्रायोग्य ही होता है और वह बंध उसे करणपर्याप्तावस्था में ही होता है। जिससे यहां अन्य कोई उदयस्थान संभव नहीं है।

यहाँ मनुष्य संबन्धी तीस प्रकृतियों के उदय में दोनों सत्तास्थान होते हैं और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा मात्र अठासी प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है। क्योंकि बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान आहारकचतुष्क का बंध करके उपशमश्रेणि से गिरने पर होता है और तिर्यंचों में तो उपशम श्रेणि होती ही नहीं है। इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान में एक अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि इकत्तीस प्रकृतियों का उदय तिर्यंच पंचेन्द्रियों को ही होता है। बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान न होने के कारण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

---

१. दिगम्बर साहित्य में मात्र नब्बै प्रकृतिक एक सत्तास्थान माना है—
'संतणउदीयं'—सत्वस्थानमेकं नवतिकम्। कुत? तीर्थंकराऽऽहारकद्विकसत्त्वकर्मयुक्तो जीवः सासादनगुणस्थानं न प्रतिपद्यते तेन सत्त्वस्थानं नवतिकम्। —पंचसंग्रह, सप्ततिका अधिकार गा. ४०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगति योग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करने पर सातों उदयस्थान होते हैं। अर्थात् उन सातों उदयस्थानों में से जिसको जो-जो उदयस्थान होता है, उस-उस उदयस्थानवर्ती वे मनुष्यगतियोग्य या तिर्यंचगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। उसमें अपने-अपने उदयस्थानवर्ती एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारकों के सासादनगुणस्थान में एक अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है और मात्र तीस प्रकृतिक उदयस्थान में वर्तमान मनुष्य को उपशम श्रेणि से गिरने पर यदि उसने आहारकचतुष्क का बंध किया हो तो सासादनगुणस्थान में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।[1]

तीस प्रकृतियों के बंधक के लिये भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

सभी उदयस्थानों में सब मिलाकर सामान्य से अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में दो, तिर्यंचगतियोग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में दो, मनुष्ययोग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में दो और तिर्यंचगतियोग्य तीस प्रकृतिक बंधस्थान में दो, इस प्रकार आठ सत्तास्थान होते हैं।

---

१. सासादन गुणस्थान में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान आहारकचतुष्क बांधकर उपशम श्रेणि से गिरकर सासादन में आने वाले को होता है। इसीलिये मनुष्य को ही तीस प्रकृतियों के उदय में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान बताया है। यहाँ प्रश्न यह है कि उपशम श्रेणि से गिरकर सासादन में आने वाला वहीं कालधर्म प्राप्त कर सासादन भाव लेकर देवगति में जाये तो देव संबन्धी इक्कीस, पच्चीस, प्रकृतियों के उदय में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान क्यों नहीं बताया है ? क्योंकि वैमानिक देव का आयु बांधकर उपशमश्रेणि पर आरूढ़ होकर गिरने वाला सासादनगुणस्थान में कालधर्म को प्राप्त कर उस गुणस्थान को लेकर वैमानिक देवों में जा सकता है तो वहाँ मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों को बाँधने पर इक्कीस, पच्चीस प्रकृतियों के उदय में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान भी संभव है। परन्तु उसको नहीं बताया है। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त समग्र कथन का संक्षिप्त सारांश यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तो चौदह जीवभेदों में होता है और वहां चारों गति योग्य बंध होता है। परन्तु सासादन में नरकगति के सिवाय तीन गति योग्य बंध होता है। सासादन गुणस्थान पर्याप्तनाम के उदय वाले बादर पृथ्वी, जल और प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, देव, मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय को शरीर-पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले एवं देव, नारक, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य को पर्याप्तावस्था में होता है। अपर्याप्तावस्था में वर्तमान उपर्युक्त समस्त जीव मनुष्यगति योग्य उनतीस एवं तिर्यंचगति योग्य उनतीस तथा तीस प्रकृतिक इस प्रकार दो बंधस्थानों का बंध करते हैं और पर्याप्तावस्था में वर्तमान देव, नारक मनुष्यगति योग्य उनतीस एवं तिर्यंचगति योग्य उनतीस, तीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान बांधते हैं तथा गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य देवगतियोग्य अट्ठाईस, मनुष्यगतियोग्य उनतीस तथा तिर्यंचगतियोग्य उनतीस, तीस प्रकृतिक बंधस्थानों को बांधते हैं। इस गुणस्थान में एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय या असंज्ञी पंचेन्द्रिय योग्य बंध नहीं होता है तथा शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले पृथ्वी, जल और प्रत्येक वनस्पति को इक्कीस, चौबीस, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य को इक्कीस छब्बीस, और देव के इक्कीस, पच्चीस प्रकृतिक ये दो-दो उदयस्थान होते हैं और पर्याप्तावस्था में देव को उनतीस, तीस, नारक को उनतीस, तिर्यंच को तीस, इकत्तीस और मनुष्य को तीस प्रकृतिक इस प्रकार उदयस्थान होते हैं। नारकों के अपर्याप्तावस्था में सासादन सम्यक्त्व नहीं होता है। अपने-अपने उदयस्थान में रहते वे जीव ऊपर कहे अनुसार बंधस्थान बांधते हैं। सासादनगुणस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक यही दो सत्तास्थान होते हैं। अपने-अपने उदय में रहते और अपने-अपने योग्य बंधस्थान बांधते उनको बानवै या अठासी में से कोई भी सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार से सासादनगुणस्थानवर्ती बंध, उदय और सत्तास्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं उनका संवेध जानना चाहिये। संक्षेप में उक्त वर्णन का दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

सासादन गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	३० प्र.	९२, ८८ प्र.
	३१ प्र.	८८ ,,
२९ प्र.	२१ प्र.	८८ प्र.
	२४ ,,	८८ ,,
	२५ ,,	८८ ,,
	२६ ,,	८८ ,,
	२९ ,,	८८ ,,
	३० ,,	९२, ८८ ,,
	३१ ,,	८८ ,,
३० प्र.	२१ प्र.	८८ प्र.
	२४ ,,	८८ ,,
	२५ ,,	८८ ,,
	२६ ,,	८८ ,,
	२९ ,,	८८ ,,
	३० ,,	९२, ८८ ,,
	३१ ,,	८८ ,,
योग ३	१६	१९

मिश्रगुणस्थान—अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के बंध-उदय-सत्तास्थानों और उनके संवेध का विचार करते हैं।

इस गुणस्थान की यह विशेषता है कि यह गुणस्थान गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य, देव और नारकों को पर्याप्तावस्था में ही होता है। इस गुणस्थान में देव और नारक मात्र मनुष्यगतियोग्य और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य तथा तिर्यंच मात्र देवगति योग्य ही बंध करते हैं। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर बंधादि स्थानों और उनके संवेध का विचार करना चाहिये।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य देवगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं। उसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के भेद से आठ भंग होते हैं। देव और नारकों के मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है। इसके भी ऊपर कहे अनुसार आठ भंग होते हैं। क्योंकि परावर्तमान अशुभ प्रकृतियों का इस गुणस्थान में बंध नहीं होता है, जिससे अन्य कोई भंग नहीं होते हैं।

उदयस्थान उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस प्रकार तीन होते हैं।[1] उनमें से तिर्यंचों के तीस, इकत्तीस प्रकृतिक, मनुष्यों के तीस प्रकृतिक, नारकों के उनतीस प्रकृतिक और देवों के भी उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इनमें से उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के देवापेक्षा सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के भेद से आठ भंग होते हैं और नारकापेक्षा एक ही भंग होता है। क्योंकि उनको सुभग आदेय और यशःकीर्ति का उदय नहीं होता है। सब मिलाकर नौ भंग होते हैं।

तीस प्रकृतिक उदय के तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा संपूर्ण पर्याप्तियों से पर्याप्तावस्था के जो ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं, उन्हीं को यहाँ भी समझना चाहिये, किन्तु भाषापर्याप्ति होने के पहले उद्योत के उदय के

---

१ दिगम्बर साहित्य में भी इसी प्रकार मिश्र गुणस्थान में बंधस्थान और उदयस्थान माने हैं—

मिस्सम्मि ऊणतीसं अट्ठावीसा हवंति बंधाणि।

इगितीसूणत्तीसं तीसं च य उदयठाणाणि॥

—दि० पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० ४०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकल्प के जो भंग होते हैं, उनको यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह गुणस्थान समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त होने के बाद ही होता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी तीस प्रकृतियों के ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं। कुल मिलाकर तीस प्रकृतिक उदयस्थान के तेईस सौ चार भंग होते हैं।

इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान के तिर्यंच पंचेन्द्रियों संबन्धी ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं। यह उदयस्थान मनुष्यों को नहीं होता है।

तीनों उदयस्थानों के कुल मिलाकर चौंतीस सौ पैंसठ भंग होते हैं।

सत्तास्थान बानवै और अठासी प्रकृतिक इस प्रकार दो होते हैं।[1] आहारकचतुष्क की सत्ता वाले को बानवै प्रकृतिक और उसकी सत्ता बिना को अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गति के जीवों के होता है।

अब इनके संवेध का निरूपण करते हैं—अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक सम्यग्मिथ्यादृष्टि को तीस और इकत्तीस प्रकृति रूप दो उदयस्थान होते हैं। इन दोनों उदयस्थानों में वर्तमान तिर्यंच और तीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान मनुष्य देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध करते हैं और उस समय इन दोनों उदयस्थानों में बानवै और अठासी प्रकृतिक इस तरह दो सत्तास्थान होते हैं।

मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक देव और नारक को उनतीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान होता है। उनतीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान देव और नारक मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों

---

१ दिगम्बर साहित्य में बानवै और नब्बै प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान बतलाये हैं—'तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला जीव मिश्र गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है। इसलिये उसके तेरानवै और इक्यानवै प्रकृतिक सत्तास्थान संभव नहीं हैं। शेष बानवै और नब्बे प्रकृतिक दो सत्तास्थान उसके होते हैं।

—दि० पंचसंग्रह सप्ततिका अधिकार गाथा ४०६

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

का बंध करते हैं, उस समय बानवै और अठासी प्रकृतिक में से कोई भी सत्तास्थान होता है।

इस तरह तीनों में के प्रत्येक उदयस्थान में दो-दो सत्तास्थान होने से सामान्यत: छह सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से मिश्रगुणस्थान संबन्धी बंध, उदय और सत्तास्थान एवं उनका संवेध जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये उक्त कथन का दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

मिश्र गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	३० प्र.	९२, ८८ प्र.
	३१ ,,	९२, ८८ ,,
२९ प्र.	२९ प्र.	९२, ८८ ,,
योग २	३	६

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान—इस गुणस्थान में वर्तमान जीव को अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये तीन बंधस्थान होते हैं। इनमें से अविरतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों और मनुष्यों के देवगतियोग्य बंध करने पर अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। उसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति के भेद से आठ भंग होते हैं।

इस गुणस्थान वाले अन्य किसी भी गतियोग्य बंध नहीं करते हैं। अतएव यहां नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरनाम सहित देवगति योग्य बंध करने पर मनुष्यों को उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है और इसके भी पूर्वोक्त प्रकार से आठ भंग होते हैं। मनुष्यगतियोग्य बंध करते देव और नारकों के उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इसके भी यही आठ भंग होते हैं। तथा—

तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतियोग्य तीस का बंध करने पर उनको तीस प्रकृतिक बंधस्थान भी होता है और उसके भी पूर्वोक्तानुसार आठ ही भंग होते हैं।

इस गुणस्थान में आठ उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस प्रकृतिक।

इनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव चारों गति संबन्धी समझना चाहिये। क्योंकि पूर्वबद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि की उक्त चारों गतियों में उत्पत्ति संभव है। अविरत-सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त नामकर्म के उदय वालों में उत्पन्न नहीं होते हैं। इसलिये अपर्याप्त के उदयस्थान में होने वाले भंगों को छोड़कर शेष भंग यहाँ समझना चाहिये और ऐसे भंग पच्चीस हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—तिर्यंच पंचेन्द्रिय संबन्धी आठ, मनुष्य संबन्धी आठ, देव संबन्धी आठ और नारकी संबन्धी एक। कुल मिलाकर ये पच्चीस होते हैं।

पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान देव, नारक और वैक्रिय तिर्यंच-मनुष्यों की अपेक्षा समझना चाहिये। इनमें से नारक क्षायिक या वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं और देव तीनों प्रकार के सम्यक्त्व वाले होते है।[1] यहाँ भंग अपने-अपने सभी समझना चाहिये।

---

१ 'पणवीससत्तवीसौदया देवनेरइए उव्विय वेतिरिमणुए य पडुच्च, नेरइगो खवइवेयगा सम्मद्दिट्ठी, देवो तिविह सम्मद्दिट्ठीविति।'

—सप्ततिका चूर्णि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक और वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को होता है। औपशमिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं। इसीलिये औपशमिक सम्यक्त्व को यहाँ ग्रहण नहीं किया है। तिर्यंचों में वेदक सम्यग्दृष्टित्व बाईस की सत्ता वाले (असंख्य वर्ष की आयु वाले) तिर्यंचापेक्षा समझना चाहिये।

अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियों में होता है। तीस प्रकृतियों का उदय तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के तथा इकत्तीस प्रकृतियों का उदय तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है।

इन प्रत्येक उदयस्थान में भंग अपने-अपने सामान्य उदयस्थानों में कहे अनुसार सभी समझना चाहिये।

इस गुणस्थान में तेरानवै, बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। इनमें से जो अप्रमत्त या अपूर्वकरण गुणस्थान में वर्तमान जीव तीर्थंकर और आहारकद्विक युक्त देवगति योग्य इक्कीस प्रकृतियों का बंध कर परिणामों के परावर्तन से वहां से गिरकर अविरतसम्यग्दृष्टि हों अथवा मरण कर देव हों तो उनकी अपेक्षा तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

आहारकद्विक का बंध कर परिणामों के परावर्तन द्वारा गिरकर चार में से किसी भी गति में उत्पन्न हों, और उस-उस गति में जाकर पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करें तो ऐसे जीवों की अपेक्षा बानवै प्रकृतिक तथा मात्र देव और मनुष्य में मिथ्यात्व प्राप्त नहीं करने वाले को भी

अर्थात् पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतियों का उदय देवों और नारकों की अपेक्षा एवं उत्तरवैक्रिय तिर्यंच और मनुष्यों की अपेक्षा होता है। उनमें नारक क्षायिक और वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं और देव तीनों प्रकार के सम्यक्त्व युक्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।[1]

नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान अविरतसम्यग्दृष्टि देव, नारक और मनुष्यों को होता है। क्योंकि ये तीनों गति वाले जीव तीर्थंकरनाम का बंध कर सकते हैं। तिर्यंचों में तीर्थंकर नाम की सत्ता वाला उत्पन्न भी नहीं होता है। इसलिये तिर्यंच का ग्रहण नहीं किया है। अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान सामान्य से चारों गति वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के होता है।

इस प्रकार से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान के बंध, उदय और सत्तास्थानों को जानना चाहिये अब इनके संवेध का निरूपण करते हैं।

देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य और तिर्यंचों के यथायोग्य प्रकार से आठ उदयस्थान होते हैं। उनमें से पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान वैक्रिय तिर्यंच और मनुष्यों की अपेक्षा होता है। अपने-अपने उदय में रहते वे अट्ठाईस प्रकृतियों का बध करते हैं और एक-एक (प्रत्येक) उदयस्थान में बानवै और अठासी उदय प्रकृतिक इस तरह दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

उनतीस प्रकृतियों का बंध देवगतियोग्य और मनुष्यगतियोग्य, इस तरह दो प्रकार का है। उसमें देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान तीर्थंकरनाम युक्त है और उसका बंध मनुष्य ही करते हैं। इसके उदयस्थान इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इस प्रकार सात हैं। इन उदयस्थानों में वर्तमान मनुष्य देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

---

१ क्योंकि मनुष्य तो उपशम श्रेणि से गिरता-गिरता अविरत गुणस्थान में आता है और श्रेणि में काल करके सम्यक्त्व युक्त वैमानिक देव में उत्पन्न होता है। जिससे सम्यक्त्व से नहीं गिरने वाले मनुष्य और देव के बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान घटित हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इकत्तीस प्रकृतियों का उदय मनुष्यों में नहीं होता है। प्रत्येक उदयस्थान में तेरानवै और नवासी प्रकृतिक इस तरह दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध देव और नारक करते हैं। उनमें नारकों के इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान होते हैं और देवों के उक्त पांच और छठा तीस प्रकृतिक इस तरह छह उदयस्थान होते हैं। उनमें तीस प्रकृतिक उदयस्थान के उद्योत के वेदक देवों के समझना चाहिये। अपने-अपने उदयस्थानों में वर्तमान देवों और नारकों को मनुष्ययोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है और प्रत्येक उदयस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक इस तरह दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

मनुष्यगतियोग्य तीर्थंकरनाम युक्त तीस प्रकृति अविरतसम्यग्दृष्टि देव और नारक बांधते हैं। उनमें से देवों के ऊपर कहे अनुसार छहों उदयस्थान होते हैं और उन प्रत्येक उदयस्थान में तेरानवै और नवासी प्रकृतिक इस तरह दो-दो सत्तास्थान जानना चाहिये। नारकों के तीस प्रकृतियों का बंध करने पर पांच उदयस्थान होते हैं और उन प्रत्येक उदयस्थान में एक मात्र नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि तीर्थंकर नाम और आहारकचतुष्क इन दोनों की संयुक्त सत्ता होने पर कोई भी जीव नरकगति में उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये उनको तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान संभव नहीं है।

इस प्रकार सामान्य से इक्कीस से लेकर तीस प्रकृतिक उदयस्थानों में के प्रत्येक उदयस्थान में तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी इस प्रकार चार सत्तास्थान होते हैं और इकत्तीस प्रकृतिक उदयस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर ये तीस सत्तास्थान होते हैं।

संक्षेप में उक्त विवेचन का सारांश इस प्रकार है—

यह गुणस्थान चारों गति के जीवों को करण-अपर्याप्तावस्था और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्तावस्था में होता है। अपर्याप्तावस्था में नया सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु सम्यक्त्व को साथ लेकर चारों गति में जा आ सकता है। अतएव अपर्याप्तावस्था में भी यह गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानवर्ती देव और नारक मनुष्यगतियोग्य उनतीस और तीर्थंकरनाम सहित तीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। मनुष्य देवगतियोग्य अट्ठाईस और तीर्थंकरनाम सहित उनतीस प्रकृतियों को और तिर्यंच मात्र अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधते हैं। चारों गति के जीव अपने-अपने उदयस्थानों में रहते उपर्युक्त बंधस्थान बांधते हैं। सत्तास्थान तेरानवै, बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक ये चार होते हैं। इनमें से देवगति में चारों, नरकगति में तेरानवै के सिवाय तीन, मनुष्यगति में चारों और तिर्यंचगति में बानवै एवं अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान संबन्धी बंध, उदय, सत्तास्थान एवं तत्संबन्धी संवेध जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये जिसका प्रारूप पृष्ठ २८७ पर देखिए।

देशविरत गुणस्थान—के बंध, उदय और सत्तास्थानों का विवरण इस प्रकार है—

यह गुणस्थान संख्यात वर्ष के आयु वाले मनुष्य और तिर्यंचों के ही होता है और वह भी पर्याप्तावस्था में ही। अतएव इस गुणस्थान में अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। इनमें से अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान देशविरत मनुष्यों या तिर्यंचों[1] के देवगति-योग्य प्रकृतियों का बंध करने पर होता है और स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के भेद से आठ भंग होते हैं और उक्त

१ यह गुणस्थान संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों के होता है और उन्हें उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। संख्यात वर्ष की आयु वालों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	२१ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२५ ,,	९२, ८८ ,,
	२६ ,,	९२, ८८ ,,
	२७ ,,	९२, ८८ ,,
	२८ ,,	९२, ८८ ,,
	२९ ,,	९२, ८८ ,,
	३० ,,	९२, ८८ ,,
	३१ ,,	९२, ८८ ,,
२९ प्र.	२१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
	२५ ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
	२६ ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
	२७ ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
	२८ ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
	२९ ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
	३० ,,	९३, ९२, ८९, ८८ ,,
३० प्र.	२१ प्र.	९३, ८९ प्र.
	२५ ,,	९३, ८९ ,,
	२७ ,,	९३, ८९ ,,
	२८ ,,	९३, ८९ ,,
	२९ ,,	९३, ८९ ,,
	३० ,,	९३, ८९ ,,
योग ३	२१	५६

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान को तीर्थंकरनाम युक्त करने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है और यह बंधस्थान मात्र मनुष्यों के ही होता है। क्योंकि तिर्यंचों के तीर्थंकरनाम का बंध होता ही नहीं है। इसके भी उक्त आठ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ छह उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक। इनमें से आदि के चार उदयस्थान वैक्रिय तिर्यंच और मनुष्यों को होते हैं तथा इस गुणस्थान में दुर्भग, अनादेयं और अयशःकीर्ति का उदय नहीं होने से चारों उदयस्थानों में एक-एक ही भंग होता है।

तीस प्रकृतिक उदयस्थान वैक्रिय तिर्यंच एवं स्वभावस्थ तिर्यंच-मनुष्यों के भी होता है। इसके भंग एक सौ चवालीस होते हैं। जो छह संस्थान, छह संहनन, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति-अप्रशस्त विहायोगति नाम के परावर्तन से होते हैं। दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का उदय गुण के प्रभाव से ही देशविरत को होता नहीं है। जिससे तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं। इकत्तीस प्रकृतियों का उदय तिर्यंचों के ही होता है। उसके भी ऊपर कहे एक एक सौ चवालीस भंग होते हैं।

इस गुणस्थान में तेरानवै, बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक इस प्रकार चार सत्तास्थान होते हैं। इनमें यदि कोई अप्रमत्त या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक बांधकर परिणामों के ह्रासोन्मुखी होने से देशविरति हो तो उसे तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और शेष सत्तास्थानों का विचार अविरत-सम्यग्दृष्टि की तरह समझना चाहिये।

अब इनके संवेध का कथन करते हैं—

देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक देशविरत मनुष्य को पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान होते हैं। इनमें से आदि के चार उदयस्थान वैक्रिय मनुष्य और पांचवां स्वभावस्थ मनुष्य को होता है। इन प्रत्येक उदयस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक इस तरह दो-दो सत्तास्थान होते हैं। देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक देशविरत तिर्यंच को भी ऊपर कहे अनुसार पांच एवं छठा इकत्तीस प्रकृतिक इस प्रकार छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान होते हैं। इन प्रत्येक उदयस्थान में भी बानवै एवं अठासी प्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

तीर्थंकरनाम युक्त देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध देशविरत मनुष्यों के ही होता है। उसमें पहले मनुष्य को जो और जिस प्रकार से पांच उदयस्थान कहे हैं, वे उसी प्रकार से पांच उदयस्थान होते हैं। प्रत्येक उदयस्थान में तेरानवै और नवासी प्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार देशविरत गुणस्थान में पच्चीस से तीस तक के पांच उदयस्थानों में चार-चार सत्तास्थान और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में दो सत्तास्थान, इस प्रकार कुल बाईस सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से देशविरतगुणस्थान के बंधादि स्थान और उनका संवेध जानना चाहिये। सुगमता से समझने के लिये जिसका प्रारूप इस प्रकार है—

देशविरत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि स्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	२५ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२७ ,,	९२, ८८ ,,
	२८ ,,	९२, ८८ ,,
	२९ ,,	९२, ८८ ,,
	३० ,,	९२, ८८ ,,
	३१ ,,	९२, ८८ ,,
२९ प्र.	२६ ,,	९३, ८९ ,,
	२७ ,,	९३, ८९ ,,
	२८ ,,	९३, ८९ ,,
	२९ ,,	९३, ८९ ,,
	३० ,,	९३, ८९ ,,
योग २	११	२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान—यह तथा इससे आगे के सभी गुणस्थान संयत मनुष्य को ही होते हैं। इस गुणस्थान सम्बन्धी बंध, उदय और सत्तास्थानों का विवरण इस प्रकार है—

इस गुणस्थान में अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। जो देशविरत की तरह समझना चाहिये तथा पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान होते हैं। ये सभी उदयस्थान वैक्रियसंयत और आहारकसंयत को होते हैं तथा अंतिम तीस प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ संयत को भी होता है।

वैक्रियसंयत और आहारकसंयत के पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में एक-एक भंग होता है। अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो-दो और तीस प्रकृतिक उदयस्थान का एक-एक भंग होता है। यानि वैक्रियसंयत के सात और आहारकसंयत के सात कुल चौदह भंग होते हैं।

तीस प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ संयत को भी होता है और उसके देशविरति की तरह एक सौ चवालीस भंग होते हैं।

तेरानवै, नवासी, बानवै और अठासी प्रकृतिक इस तरह चार सत्तास्थान होते हैं। जिनका विचार देशविरत गुणस्थान के समान कर लेना चाहिये।

अत्र इनके संवेध का कथन करते हैं—

देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक प्रमत्तसंयत को उपर्युक्त पांचों उदयस्थानों में बानवै और अठासी प्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं। मात्र आहारकसंयत के प्रत्येक उदयस्थान में एक बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि आहारक की सत्ता वाला ही आहारकशरीर की विकुर्वणा कर सकता है। वैक्रियसंयत को दोनों सत्तास्थान संभव हैं।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तीर्थंकरनाम युक्त देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक संयत को उपर्युक्त पांचों उदयस्थानों में तेरानवै और नवासी प्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं। मात्र आहारकसंयत को तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान तीर्थंकरनाम युक्त होने से उसकी सत्ता भी अवश्य होती है। वैक्रिय संयत और स्वभावस्थ संयत को दोनों सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार प्रमत्तसंयत को अपने समस्त उदयस्थानों में सामान्य से चार-चार सत्तास्थान संभव हैं। जिससे कुल मिलाकर बीस सत्तास्थान होते हैं।

इस तरह से प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध, उदय और सत्तास्थान एवं उनके संवेध का विवेचन जानना चाहिये। सुगमता से बोध करने के लिये प्रारूप इस प्रकार है—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादि के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	२५ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२७ ,,	९२, ८८ ,,
	२८ ,,	९२, ८८ ,,
	२९ ,,	९२, ८८ ,,
	३० ,,	९२, ८८ ,,
२९ प्र.	२५ प्र.	९३, ८९ प्र.
	२७ ,,	९३, ८९ ,,
	२८ ,,	९३, ८९ ,,
	२९ ,,	९३, ८९ ,,
	३० ,,	९३, ८९ ,,
योग २	१०	२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान--अब क्रमप्राप्त अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध, उदय, सत्तास्थानों और उनके संवेध का प्रतिपादन करते हैं।

इस गुणस्थान में अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस तरह चार बंधस्थान होते हैं। उनमें से आदि के दो प्रमत्तसंयत गुणस्थान की तरह समझना चाहिये। आहारकद्विकयुक्त देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर तीस का तथा तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक इन तीनों का एक साथ बंध करने पर इकत्तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यहाँ प्रत्येक बंधस्थान का एक-एक भंग ही होता है। क्योंकि इस गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति का बंध नहीं होता है।

इस गुणस्थान में उनतीस और तीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं। उनमें जो कोई प्रमत्तसंयत आहारक या वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा करके उसकी समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त हो इस गुणस्थान में आये, उसे उनतीस प्रकृतियों का उदयस्थान होता है। इस उदयस्थान के वैक्रिय सम्बन्धी एक और आहारक सम्बन्धी एक इस प्रकार कुल दो भंग होते हैं। उद्योत का उदय होने के बाद तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी यहाँ होता है। इसके पूर्व की तरह दो भंग होते हैं। इस प्रकार वैक्रियसंयत के दो और आहारकसंयत के दो, कुल चार भंग होते हैं। स्वभावस्थ अप्रमत्तसंयत को भी तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उसके एक सौ चवालीस भंग होते हैं। वे भग प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बताये गये अनुसार जानना चाहिये।

इस गुणस्थान में भी पूर्व में कहे गये अनुसार तिरानवै, बानवै, नवासी, अठासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं।

अब इनके संवेध का निर्देश करते हैं—

इस गुणस्थान में अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक को दोनों उदयस्थानों में अठासी प्रकृतिक, उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के दोनों उदयस्थानों में नवासी प्रकृतिक, तीस प्रकृतियों को बांधने वाले को दोनों उदय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानों में बानवै प्रकृतिक और इकत्तीस प्रकृतियों के बंधक को दोनों उदयस्थानों में तिरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योंकि जिसने तीर्थंकरनाम का निकाचित बंध किया है, वह उसकी बंधयोग्य भूमिका में प्रति समय अवश्य तीर्थंकरनाम कर्म का बंध करता है। इसी प्रकार आहारक का बंध होने के बाद भी उसकी बंधयोग्य भूमिका में आहारकद्विक का बंध होता रहता है। इसलिये प्रत्येक बंध में एक-एक सत्तास्थान संभव है। कुल मिलाकर आठ सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंधादि स्थान और उनका संवेध जानना चाहिये। जिसका प्रारूप इस प्रकार है—

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नामकर्म के बंधादिस्थानों में संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र	२६ प्र.	८८ प्र.
	३० ,,	८८ ,,
२६ प्र.	२६ प्र.	८६ प्र.
	३० ,,	८६ ,,
३० प्र.	२६ प्र.	६२ प्र.
	३० ,,	६२ ,,
३१ प्र.	२६ प्र.	६३ प्र.
	३० ,,	६३ ,,
योग ४	८	१६

अपूर्वकरण गुणस्थान—इस गुणस्थान के बंध-उदय-सत्तास्थान एवं इनके संवेध का वर्णन इस प्रकार है—

यह गुणस्थान चारित्रमोह के उपशमक या क्षपक को होता है। यहाँ अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक ये पांच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधस्थान होते हैं। इनमें से आदि के चार का स्वरूप अप्रमत्तसंयत के बंधस्थानों के समान समझना चाहिये और अपूर्वकरण के छठे भाग में देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने के बाद यशःकीर्ति का बंध रूप एक प्रकृतिक बंधस्थान होता है।

यहाँ तीस प्रकृतियों का उदय रूप एक ही उदयस्थान होता है। उसके चौबीस भंग होते हैं, जो वज्रऋषभनाराचसंहनन, छह संस्थान, सुस्वर-दुःस्वर और शुभ विहायोगति-अशुभ विहायोगति के परावर्तन द्वारा बनते हैं। लेकिन जिन आचार्यों का मत है कि आदि के तीन संहनन में से किसी भी संहनन वाला उपशम श्रेणि मांडता है, उनके मत से इन चौबीस को तीन संहनन से गुणा करने पर बहत्तर भंग होते हैं। इस प्रकार एक ही उदयस्थान और उसके भंग नौवें गुणस्थान में भी होते हैं।

सत्तास्थान पूर्व में कहे अनुसार तिरानवै, नवासी, बानवै और अठासी प्रकृतिक ये चार होते हैं।

अब इनके संवेध का निर्देश करते हैं—

तीस प्रकृतियों के उदय में वर्तमान अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीव को अठासी प्रकृतिक, उनतीस प्रकृतियों के बंधक को नवासी प्रकृतिक, तीस प्रकृतियों के बंधक को बानवै प्रकृतिक और इकत्तीस प्रकृतियों के बंधक को तिरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।

एक प्रकृतिक बंधक को चारों सत्तास्थान इस प्रकार जानना चाहिये कि चारों में से किसी भी बंधस्थान वाला देवगतियोग्य बंधविच्छेद होने के बाद एक प्रकृति का बंधक होता है और अट्ठाईस आदि प्रकृतियों के बंधक को अनुक्रम से अठासी प्रकृतिक आदि चारों सत्तास्थान कहे हैं, जिससे एक प्रकृति के बंधक को भी चारों सत्तास्थान संभव हैं।

इस प्रकार से अपूर्वकरण गुणस्थान के बंधादि स्थानों और उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवेध जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये जिसका प्रारूप इस प्रकार है—

अपूर्वकरणगुणस्थान में नामकर्म के बंधादिस्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
२८ प्र.	३० प्र.	८८ प्र.
२९ ,,	३० ,,	८९ ,,
३० ,,	३० ,,	९२ ,,
३१ ,,	३० ,,	९३ ,,
१ ,,	३० ,,	८८, ८९, ९२, ९३ प्र.
योग ५	५	८

अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान—के बंधादि स्थानों का निरूपण इस प्रकार हैं—

इस गुणस्थान में यशःकीर्ति नाम का बंध रूप एक बंधस्थान और तीस प्रकृति का उदय रूप एक उदयस्थान है और सत्तास्थान तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृति रूप आठ होते हैं। उनमें से प्रथम चार उपशमश्रेणि की अपेक्षा और क्षपक श्रेणि में जब तक तेरह प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ होता है, तब तक होते हैं और तेरह प्रकृतियों का क्षय होने के बाद अन्तिम चार सत्तास्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहां बंध, उदय और सत्तास्थानों के भेद का अभाव होने से संवेध नहीं होता है।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान—इस गुणस्थान में भी यशःकीर्ति का बंध रूप एक बंधस्थान, तीस प्रकृति का उदय रूप एक उदयस्थान होता है और सत्तास्थान नौवें गुणस्थान की तरह आठ होते हैं। उनमें से तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान उपशम श्रेणि में और अस्सी, उन्यासी, छियहत्तर, पचहत्तर, प्रकृतिक ये चार क्षपक श्रेणि में होते हैं तथा तीस प्रकृतिक उदयस्थान के चौबीस और बहत्तर भंग आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में जिस प्रकार बताये हैं, उसी प्रकार से नौवें और दसवें गुणस्थान में भी जानना चाहिये।

यहां भी संवेध संभव नहीं है।

इस प्रकार से पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों एवं उनके संवेध के बारे में जानना चाहिये। ग्यारहवें आदि आगे के गुणस्थानों में नामकर्म की प्रकृतियों का बंध तो नहीं होता है। किन्तु उदय और सत्ता होती है। अतएव ग्यारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के उदय और सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं।

उपशान्तमोहगुणस्थान—इस गुणस्थान में तीस प्रकृतियों का उदय रूप एक ही उदयस्थान होता है। उसके चौबीस अथवा बहत्तर भंग आठवें गुणस्थान की तरह समझना चाहिये तथा सत्तास्थान तेरानवै, नवासी, बानवै और अठासी प्रकृतिक ये चार हैं।

क्षीणमोह गुणस्थान—इस गुणस्थान में तीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान होता है। यह गुणस्थान क्षपकश्रेणि द्वारा प्राप्त होता है और क्षपक श्रेणि प्रथम संहनन से ही प्राप्त होती है, जिससे भंग चौबीस ही होते हैं। उसमें भी क्षीणमोहगुणस्थान में वर्तमान तीर्थंकरनाम की सत्तावालों के प्रथम संस्थान आदि शुभ प्रकृतियों का ही उदय होने से एक ही भंग होता है तथा अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। इनमें से उन्यासी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पचहत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान तीर्थंकरनामकर्म की सत्ता बिना के जीवों के तथा अस्सी, छियत्तर प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान तीर्थंकर-नाम की सत्तावालों के होते हैं।

सयोगिकेवलीगुणस्थान—सयोगिकेवली भगवन्तों को बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक इस तरह आठ उदयस्थान होते हैं। इन आठ उदयस्थानों और इनके भंगों का विचार सामान्य से जहां नामकर्म के उदयस्थानों का विचार किया है तदनुरूप जानना चाहिये।

सत्तास्थान अस्सी, उन्यासी, छियत्तर और पचहत्तर प्रकृतिक इस प्रकार चार होते हैं। उनमें उक्त उदयस्थानों में से जो-जो उदय-स्थान सामान्य केवली को होते हैं उनको उन्यासी और पचहत्तर में से कोई भी सत्तास्थान होता है और जो उदयस्थान तीर्थंकर भगवन्तों को होते हैं, उनमें अस्सी और छियत्तर में से कोई भी सत्तास्थान होता है। जिनका दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

सयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय और सत्तास्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
×	२० प्र.	७९, ७५ प्र.
	२१ ,,	८०, ७६ ,,
	२६ ,,	७९, ७५ ,,
	२७ ,,	८०, ७६ ,,
	२८ ,,	७९, ७५ ,,
	२९ ,,	८०, ७९, ७६, ७५ प्र.
	३० ,,	८०, ७९, ७६, ७५ ,,
	३१ ,,	८०, ७६ प्र.
योग ×	८	२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगिकेवलीगुणस्थान—इस गुणस्थान में आठ और नौ प्रकृतिक इस प्रकार दो उदयस्थान होते हैं। इनमें से आठ प्रकृतियों का उदय सामान्य अयोगिकेवली और नौ प्रकृतियों का उदय तीर्थंकर अयोगिकेवली को होता है तथा अस्सी, उन्यासी, छियत्तर, पचहत्तर, नौ और आठ प्रकृतिक ये छह सत्तास्थान होते हैं। उनमें से आठ प्रकृतिक उदयस्थान में उन्यासी, पचहत्तर और आठ प्रकृतिक ये तीन तथा नौ प्रकृतियों के उदय में अस्सी, छियत्तर और नौ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं तथा इनमें से भी आदि के दो-दो अयोगिकेवली के द्विचरम समय पर्यन्त और अंतिम समय में तीर्थंकर केवली को नौ प्रकृतिक एवं सामान्य केवली को आठ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त कथन का सुगमता से बोध कराने वाला प्रारूप इस प्रकार है—

अयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्तास्थानों के संवेध का प्रारूप

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
×	९ प्र. ८ ,,	८०, ७६, ९ प्र. ७९, ७५, ८ ,,
योग ×	२	६

इस प्रकार से गुणस्थानों में नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थान और उनके संवेध का निरूपण जानना चाहिये।[1]

१ गुणस्थानापेक्षा दिगम्बर साहित्य में वर्णित नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों का विचार परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब गति आदि में नामकर्म के बंध आदि स्थानों का विचार करते हैं।

नरकगति—नारकों के उनतीस और तीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। उनमें से उनतीस प्रकृतिक स्थान नारकों को तिर्यंचगति-योग्य और मनुष्यगतियोग्य बंध करने पर बंधता है तथा उद्योतनाम युक्त तीस प्रकृतिक तिर्यंचगतियोग्य बंध करने पर एवं तीर्थंकरनाम युक्त तीस प्रकृतिक मनुष्यगति योग्य बंध करने पर बंधता है। इन बंधस्थानों में जो भंग पूर्व में कहे हैं, वही यहाँ भी समझना चाहिये, यानि मनुष्य और तिर्यंच दोनों गति योग्य उनतीस के बंध के ४६०८ और तिर्यंचगति योग्य तीस के बंध के ४६०८ और मनुष्य योग्य तीस के बंध के आठ, इस प्रकार तिर्यंचगति योग्य दो बंधस्थान के ९२१६ और मनुष्यगति योग्य दो बंधस्थान के ४६१६ भंग होते हैं।

नारकों के उदयस्थान पांच हैं—इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक। इन उदयस्थानों के भंग नारक सामान्य के उदयस्थानों के समान जानना चाहिये।

सत्तास्थान तीन होते हैं—बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक। इनमें से बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान तो जैसे सामान्यतः सभी को होते हैं उसी प्रकार नारकों के भी होते हैं। नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थंकर नामकर्म का बंध करने के बाद मिथ्यात्व में जाकर नारकों में उत्पन्न हुओं को होता है।[1] तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान नरकगति में नहीं होता है। क्योंकि तीर्थंकर और आहारक की सत्ता रहते कोई भी जीव नरक में उत्पन्न नहीं होता है।

---

१. श्रेणिकादि की तरह नरकायु का बंध करने के पश्चात क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जन कर तीर्थंकरनाम को निकाचित कर सम्यक्त्वयुक्त भी नारकों में जाते हैं। ऐसे मनुष्यों को तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है और उनको पाँचों उदयस्थानों में एक नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब इनके संवेध का निर्देश करते हैं—तिर्यंचगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक नारक को उपर्युक्त पांचों उदयस्थान होते हैं यानि ऊपर कहे स्वयोग्य पांचों उदयस्थानों में वर्तमान नारकों को तिर्यंचगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है। उस समय उनको बानवै और अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान में से कोई एक सत्तास्थान होता है। तीर्थंकरनाम की सत्ता वाले नारक तिर्यंचगतियोग्य बंध नहीं करते हैं, जिससे तिर्यंचगति योग्य बंध में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है। इसी तरह उद्योतनाम के साथ तिर्यंचगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर भी पांचों उदयस्थान होते हैं तथा बानवै और अठासी प्रकृतिक सत्तास्थान में से कोई भी सत्तास्थान होता है।

मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का भी बंध करने पर पूर्वोक्त पाँचों उदयस्थान होते हैं। परन्तु उन प्रत्येक उदयस्थान में बानवै, नवासी, अठासी प्रकृतिक ये तीनों सत्तास्थान संभव हैं। उनमें से बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान तो उनतीस प्रकृतियों के बंध में जिस प्रकार से कहे हैं, उसी तरह से जानना चाहिये और नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान पहले कहा है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि नारक को प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होता है और उस समय वे मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का ही बंध करते हैं। अर्थात् मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंध में नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टि नारकों में होता है। क्योंकि वे पर्याप्त होने के बाद अवश्य सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं और उस समय तीर्थंकरनामयुक्त मनुष्यगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करते हैं।

तीर्थंकरनामयुक्त मनुष्यगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करते नारक को अपने-अपने सभी उदयस्थानों में मात्र नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है।

इस प्रकार से नरकगति संबन्धी बंधादि स्थान जानना चाहिये। अब तिर्यंचगति में बंधादि स्थानों का विचार करते हैं।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तिर्यंचगति—तिर्यंचों में तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये छह बंधस्थान होते हैं। अर्थात् तिर्यंच भिन्न-भिन्न गति योग्य तेईस प्रकृतिक आदि छह बंधस्थानों में से किसी भी बंधस्थान को बांधते हैं।

इनमें से एकेन्द्रिय तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस प्रकृतिक बंधस्थानों को बांधते हैं, विकलेन्द्रिय और अपर्याप्त असंज्ञी भी इन्हीं पांच बंधस्थानों को बांधते हैं। मात्र पर्याप्त असंज्ञी और पर्याप्त-अपर्याप्त संज्ञी तिर्यंच यथायोग्य रीति से उपर्युक्त छहों बंधस्थानों का बंध करते हैं। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रथम गुणस्थान में देव या नरक गति योग्य बंध पर्याप्त अवस्था में ही होता है। मात्र अपर्याप्तावस्था में देवगतियोग्य बंध सम्यग्दृष्टिपने में होता है।

इन बंधस्थानों और उनके भंगों का विचार जैसा पूर्व में किया है तदनुरूप यहाँ भी समझना चाहिये और किसको कौनसा बंधस्थान होता है, और वह किस गति योग्य है, इसका विचार करके भंगों को समझ लेना चाहिये।

उदयस्थान नौ इस प्रकृतिसंख्या वाले हैं—इक्कीस और चौबीस से लेकर इकत्तीस तक। ये उदयस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी-संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय योग्य हैं। यह उन-उनके उदयस्थानों का कथन करने के प्रसंग में कहा जा चुका है। तदनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

सत्तास्थान पाँच हैं—बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी, अठहत्तर प्रकृतिक। इनका विचार भी पूर्व की तरह यहां भी कर लेना चाहिये। तिर्यंचों में क्षपकश्रेणि और तीर्थंकरनाम की सत्ता का अभाव होने से तीर्थंकर संबन्धी कोई भी सत्तास्थान नहीं होता है।

अब संवेध का निर्देश करते हैं—तेईस प्रकृतियों के बंधक तिर्यंच को इक्कीस प्रकृतिक आदि पूर्वोक्त नौ उदयस्थान होते हैं। उनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि के इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों में पाच-पांच सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी, अठहत्तर प्रकृतिक। इनमें से अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान तेज और वायुकायिक जीवों के होता है तथा तेज और वायु में से निकलकर जहां उत्पन्न होते हैं, वहां वे जब तक मनुष्यद्विक का बंध नहीं करते हैं तब तक होता है।

शेष सत्ताईस प्रकृतिक आदि पांच उदयस्थानों में अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय चार-चार सत्तास्थान होते हैं। सत्ताईस प्रकृतिक आदि पांच उदयस्थानों में वर्तमान तिर्यंच अवश्य मनुष्यद्विक को बांधने वाले होने से उनको अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान संभव नहीं है।

इसी प्रकार पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतियों के बंधक के लिये भी उदयस्थान और सत्तास्थान जानना चाहिये, लेकिन मात्र मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों का बंध करने वाले तिर्यंचों को अपने योग्य सभी उदयस्थानों में अठहत्तर प्रकृतिक के सिवाय शेष चार-चार सत्तास्थान होते हैं।

देव या नरक गति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक पर्याप्त असंज्ञी को तीस, इकत्तीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं और अपर्याप्त संज्ञी तिर्यंच को आठ उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकत्तीस प्रकृतिक। इनमें से इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान पूर्वबद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि को जानना चाहिये। प्रत्येक उदयस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतियों का उदय वैक्रिय तिर्यंच को होता है, वहाँ भी बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो दो सत्तास्थान होते हैं।

तीस और इकत्तीस प्रकृतियों का उदय समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि को होता है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक में इस प्रकार की संख्या वाले तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं—बानवै, अठासी, छियासी प्रकृतिक। इनमें से छियासी प्रकृतिक मिथ्यादृष्टि को ही होता है, सम्यग्दृष्टि को नहीं होता है। क्योंकि उनको अवश्य ही देवद्विक का बंध संभव है।

इस प्रकार सभी बंधस्थान और उदयस्थानों की अपेक्षा दो सौ अठारह सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक इन प्रत्येक बंधस्थान में चालीस, चालीस और अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में अठारह सत्तास्थान होते हैं। जिनका कुल योग दो सौ अठारह है।

अब मनुष्यगति के बंध, उदय और सत्तास्थानों का विचार करते हैं।

मनुष्यगति—मनुष्य को तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक ये आठ बंधस्थान होते हैं। इन सभी बंधस्थानों का स्वरूप जैसा पूर्व में बताया जा चुका है, उसी प्रकार यहाँ सप्रभेद समझना चाहिये। क्योंकि मनुष्य चारों गति योग्य बंध करता है और उसे सभी गुणस्थान संभव हैं।

उदयस्थान ग्यारह होते हैं। जो इस प्रकार हैं—बीस, इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस, नौ और आठ प्रकृतिक। ये सभी उदयस्थान स्वभावस्थ मनुष्य, वैक्रियशरीरी और आहारकशरीरी मनुष्य एवं तीर्थंकर, अतीर्थंकर सयोगि और अयोगि केवली की अपेक्षा पूर्व की तरह सप्रभेद समझ लेना चाहिये। चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान मात्र एकेन्द्रियों में ही होता है, इसलिये उसको यहाँ ग्रहण नहीं किया है।

सत्तास्थान ग्यारह होते हैं। वे इस प्रकार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, छियासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर, पचहत्तर, नौ और आठ प्रकृतिक। यद्यपि नामकर्म के बारह सत्तास्थान हैं, लेकिन उनमें से अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान मनुष्यों में नहीं होता है। क्योंकि मनुष्य को मनुष्यद्विक की सत्ता अवश्य होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब संवेध का निर्देश करते हैं—एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य को इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये सात उदयस्थान होते हैं। स्वभावस्थ और वैक्रिय मनुष्य तेईस प्रकृतियों का बंध करता है। इसलिये तद्‌योग्य उदयस्थानों को ग्रहण किया है शेष केवली और आहारकसंयत के उदयस्थान यहाँ नहीं होते हैं।

इसका आशय यह हुआ कि तेईस प्रकृतियों के बंधक स्वभावस्थ मनुष्य को इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान तथा वैक्रिय मनुष्य को पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं। जिनके भंगों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है तथा पच्चीस और सत्ताईस प्रकृतियों का उदय वैक्रियशरीरी की दृष्टि से समझना चाहिये।

उक्त प्रत्येक उदयस्थान में चार-चार सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—बानवै, अठासी, छियासी और अस्सी प्रकृतिक। मात्र वैक्रियशरीरी को प्रत्येक उदयस्थान में बानवै और अठासी प्रकृतिक इस प्रकार दो-दो सत्तास्थान होते हैं। शेष सत्तास्थान जो तीर्थंकर, क्षपकश्रेणि, केवली और अन्यगति आश्रयी होते हैं, वे यहाँ संभव नहीं हैं। क्योंकि एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि को ही होता है, जिससे वहाँ संभव सत्तास्थान ग्रहण करना चाहिये। सब मिलाकर चौबीस सत्तास्थान होते हैं।

पर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य और अपर्याप्त विकलेन्द्रियादि योग्य पच्चीस प्रकृतियों के बंधक और एकेन्द्रिययोग्य छब्बीस प्रकृतियों के बंधक को भी ऊपर कहे अनुसार उदयस्थान और उन उदयस्थानों में सत्तास्थान जानना चाहिये। मनुष्यगतियोग्य उनतीस और तीस प्रकृतियों के बंधक के लिये भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

नरकगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य को सिर्फ तीस प्रकृति रूप एक उदयस्थान होता है। क्योंकि पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही नरकगतियोग्य बंध करता है। उस समय बानवै, अठासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और नवासी प्रकृतिक इन तीन सत्तास्थानों में से कोई भी सत्तास्थान होता है।

देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य के सात उदयस्थान इस प्रकार हैं—इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक। मिथ्यादृष्टि मनुष्य तो पर्याप्तावस्था में ही देवगतियोग्य बध करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि मनुष्य अपर्याप्तावस्था में भी देवगतियोग्य बंध करता है। इसलिये अपर्याप्तावस्था में भी संभव उदयस्थान यहाँ ग्रहण किये हैं। इनमें इक्कीस और छब्बीस प्रकृतियों का उदय करण-अपर्याप्त अविरतसम्यग्दृष्टि को होता है तथा पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये चार उदयस्थान पंचम गुणस्थान तक वैक्रिय शरीरी मनुष्य को होते हैं। पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक ये पांच उदयस्थान वैक्रिय शरीरी और आहारक शरीरी संयत को होते हैं। अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान करण-अपर्याप्त अविरतसम्यग्दृष्टि को होते हैं और तीस प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ सम्यक्त्वी या मिथ्यात्वी मनुष्य को होता है।

पूर्वोक्त प्रत्येक उदयस्थान में दो-दो सत्तास्थान होते हैं। वे इस प्रकार हैं—बानवै और अठासी प्रकृतिक। मात्र आहारक संयत को अपने सभी उदयस्थानों में बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है और तीस प्रकृतिक उदयस्थान वाले मनुष्य को यह चार सत्तास्थान होते हैं—बानवै, अठासी, छियासी, नवासी प्रकृतिक। इनमें से आदि के तीन मिथ्यादृष्टि मनुष्य को और सम्यग्दृष्टि मनुष्य को आदि के दो ही सत्तास्थान होते हैं। नवासी प्रकृतिक सत्तास्थान नरकगति योग्य अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य को होता है और शेष तीन सत्तास्थान नरकगतियोग्य या देवगतियोग्य बंध करने पर होते हैं। कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतियों के बंध में सोलह सत्तास्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरनाम के साथ देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक मनुष्य को सात उदयस्थान होते हैं और वे पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों के बंधक जैसे समझना चाहिये। मात्र यहाँ तीस प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि को ही जानना चाहिये। सभी उदयस्थानों में दो-दो सत्तास्थान होते हैं, जो इस प्रकार हैं—तेरानवै और नवासी प्रकृतिक। आहारकसंयत को मात्र तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है।

आहारकद्विक युक्त देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करते संयत को उनतीस और तीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं। यह तीस प्रकृतियों का बंध अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में होता है। वहां तीस प्रकृतियों का उदय स्वभावस्थ मनुष्य को होता है, उस समय बानवै प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है तथा जो संयत वैक्रिय या आहारक शरीर की विकुर्वणा करके उन शरीर के योग्य सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर अंतिम समय में उद्योत का उदय होने के पूर्व अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आता है, उसे उनतीस प्रकृतियों का उदय होता है और उसी को उद्योत के उदय में तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है और इन दोनों उदयस्थानों में एक बानवै प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। यद्यपि आहारक शरीरी प्रमत्तसंयत भी उनतीस और तीस प्रकृतियों का उदय वाला होता है, परन्तु वह आहारकद्विक का बंध नहीं करता है। क्योंकि वहां उसके बंध का कारण विशिष्ट संयम नहीं है।

इकत्तीस प्रकृतियों के बंधक अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान वाले को एक तीस प्रकृतिक उदयस्थान और तेरानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

एक (यशःकीर्ति) प्रकृति के बंधक को तीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान होता है। सत्तास्थान आठ होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी, अठासी, अस्सी, उन्यासी, छियत्तर, पचहत्तर प्रकृतिक। इनका निर्देश पूर्व में किया जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व बंधस्थानों और उदयस्थानों की अपेक्षा सत्तास्थान एक सौ उनसठ होते हैं और बंधविच्छेद होने के बाद उदय और सत्तास्थानों का परस्पर संवेध जिस प्रकार सामान्य संवेध का विचार किया है, तदनुरूप समझना चाहिये।

इस प्रकार मनुष्यगति संबन्धी नामकर्म के बंध आदि स्थानों को जानना चाहिये। अब देवगति संबन्धी बंध, उदय और सत्तास्थानों का विचार करते हैं।

देवगति—देवों में यह चार बंधस्थान होते हैं—पच्चीस, छब्बीस उनतीस और तीस प्रकृतिक। इनमें से पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान पर्याप्त बादर पृथ्वी, अप् और प्रत्येक वनस्पति योग्य बंध करने पर होते हैं। यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के परावर्तन द्वारा आठ भंग होते हैं। छब्बीस प्रकृतियों का बंध आतप या उद्योत सहित होता है। यहाँ सोलह भंग होते हैं। मनुष्य और तिर्यंच गति योग्य बंध करने पर उनतीस प्रकृतियों का बंध सप्रभेद पूर्व की तरह समझना चाहिये। उद्योतनाम युक्त तिर्यंचगतियोग्य बंध करने पर तीस प्रकृतियों का बंध होता है। उसके छियालीस सौ आठ भंग होते हैं। तीस प्रकृतियों का बंध तीर्थंकरनाम युक्त मनुष्यगतियोग्य होता है। उसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के परावर्तन द्वारा आठ भंग होते हैं।

उदयस्थान छह हैं। वे इस प्रकार हैं—इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस प्रकृतिक। इनका विस्तारपूर्वक कथन पूर्व में किया जा चुका है। तदनुसार यहाँ समझ लेना चाहिये।

सत्तास्थान चार हैं—तेरानवै, बानवै, नवासी और अठासी प्रकृतिक। अन्य सत्तास्थान संभव नहीं हैं। क्योंकि उक्त चार के अतिरिक्त कितने ही एकेन्द्रियसंबन्धी और कितने ही क्षपकसंबन्धी होते हैं। जिससे वे देवों के संभव नहीं हैं।

अब संवेध का कथन करते हैं—एकेन्द्रिययोग्य पच्चीस प्रकृतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बंधक देवों के अपने छहों उदयस्थानों में बानवै और अठासी प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार छब्बीस प्रकृतियों के बंधक और तिर्यंचगतियोग्य या मनुष्यगतियोग्य उनतीस प्रकृतियों के बंधक को भी तथा उद्योत सहित तिर्यंच पंचेन्द्रिययोग्य तीस का बंध करने पर भी यही उदयस्थान और सत्तास्थान होते हैं। तीर्थंकर नाम सहित मनुष्यगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर अपने छहों उदयस्थानों में तेरानवै और नवासी प्राकृतिक इन दो में से कोई भी सत्तास्थान होता है। कुल मिलाकर साठ सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार देवगति में नामकर्म के बंधादि स्थानों और उनके संवेध को जानना चाहिए। अब गतियों की तरह इन्द्रियों में भी बंधादि स्थानों का विचार करते हैं।

इन्द्रियों में बंधादि स्थान

इगि विगले पण बंधा अडवीसूणा उ अट्ठ इयरंमि।

पंच छ एक्कारुदया पण पण बारस उ संताणि ॥१३०॥

शब्दार्थ—**इगि**—एकेन्द्रिय, **विगले**—विकलेन्द्रिय, **पण**—पांच, **बंधा**—बंधस्थान, **अडवीसूणा**—अट्ठाईस प्रकृतिक से न्यून, **उ**—और, **अट्ठ**—आठ, **इयरंमि**—इतर-पंचेन्द्रिय में, **पंच छ एक्कारुदया**—पांच, छह और ग्यारह उदयस्थान, **पण-पण बारस**—पांच, पांच और बारह, **उ**—और, **संताणि**—सत्तास्थान।

गाथार्थ—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में अट्ठाईस प्रकृतिक से न्यून पांच-पांच बंधस्थान होते हैं। इतर-पंचेन्द्रिय में आठों बंधस्थान होते हैं तथा अनुक्रम से पांच, छह और ग्यारह उदयस्थान एवं पांच-पांच तथा बारह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ-एकेन्द्रिय और विकलेन्दियों में अट्ठाईस प्रकृतिक के सिवाय तेईस प्रकृतिक आदि पाँच-पाँच बंधस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीव मात्र मनुष्य और तिर्यंच गति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य ही बंध करने वाले होने से उक्त बन्धस्थानों में से देवगतियोग्य उनतीस और तीस प्रकृतिक एवं मनुष्य गति योग्य तीर्थंकरनाम सहित तीस प्रकृतिक बन्धस्थान और उसके भंगों के सिवाय शेष मनुष्य तिर्यंच गति योग्य समस्त ऊपर के बधस्थानों और उन बंधस्थानों के होने वाले भंगों का बंध करते हैं। इसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

पंचेन्द्रिय मार्गणा में आठ बंधस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस और एक प्रकृतिक। पंचेन्द्रिय में चारों गति के जीवों का समावेश होता है और वे अपनी-अपनी योग्यतानुसार उक्त बंधस्थानों का बंध करते हैं। यानि सर्व गति योग्य ये समस्त बंधस्थान और इनके भंग पूर्व में जिस प्रकार से कहे हैं, उसी प्रकार इस पंचेन्द्रिय मार्गणा में भी समझ लेना चाहिए।

अब इन इन्द्रिय मार्गणा के भेदों में उदयस्थानों का निर्देश करते हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में अनुक्रम से पाँच, छह और ग्यारह उदयस्थान होते हैं। एकेन्द्रिय के पाँच उदयस्थान इस प्रकार हैं--इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस प्रकृतिक। इन सभी उदयस्थानों का विचार पूर्व में किया जा चुका है। विकलेन्द्रियों में इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस प्रकृतिक ये छह उदयस्थान होते हैं। इन उदयस्थानों का निरूपण भी पूर्व की तरह कर लेना चाहिए।

पंचेन्द्रियों के बीस, इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस, आठ और नौ प्रकृतिक इस प्रकार ग्यारह उदयस्थान होते हैं। चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान मात्र एकेन्द्रिय में ही होता है, इसलिए उसका निषेध किया है। मनुष्यादि भिन्न-भिन्न गति में जिस प्रकार से पूर्व में उदयस्थानों का कथन किया है उसी प्रकार वे सभी यहाँ भी जानना चाहिए। उदयस्थान और उनके कुल भंगों में से एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय संबंधी उदयस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उनके भंगों के सिवाय शेष समस्त उदयस्थान और भंग पंचेन्द्रिय में जानना चाहिए।

अब सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में अनुक्रम से पाँच-पाँच और बारह सत्तास्थान होते हैं। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में वे इस प्रकार हैं—बानवै, अठासी, छियासी, अस्सी, अठहत्तर प्रकृतिक तथा पंचेन्द्रिय में तेरानवै प्रकृतिक आदि बारह सत्तास्थान होते हैं और उनका पूर्व में जिस प्रकार से निर्देश किया गया है, तदनुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

अब जीवस्थानों में बंध, उदय और सत्तास्थानों का प्रतिपादन करने के लिए पहले ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के बंधादि स्थानों का निर्देश करते हैं।

ज्ञानावरण-दर्शनावरण, अन्तराय कर्म के बंधादि स्थान

नाणंतरायदंसण बंधोदयसंत भंग जे मिच्छे।
ते तेरसठाणेसुं सण्णिम्मि गुणासिया सव्वे ।।१३१।।

शब्दार्थ—नाणंतरायदंसण—ज्ञानावरण, अन्तराय और दर्शनावरण, **बंधोदयसंत**—बंध, उदय और सत्तास्थान, **भंग**—भंग, **जे**—जो, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **ते**—वे, **तेरसठाणेसुं**—तेरह जीवस्थानों में, **सण्णिम्मि**—संज्ञी में, **गुणासिया**—गुणस्थानाश्रित, **सव्वे**—सभी।

गाथार्थ—ज्ञानावरण, अन्तराय और दर्शनावरण कर्म के बंध, उदय और सत्ता के जो भंग मिथ्यात्व गुणस्थान में कहे हैं वे सभी तेरह जीवभेदों में होते हैं और संज्ञी में गुणस्थानाश्रित सभी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण, अन्तराय की पाँच-पाँच उत्तरप्रकृतियाँ हैं अतः पाँच प्रकृतिक बन्ध, उदय और सत्ता जो मिथ्यादृष्टि को कही हैं, वही सब पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय सिवाय शेष तेरह जीवस्थानों में जानना चाहिए। इसका कारण यह है कि इन दोनों कर्मों का ध्रुव-बंध, ध्रुव-उदय और ध्रुवसत्ता होने से ज्ञानावरण और अन्तराय इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों के पाँच का बंध, पाँच का उदय, पाँच की सत्ता रूप एक-एक स्थान होता है।

दर्शनावरण कर्म के नौ का बंध, चार का उदय, नौ की सत्ता; नौ का बंध, पाँच का उदय, नौ की सत्ता ये दो भंग होते हैं। क्योंकि इन तेरह जीवस्थानों में आदि के दो गुणस्थान होते हैं। जिससे पूर्वोक्त भंग उनमें संभव हैं। संज्ञी अपर्याप्त में चौथा गुणस्थान होता है, जिससे उसे दर्शनावरण कर्म के अन्य भंग भी घटित होते हैं, परन्तु वे करण-अपर्याप्त के होते हैं और यहाँ लब्धि-अपर्याप्त की विवक्षा है। जिससे पूर्वोक्त भंग ही संभव हैं।

अब वेदनीय ओर गोत्र कर्म के भंगों का निर्देश करते हैं।

वेदनीय और गोत्र कर्म के बंधादि स्थान

तेरससु वेयणीयस्स आइमा होंति भंगया चउरो।
निच्चुदय तिण्णि गोए सव्वे दोण्हंपि सण्णिस्स ॥१३२॥

शब्दार्थ—**तेरससु**—तेरह जीवस्थानों में, **वेयणीयस्स**—वेदनीय कर्म के, **आइमा**—आदि के, **होंति**—होते हैं, **भंगया**—भंग, **चउरो**—चार, **निच्चुदय**—नीच के उदय वाले, **तिण्णि**—तीन, **गोए**—गोत्र के, **सव्वे**—सभी, **दोण्हंपि**—दोनों के, **सण्णिस्स**—संज्ञी पंचेन्द्रिय के।

गाथार्थ—वेदनीयकर्म के आदि के चार भंग और गोत्रकर्म के नीचगोत्र के उदय वाले तीन भंग तेरह जीवस्थानों में होते हैं तथा संज्ञी में दोनों कर्म के सभी भंग होते हैं।

विशेषार्थ—संज्ञी पर्याप्त के सिवाय शेष तेरह जीवस्थानों में वेदनीयकर्म के आदि के चार भंग होते हैं जो इस प्रकार हैं—१. असाता का बंध, असाता का उदय, साता-असाता दोनों की सत्ता, २. असाता का बंध, साता का उदय, दोनों की सत्ता, ३. साता का बंध, असाता का उदय, दोनों की सत्ता, ४. साता का बंध, साता का उदय, दोनों की सत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हीं तेरह जीवस्थानों में गोत्रकर्म के नीचगोत्र के उदय से होने वाले तीन भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—(१) नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, नीचगोत्र की सत्ता। यह भंग तेज और वायुकायिक जीवों में होता है अथवा तेज और वायुकाय में से निकलकर अन्य तिर्यंचों में उत्पन्न हुओं को जब तक उच्चगोत्र का बंध न हो, तब तक होता है। (२) नीच का बंध, नीच का उदय, नीच-उच्च की सत्ता, (३) उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय, दोनों की सत्ता। इन तीन के अतिरिक्त अन्य कोई भंग सम्भव नहीं है। क्योंकि इन तेरह जीवस्थानों में उच्चगोत्र का उदय नहीं होता है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय में पूर्व में जिस प्रकार से गुणस्थानों में वेदनीय और गोत्रकर्म के भंग कहे हैं, वे सभी भंग समझना चाहिये। क्योंकि संज्ञी में सभी गुणस्थान सम्भव हैं।

अब आयुकर्म के भंगों का निर्देश करते हैं।

जीवस्थानों में आयुकर्म के बंधादि स्थान

तिरिउदए नव भंगा जे सव्वे असण्णि पज्जत्ते।
नारयसुरचउभंगायरहिया इगिविगलदुविहाणं ॥१३३॥
असण्णि अपज्जत्ते तिरिउदए पंच जह उ तह मणुए।
मणपज्जत्ते सव्वे इयरे पुण दस उ पुव्वुत्ता ॥१३४॥

शब्दार्थ—**तिरिउदय**—तिर्यंचायु के उदय के, **नवभंगा**—नौ भंग, **जे**—जो, **सव्वे**—सभी, **असण्णि पज्जत्ते**—असंज्ञी पर्याप्त में, **नारयसुरचउभंगायरहिया**—नारक और देव आयु के चार भंगों से रहित, **इगिविगलदुविहाणं**—दोनों प्रकार के (पर्याप्त-अपर्याप्त) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में।

असण्णि अपज्जत्ते—अपर्याप्त असंज्ञी में, **तिरिउदए**—तिर्यंचायु के उदय में, **पंच**—पाँच, **जह**—जैसे, **उ**—और, **तह**—उसी तरह, **मणुए**—मनुष्य में, **मणपज्जत्ते**—संज्ञी पर्याप्त में, **सव्वे**—सभी, **इयरे**—इतर-अपर्याप्त में, **पुण**—पुनः, **दस**—दस, **उ**—और, **पुव्वुत्ता**—पूर्वोक्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—तिर्यंचायु के उदय में जो नौ भंग कहे हैं, वे सभी असंज्ञी पर्याप्त में होते हैं तथा पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में नारक और देव के चार भंगों रहित शेष पाँच भंग होते हैं।

तिर्यंचायु के उदय में जैसे पहले पाँच भंग कहे हैं, उसी प्रकार पाँच भंग असंज्ञी अपर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य में होते हैं। पर्याप्त संज्ञी में सभी भंग होते हैं और इतर—अपर्याप्त संज्ञी में पूर्वोक्त दस भंग होते हैं।

विशेषार्थ—तिर्यंचों को आयु के बंधकाल के पूर्व का एक, आयु के बंधकाल के चार और बंधोत्तरकाल के चार इस प्रकार जो नौ भंग पूर्व में कहे हैं, वे सभी असंज्ञी पंचेन्द्रियों में होते हैं। क्योंकि वे चारों गति के योग्य बंध करते हैं।

उक्त नौ भंगों में से नारक और देव आयु के बंधकाल का एक-एक और बंधोत्तरकाल का एक-एक, कुल चार भंगों को छोड़कर शेष पाँच भंग पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में होते हैं। क्योंकि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय देव और नरक आयु का बंध नहीं करते हैं परन्तु मनुष्य और तिर्यंच आयु का ही बंध करते हैं। जिससे बंधकाल से पूर्व का एक, मनुष्य और तिर्यंच आयु के बंधकाल का एक-एक और उन दोनों आयु के बंधोत्तरकाल के बाद का एक-एक, इस प्रकार कुल पाँच भंग ही होते हैं।

तिर्यंचायु का उदय रहते पूर्व में जो एकेन्द्रिय आदि में पाँच भंग कहे हैं, वही अन्यूनातिरिक्त पाँच भंग असंज्ञी अपर्याप्त तिर्यंच और असंज्ञी मनुष्य में भी समझना चाहिये। क्योंकि अपर्याप्त असंज्ञी तिर्यंच और संमूर्च्छिम मनुष्य मनुष्यायु और तिर्यंचायु का ही बंध करते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में आयु के अट्ठाईस भंग होते हैं। क्योंकि वे चारों गति में होते हैं और चारों गतियोग्य बंध करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतर—संज्ञी अपर्याप्त मनुष्याश्रयी पाँच और तिर्यंचाश्रयी पाँच, कुल मिलाकर दस भंग होते हैं। क्योंकि लब्धि-अपर्याप्त संज्ञी मनुष्यायु और तिर्यंचायु का ही बंध करते हैं। जिससे बंध-पूर्व का एक, बंधकाल के दो आयु का बंध होने से दो और उपरत बंधकाल के बाद के दो, कुल पाँच भंग मनुष्य के और पाँच तिर्यंच के कुल मिलाकर दस भंग होते हैं। देव और नारक लब्धि-अपर्याप्त नहीं होते हैं एवं वे अपर्याप्त अवस्था में आयु का बंध भी नहीं करते हैं। जिससे उनको अपर्याप्तावस्था में बंधकाल से पूर्व का एक-एक भंग कुल दो भंग और लें तो संज्ञी अपर्याप्त में बारह भंग होते हैं। इन दो भंगों का ग्रहण गाथा गत 'उ—तु' शब्द से किया गया है।

इस प्रकार से जीवस्थानों में आयुकर्म के बंधादि स्थानों को जानना चाहिये अब मोहनीयकर्म के बंधादि स्थानों को बतलाते हैं।

जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधादि स्थान

बंधोदयसंताइं पुण्णाइं सण्णिणो उ मोहस्स।
बायरविगलासण्णिसु पज्जेसु दु आइमा बंधा ॥१३५॥
अट्ठसु बावीसोच्चिय बंधो अट्ठाइ उदय तिण्णेव।
सत्तगजुया उ पंचसु अडसत्ताछवीस संतंमि ॥१३६॥

शब्दार्थ—**बंधोदयसंताइं**—बंध, उदय और सत्तास्थान, **पुण्णाइं**—पूर्ण-सभी, **सण्णिणो**—संज्ञी को, **उ**—और, **मोहस्स**—मोहनीयकर्म के, **बायरविगलासण्णिसु**—बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय में, **पज्जेसु**—पर्याप्त में, **दु**—दो, **आइमा**—आदि के, **बंधा**—बंधस्थान।

अट्ठसु—आठ जीवस्थानों में, **बावीसोच्चिय**—बाईस का ही, **बंधो**—बंधस्थान, **अट्ठाइ**—आठ आदि, **उदय**—उदयस्थान, **तिण्णेव**—तीन ही, **सत्तगजुया**—सात सहित, **उ**—और, **पंचसु**—पाँच जीवभेदों में, **अडसत्तछवीस**—अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक, **संतंमि**—सत्तास्थान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—संज्ञी जीवस्थान में मोहनीयकर्म के सभी बंध, उदय और सत्तास्थान होते हैं। बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में आदि के दो बंधस्थान होते हैं।

आठ जीवस्थानों में बाईस का बंध और आठ आदि तीन उदयस्थान होते हैं तथा पाँच जीवभेदों में सात सहित चार उदयस्थान होते हैं। तेरह जीवभेदों में अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में मोहनीयकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों को जीवस्थानों में घटित किया है। जो इस प्रकार है—

मोहनीयकर्म के सभी बंधस्थानों, उदयस्थानों और सत्तास्थानों का निर्देश पूर्व में किया है, वे सभी अन्यूनातिरिक्त पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में होते हैं। क्योंकि पर्याप्त संज्ञी में सभी गुणस्थान होते हैं। जिससे गुणस्थानों की अपेक्षा सम्भव सभी बंधादि स्थान और उनके भंग होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में बाईस और इक्कीस प्रकृतिक ये दो बंधस्थान होते हैं। इनमें से बाईस प्राकृतिक बंधस्थान मिथ्यादृष्टि में और इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान सासादनगुणस्थान में होता है। इन जीवों में सासादनगुणस्थान पर्याप्त नामकर्म में उदयवालों को करण-अपर्याप्तावस्था में सम्भव है। जिससे उस गुणस्थान की अपेक्षा इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान का ग्रहण किया है।

पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त-बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय इन आठ जीवस्थानों में मोहनीयकर्म का बाईस प्रकृति रूप एक ही बंधस्थान होता है, और उसका सप्रभेद कथन पूर्व की तरह है। अर्थात् बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के तीन वेद और युगल के परावर्तन से जो छह भेद पूर्व में कहे हैं वे यहाँ भी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हीं आठ जीवस्थानों में से प्रत्येक में आठ, नौ, दस प्रकृतिक इस तरह तीन-तीन उदयस्थान होते हैं। इन जीवस्थानों में अनन्तानुबंधि कषाय के उदय बिना का सात प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है। क्योंकि इनको अनन्तानुबंधि कषाय का अवश्य उदय होता है। उक्त आठ, नौ, प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबंधि कषाय युक्त ही यहाँ ग्रहण करना चाहिये तथा उनको वेदत्रिक में से नपुंसकवेद का ही उदय होता है, स्त्री-पुरुषवेद का उदय नहीं होता है। जिससे आठ प्रकृतिक उदयस्थान के चार कषाय और युगल के परावर्तन से आठ भंग होते हैं तथा भय या जुगुप्सा के मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह तथा दस प्रकृतिक उदयस्थान के आठ इस प्रकार बत्तीस-बत्तीस भंग प्रत्येक में होते हैं।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन पाँच जीवस्थानों में पूर्वोक्त तीन उदयस्थानों के साथ सात प्रकृतिक उदयस्थान को और जोड़ने से चार-चार उदयस्थान होते हैं। अर्थात् उपर्युक्त पाँच जीवस्थानों में से प्रत्येक को इस प्रकार चार-चार उदयस्थान होते हैं—सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक।

इन जीवस्थानों में मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं। इनमें से मिथ्यादृष्टि में आठ, नौ और दस प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं और सासादनगुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय नहीं होने से सात, आठ और नौ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इन जीवस्थानों में वेदत्रिक में से एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है। जिससे चौबीस के बजाय आठ-आठ भंग ही होते हैं। जिससे मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थान में तीन-तीन उदयस्थान के कुल मिलाकर बत्तीस-बत्तीस भंग होते हैं।

इन्हीं पूर्वोक्त आठ और पाँच कुल तेरह जीवस्थानों में तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं, जो इस प्रकार हैं—अट्ठाईस, सत्ताईस और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छब्बीस प्रकृतिक तथा गाथा में आगत 'उ—तु' शब्द अधिक अर्थ का सूचक होने से सासादनभाव में वर्तमान बादर एकेन्द्रियादि पाँच जीवस्थानों में मात्र अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है।

करण-अपर्याप्त कितने ही संज्ञी जीवों में सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान, छह प्रकृतिक आदि चार उदयस्थान और चौबीस प्रकृतिक आदि सत्तास्थान होते हैं। यह अर्थ अधिक समझना चाहिये। क्योंकि करण-अपर्याप्त संज्ञी को चौथा गुणस्थान भी होता है। जिससे उनमें सत्रह प्रकृतिक बंध, छह, सात, आठ और नौ प्रकृतिक इस तरह चार उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान संभव हैं।

इस प्रकार से जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों को जानना चाहिए। अब नामकर्म के बंधादि स्थानों का विचार करते हैं।

जीवस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थान

सण्णिम्मि अट्ठऽसण्णिम्मि छाइमा तेऽट्ठवीस परिहीणा।
पज्जत्तविगलबायरसुहुमेसु तहा अपज्जाणं ॥१३७॥
इगवीसाई दो चउ पण उदया अपज्ज सुहुम बायराणं।
सण्णिस्स अचउवीसा इगिछडवीसाइ सेसाणं ॥१३८॥
तेरससु पंच संता तिण्णधुवा अट्ठसीइ बाणउइ।
सण्णिस्स होंति बारस गुणठाणकमेण नामस्स ॥१३९॥

शब्दार्थ—**सण्णिम्मि**—संज्ञी में, **अट्ठ**—आठ, **असण्णिम्मि**—असंज्ञी में, **छाइमा**—आदि के छह, **तेऽट्ठवीस**—वे अट्ठाईस प्रकृतिक के, **परिहीणा**—सिवाय, **पज्जत्त**—पर्याप्त, **विगल**—विकलेन्द्रिय, **बायरसुहुमेसु**—बादर सूक्ष्म एकेन्द्रिय में, **तहा**—तथा, **अपज्जाणं**—अपर्याप्तों में।

इगवीसाई—इक्कीस प्रकृतिक आदि, **दो**—दो, **चउ**—चार, **पण**—पाँच, **उदया**—उदयस्थान, **अपज्जसुहुमबायराणं**—अपर्याप्त सूक्ष्म बादर के, **सण्णिस्स**—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञा के, **अचउवीसा**—चौबीस सिवाय, के **इगिछडवीसाइ**—इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक आदि, **सेसाणं**—शेष जीवों को।

तेरससु—तेरह जीवभेदों में, **पंच**—पाँच, **संता**—सत्तास्थान, **तिण्णधुवा**—तीन अध्रुव, **अट्ठसीइ**—अठासी, **बाणउई**—बानवै प्रकृतिक, **सण्णिस्स**—संज्ञी के, **होंति**—होते हैं, **बारस**—बारह, **गुणठाणकमेण**—गुणस्थान के क्रम अनुसार, **नामस्स**—नामकर्म के।

गाथार्थ—संज्ञी में आठ बंधस्थान होते हैं, असंज्ञी में आदि के छह और अट्ठाईस के सिवाय शेष पर्याप्त-अपर्याप्त विकलेन्द्रिय और बादर-सूक्ष्म एकेन्द्रिय में होते हैं।

इक्कीस प्रकृतिक आदि दो, चार और पाँच उदयस्थान अनुक्रम से सभी अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त और बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय में होते हैं। संज्ञी में चौबीस के सिवाय शेष सभी होते हैं और शेष भेदों में इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक आदि उदयस्थान होते हैं।

तेरह जीवभेदों में तीन अध्रुव, अठासी और बानवै प्रकृतिक इस तरह पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा संज्ञी में गुणस्थान के क्रमानुसार बारह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में पहली गाथा में नामकर्म के बंधस्थानों का, दूसरी में उदयस्थानों का और तीसरी में सत्तास्थानों का निर्देश किया है। यथाक्रम से जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

बंधस्थान—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में नामकर्म के आठों बंधस्थान होते हैं और वे जिस प्रकार से पूर्व में बताये गये हैं, तदनुरूप यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय में आदि के छह बंधस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक। पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय देव और नरक गति योग्य बंध करते हैं, जिससे उनको अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान भी होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त छह बंधस्थानों में से अट्ठाईस प्रकृतिक के सिवाय पाँच बंधस्थान पर्याप्त-अपर्याप्त विकलेन्द्रिय और बादर-सूक्ष्म एकेन्द्रियों में होते हैं। क्योंकि वे मात्र मनुष्य और तिर्यंच इन दो गति योग्य ही बंध करते हैं।

लब्धि-अपर्याप्त असंज्ञी, संज्ञी में भी उपर्युक्त पाँच-पाँच बंधस्थान होते हैं। क्योंकि लब्धि-अपर्याप्त सभी जीव तिर्यंच और मनुष्य गति योग्य कर्म का ही बंध करते हैं। किन्तु देव नरकगति योग्य कर्म का बंध नहीं करते हैं, जिससे लब्धि-अपर्याप्त-असंज्ञी-संज्ञी में पाँच-पाँच बंधस्थान ही होते हैं और उनको पूर्वोक्त प्रकार से सप्रभेद यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

करण-अपर्याप्त संज्ञी चौथे गुणस्थान में देवगति योग्य भी बंध करते हैं और अपर्याप्तावस्था में नरकगतियोग्य बंध नहीं होता है, यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है।

इस प्रकार से जीवस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों को जानना चाहिए। अब उदयस्थानों का कथन करते हैं—

उदयस्थान—सभी (लब्धि—) अपर्याप्तकों को प्रारम्भ में इक्कीस प्रकृतिक आदि दो-दो उपयस्थान होते हैं। उनमें अपर्याप्त सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय को इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं। इनमें से सूक्ष्म अपर्याप्त को उदयप्राप्त इक्कीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—तिर्यंचद्विक, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नाम। इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय को होता है। यहाँ भंग एक ही होता है। क्योंकि अपर्याप्त को परा-वर्तमान परस्पर विरोधी प्रकृतियों का अभाव होता है।

बादर अपर्याप्त को भी यही इक्कीस प्रकृति विग्रह-गति में उदय होती हैं। मात्र सूक्ष्मनाम के स्थान पर बादरनाम कहना चाहिए। यहाँ भी एक ही भंग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म और बादर दोनों अपर्याप्त शरीरस्थ एकेन्द्रिय को उपर्युक्त इक्कीस प्रकृतियों में औदारिक शरीर, हुण्डक संस्थान, उपघातनाम और प्रत्येक अथवा साधारण में से एक इन चार प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ सूक्ष्म-अपर्याप्त के प्रत्येक अथवा साधारण के साथ दो भंग होते हैं। इसी प्रकार बादर अपर्याप्त के भी दो भंग होते हैं। इस तरह सूक्ष्म अपर्याप्त के एवं बादर अपर्याप्त के अपने-अपने उदय के तीन-तीन भंग होते हैं।

विकलेन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी अपर्याप्त को इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक इस तरह दो उदयस्थान होते हैं। इनमें अपर्याप्त द्वीन्द्रिय को उदय-प्राप्त इक्कीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ वर्णादि चतुष्क, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, त्रस, बादर, अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति। इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान द्वीन्द्रिय को होता है। परावर्तमान सभी प्रकृतियाँ अशुभ होने से यहाँ एक ही भंग होता है।

शरीरस्थ अपर्याप्त द्वीन्द्रिय को इक्कीस प्रकृतियों में औदारिक शरीर, औदारिक-अंगोपांग, हुण्ड संस्थान, सेवार्त संहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने से छब्बीस प्रकृतियों का उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भंग होता है। इस प्रकार अपर्याप्त द्वीन्द्रिय को अपने दो उदयस्थान के दो ही भंग होते हैं।

इसी तरह अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिए भी समझना चाहिए। मात्र जातिनामकर्म को बदलते जाना चाहिए। जैसे कि त्रीन्द्रिय के लिए त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रिय के लिए चतुरिन्द्रियजातिनाम इत्यादि। प्रत्येक के दो-दो उदयस्थानाश्रयी दो-दो भंग कहना चाहिए। मात्र अपर्याप्त संज्ञी को चार जानना चाहिए। क्योंकि जैसे अपर्याप्त

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संज्ञी मनुष्य हैं, वैसे तिर्यंच भी हैं। जिससे प्रत्येक के दो-दो भंगों का ग्रहण करने पर चार भंग होते हैं।[1]

पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रियों को चार उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिए—इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस प्रकृतिक। इनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति। इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान सूक्ष्म, पर्याप्त, एकेन्द्रिय को होता है। यहाँ प्रतिपक्षी किसी भी प्रकृति का उदय नहीं होने से एक ही भंग होता है।

इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, उपघात, हुण्डसंस्थान और प्रत्येक या साधारण में से एक इन चार प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर शरीरस्थ सूक्ष्म एकेन्द्रिय को चौबीस प्रकृतियों का उदय होता है। प्रत्येक और साधारण के साथ परावर्तन करने से एक चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है।

तत्पश्चात् शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त को पराघातनाम को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थान के भी पूर्वोक्त प्रकार से दो भंग होते हैं।

इसके बाद श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास नाम को मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्व कथनानुसार वही दो भंग होते हैं।

सूक्ष्म पर्याप्त के चार उदयस्थान सम्बन्धी कुल मिलाकर सात भंग होते हैं।

---

१ इसी प्रकार अपर्याप्त असंज्ञी के भी चार भंग हो सकते हैं। क्योंकि जैसे अपर्याप्त असंज्ञी तिर्यंच हैं, वैसे ही अपर्याप्त असंज्ञी मनुष्य भी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय को इक्कीस प्रकृतिक आदि पाँच उदयस्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस प्रकृतिक। इनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार जानना चाहिए—तैजस, कार्मण, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, तिर्यंचगतिद्विक, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से एक। इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय को होता है और यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से इसके दो भंग होते हैं।

इसके बाद शरीरस्थ बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय को उक्त इक्कीस प्रकृतियों में से तिर्यंचानुपूर्वी को कम करके औदारिक शरीर, हुण्ड संस्थान, उपघात और प्रत्येक या साधारण इन दोनों में से एक, इस प्रकार चार प्रकृतियों को मिलाने पर चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ प्रत्येक और साधारण के साथ यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति का परावर्तन करने से चार भंग होते हैं। वैक्रिय शरीर करते बादर वायुकाय को भी चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है, किन्तु वहाँ औदारिक शरीर के बदले वैक्रिय शरीर कहना चाहिए। शेष प्रकृतियाँ यही समझना चाहिये। इसका एक ही भंग होता है। क्योंकि उसको साधारण और यशःकीर्ति नाम का उदय नहीं होता है। कुल मिलाकर चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान के पाँच भंग होते हैं।

तदनन्तर शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को पराघातनाम का उदय मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्व कथनानुरूप पाँच भंग होते हैं।

तत्पश्चात् उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त को श्वासोच्छ्वास का उदय मिलाने से छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्व में कहे अनुसार पाँच भंग होते हैं। अथवा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास का उदय होने से पहले आतप या उद्योत दोनों में से किसी एक का उदय हो तो भी छब्बीस प्रकृतिक उदय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान होता है। यहाँ आतप और प्रत्येक के साथ यशःकीर्ति-अयशः-कीर्ति का परावर्तन करने से दो भंग होते हैं। साधारण को आतप का उदय नहीं होता है, जिससे तदाश्रित विकल्प भी नहीं होते हैं। उद्योत के साथ प्रत्येक-साधारण को यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के साथ परावर्तन करने से चार भंग होते हैं। कुल मिलाकर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भंग होते हैं।

इसके बाद प्राणापानपर्याप्ति से पर्याप्त को उच्छ्वास सहित छब्बीस प्रकृतिक के उदय में आतप या उद्योत दोनों में से एक को मिलाने पर सत्ताईस प्रकृतियों का उदयस्थान होता है। यहाँ आतप के साथ दो और उद्योत के साथ चार भंग होते हैं। जिससे सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान के कुल मिलाकर छह भंग होते हैं।

बादर पर्याप्त के पाँच उदयस्थानों के कुल मिलाकर उनतीस भंग होते हैं।

पर्याप्त संज्ञी को चौबीस प्रकृतिक के सिवाय शेष सभी उदयस्थान होते हैं। क्योंकि चौबीस प्रकृतियों का उदय एकेन्द्रिय में ही होता है अन्य किसी को नहीं होता है, जिससे उसका निषेध किया है। उदय-स्थान और उनके भंग देव, नारक, तिर्यंच, मनुष्य की अपेक्षा जो पूर्व में कहे जा चुके हैं तदनुरूप पर्याप्त संज्ञी के लिए जानना चाहिए।

शेष पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय को इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकत्तीस प्रकृतिक ये छह उदयस्थान होते हैं। इनमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को पहले जिस प्रकार उदयस्थान और उनके भंग कहे हैं तदनुरूप यहाँ जानना चाहिए।

जिस प्रकार प्राकृत—सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय को पूर्व में भंग कहे हैं, उसी प्रकार पर्याप्त असंज्ञी को भी कहना चाहिये। मात्र द्वीन्द्रियादि सभी को इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में अपर्याप्त की अपेक्षा एक-एक भंग पूर्व में कहा है, वह यहाँ नहीं होता है। क्योंकि यहाँ पर्याप्त की अपेक्षा ही विचार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से चौदह जीवस्थानों में नामकर्म के उदयस्थान जानना चाहिये। अब सत्तास्थानों का निरूपण करते हैं।

सत्तास्थान—पर्याप्त संज्ञी के अतिरिक्त शेष तेरह जीवभेदों में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। इनमें तीन तो अध्रुव संज्ञा वाले छियासी, अस्सी और अठहत्तर प्रकृतिक तथा शेष दो बानवै और अठासी प्रकृतिक हैं। इस प्रकार कुल पाँच सत्तास्थान होते हैं।

अठहत्तर प्रकृतिक सत्तास्थान सूक्ष्म-बादर एकेन्द्रिय, तेज, वायुकायिक के अपने चारों उदयस्थानों में होता है एवं तेज, वायुकायिक में से निकलकर पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय में उत्पन्न हुए को इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक इस प्रकार दो उदयस्थानों में और द्वीन्द्रियादि तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ हो, उसको इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक इस प्रकार दो उदयस्थान में होता है। शेष उदयस्थानों में नहीं होता है।

संज्ञी में गुणस्थान के क्रम से बारह सत्तास्थान होते हैं, जो पूर्व में कहे गये अनुसार जानना चाहिये।

इस प्रकार चौदह जीवस्थानों में नामकर्म के सत्तास्थान जानना चाहिये और इसके साथ ही चौदह जीवस्थानों में नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता के स्थानों का निरूपण पूर्ण हुआ। अब गति आदि मार्गणाओं में बंध, उदय और सत्तास्थानों के सम्बन्ध में सत्पदप्ररूपणा करते हैं।

मार्गणाओं में बंधादि स्थानों की सत्पदप्ररूपणा

बज्झंति सत्त अट्ठ य नारयतिरिसुरगईसु कम्माइं।
उदीरणावि एवं संतोइण्णाइं अट्ठ तिसु ॥१४०॥

शब्दार्थ—**बज्झंति**—बांधते हैं, **सत्त अट्ठ**—सात आठ, **य**—और, **नारयतिरिसुरगईसु**—नरक, तिर्यंच और देवगति में, **कम्माइं**—कर्म, **उदीरणावि**—उदीरणा भी, **एवं**—इसी प्रकार, **संतोइण्णाइं**—सत्ता और उदय में, **अट्ठ**—आठ, **तिसु**—तीन में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—नारक, तिर्यंच और देव इन तीन गतियों में सात या आठ कर्म बँधते हैं, उदीरणा भी सात या आठ कर्म की होती है तथा तीनों में सत्ता और उदय में आठ कर्म होते हैं।

विशेषार्थ—मूल कर्म प्रकृतियों की अपेक्षा नरक, तिर्यंच और देव इन तीन गतियों में प्रति समय सात या आठ कर्म बँधते हैं। इनमें जब आयुकर्म का बंध हो तब आठ कर्मों का बंध होता है। अन्यथा प्रति समय सात कर्मों का बंध होता रहता है।

उदीरणा भी सात या आठ कर्मों की होती है। अपनी-अपनी आयु की अन्तिम एक आवलिका सत्ता में शेष रहे तब उस एक आवलिका पर्यन्त सात की और शेष काल में आठ कर्मों की उदीरणा होती है तथा सत्ता और उदय नारक, तिर्यंच और देवों के आठों कर्मों का होता है क्योंकि उनको क्षपक या उपशम श्रेणि की प्राप्ति का अभाव होने से किसी भी समय सात या चार का उदय नहीं होता है।

गुणभिहियं मणुएसु सगलतसाणं च तिरियपडिवक्खा।

मणजोगी छउमाइ व कायवई जह सजोगीणं ॥१४१॥

शब्दार्थ—**गुणभिहियं**—गुणस्थानानुसार, **मणुएसु**—मनुष्यगति में, **सगलतसाणं**—पंचेन्द्रिय और त्रस में, **च**—और, **तिरियपडिवक्खा**—प्रतिपक्षी मार्गणाओं में तिर्यंचगति के समान, **मणजोगी**—मनोयोगी में, **छउमाइ**—छद्मस्थ गुणस्थान, **व**—और, **कायवई**—काय और वचन योगी को, **जह**—यथा, समान, **सजोगीणं**—सयोगी के।

गाथार्थ—मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति और त्रसकाय में गुणस्थानानुसार, प्रतिपक्ष मार्गणा में तिर्यंचगति के समान, मनोयोगी को छद्म गुणस्थान के समान और काययोगी, वचनयोगी को सयोगी के समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनुष्यगति में, इन्द्रिय मार्गणा के भेद पंचेन्द्रिय जाति में, कायमार्गणा के भेद त्रसकाय में जैसे पूर्व में चौदह गुणस्थानों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधादि का निर्देश किया है, तदनुरूप कथन करना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिश्र गुणस्थान के सिवाय अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक सात अथवा आठ कर्मों का बंध होता है। आयु के बंधकाल में आठ का और उसके सिवाय शेष काल में सात कर्म का बंध होता है।

मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान में आयु के बिना सात कर्म का बंध होता है। क्योंकि अतिविशुद्ध परिणामों के कारण इन गुणस्थानों में आयु का बंध होता है।

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में आयु और मोहनीय कर्म के सिवाय छह कर्मों का बंध होता है। क्योंकि इस गुणस्थान में बादर कषाय का उदय नहीं होने से मोहनीयकर्म का भी बंध नहीं होता है।

उपशान्त, क्षीण मोह और सयोगिकेवली गुणस्थान में एक वेदनीयकर्म का ही बंध होता है। शेष कर्मों के बंध हेतु—कषाय के उदय का अभाव होने से उनका बंध ही नहीं होता है।

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तक आठ कर्मों का उदय और सत्ता होती है। उपशान्तमोहगुणस्थान में सात का उदय और आठ की सत्ता होती है। क्षीणमोहगुणस्थान में सात कर्मों का उदय और सत्ता होती है तथा सयोगि और अयोगिकेवली इन दो गुणस्थानों में चार कर्म का उदय और सत्ता होती है।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त आठ अथवा सात कर्मों की उदीरणा होती है। इनमें जब आयुकर्म की मात्र अन्तिम आवलिका शेष रहे तब उसकी उदीरणा नहीं होने से सात कर्मों की ही उदीरणा होती है और शेषकाल में आठ कर्मों की उदीरणा होती है। मिश्रगुणस्थान में सर्वदा आयु के बिना सात कर्मों की ही उदीरणा होती है। क्योंकि आयुकर्म की पर्यन्तावलिका शेष रहने पर मिश्रगुणस्थान ही असंभव है। अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादरसंपराय इन तीन गुणस्थानों में वेदनीय, और आयु के सिवाय छह कर्मों की उदीरणा होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि उन गुणस्थानों में वेदनीय और आयुकर्म की उदीरणा के योग्य अध्यवसायों का अभाव है। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में छह या पाँच कर्मों की उदीरणा होती है। उसमें पहले छह की उदीरणा होती है। और वह वहाँ तक होती है कि दसवें गुणस्थान की आवलिका शेष न रहे। आवलिका शेष रहे तब मोहनीयकर्म की मात्र अन्तिम एक आवलिका ही शेष रहने से उसके बिना पाँच की उदीरणा होती है। उपशान्तमोहगुणस्थान में उन पाँच की ही उदीरणा होती है। क्षीणमोहगुणस्थान में भी उन्हीं पाँच कर्मों की तब तक उदीरणा होती है कि उनकी आवलिका शेष न हो, आवलिका शेष रहे तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय ये तीन कर्म आवलिका प्रविष्ट होने से उनकी उदीरणा नहीं होती है। मात्र नाम और गोत्रकर्म की ही उदीरणा होती है। सयोगिकेवलीगुणस्थान में भी नाम और गोत्र इन दो कर्मों की ही उदीरणा होती है तथा अयोगिकेवलीगुणस्थान में वर्तमान आत्मा के किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं होती है।

पंचेन्द्रिय की प्रतिपक्षी—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति तथा त्रस काय की पतिपक्षी—स्थातर काय—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति काय इन सभी को तिर्यंचगति के समान बंधादि जानना चाहिये। अर्थात् एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा पृथ्वीकायादि स्थावरकाय को सात अथवा आठ कर्मों का बंध होता है, सात अथवा आठ की उदीरणा और आठ का उदय और सत्ता होती है।

मनोयोगि को वीतराग छद्मस्थ बारहवें गुणस्थान पर्यन्त जैसे बंधादि का निर्देश किया है, तदनुसार समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पहले मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक में बंधादि विषयक सत्पदप्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। क्योंकि मनोयोगि को क्षीणमोह गुणस्थान तक के गुणस्थान संभव हैं।

काययोगि और वचनयोगि को सयोगिकेवली गुणस्थान तक में जैसे पूर्व में बंधादि का कथन किया है, उसी प्रकार समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि काययोग और वचनयोग सयोगि केवली गुणस्थान तक संभव है। तथा—

वेई नवगुणतुल्ला तिकसाइवि लोभ दसगुणसमाणो।
सेसाणिवि ठाणाइं एएण कमेण नेयाणि ॥१४२॥

शब्दार्थ—**वेई**—वेदत्रिक में, **नवगुणतुल्ला**—आदि के नौ गुणस्थान के तुल्य, **तिकसाइवि**—तीन कषायों में भी, **लोभ**—लोभ कषाय में, **दसगुणसमाणो**—दस गुणस्थान के तुल्य, **सेसाणि विठाणाइं**—शेष स्थान भी, **एएण**—इसी, **कमेण**—क्रम से, **नेयाणि**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—वेदत्रिक और तीन कषायों में आदि के नौ गुणस्थान के तुल्य और लोभ कषाय में दस गुणस्थान के तुल्य जानना चाहिये। इसी क्रम से शेष स्थान भी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—वेदमार्गणा के स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद तथा कषाय मार्गणा के क्रोध, मान और माया इन तीन भेदों, कुल छह भेदों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान पर्यन्त जैसे बंधादि का कथन किया है, उसी के समान समझना चाहिये। क्योंकि तीनों वेद और तीनों कषाय नौवें गुणस्थान पर्यन्त ही संभव हैं।

लोभ के संबन्ध में दसवें गुणस्थान तक जैसा पूर्व में कहा है, तदनुरूप समझना चाहिये। क्योंकि लोभ सूक्ष्मसंपराय नामक दसवें गुणस्थान तक ही संभव है।

इसी तरह शेष मार्गणास्थानों में भी उक्त प्रकार से समझना चाहिये। जो इस प्रकार है—

ज्ञान मार्गणा के भेद मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान मार्गणा में मिथ्यादृष्टि से मिश्रगुणस्थान तक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान मार्गणा में अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणमोह-गुणस्थान तक, मनपर्यायज्ञानमार्गणा में प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहगुणस्थान पर्यन्त जैसे पूर्व में बंधादि का निरूपण किया है, उसी प्रकार समझना चाहिये। केवलज्ञान मार्गणा में सयोगि और अयोगि केवली इन दो गुणस्थानों के कथनानुरूप जानना चाहिये।

चारित्रमार्गणा के भेद सामायिक और छेदोपस्थापना में प्रमत्त-संयत से लेकर अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान, परिहारविशुद्धि में प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान, सूक्ष्मसंपराय में सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान और यथाख्यातचारित्र में उपशांतमोह से अयोगिकेवली गुणस्थान, देशविरति में देशविरत गुणस्थान और असंयममार्गणा में मिथ्यादृष्टि से अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक जिस प्रकार से बंधादि का कथन किया है, तदनुरूप समझना चाहिये।

दर्शनमार्गणा के भेद चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान पर्यन्त, अवधिदर्शन में अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान पर्यन्त और केवलदर्शन में सयोगि-अयोगि केवली गुणस्थान के समान बंधादि जानना चाहिये।

लेश्यामार्गणा के भेद आदि की पांच (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म) लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान[1] पर्यन्त और शुक्ललेश्या में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त के तुल्य बंधादि समझना चाहिये।

भव्य मार्गणा के भेद भव्य में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक और अभव्यमार्गणा में मिथ्यात्वगुणस्थान की तरह बंधादि जानना चाहिये।

सम्यक्त्वमार्गणा के भेद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में अविरतसम्यग्-दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक, औपशमिक-

१. आदि की तीन लेश्याओं में पहले से चौथे अथवा छठे, तेज, पद्म, लेश्या में सात और शुक्ल लेश्या में पहले से तेरह गुणस्थान कर्मग्रन्थ में बताये हैं। लेकिन यहां आद्य पांच लेश्याओं में सात गुणस्थान कहे हैं। विज्ञजनों से समाधान की अपेक्षा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व में अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर उपशांतमोहगुणस्थान तक, क्षायिक सम्यक्त्व में अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तक, मिथ्यात्व में मिथ्यात्व गुणस्थान, सासादन में सासादन गुणस्थान और मिश्र सम्यक्त्व में मिश्र गुणस्थान की तरह बंधादि जानना चाहिये।

संज्ञी मार्गणा में मनुष्य गति के अनुरूप एवं असंज्ञी मार्गणा में मिथ्यात्व एवं सासादन गुणस्थान के समान बंधादि जानना चाहिये।

आहारकमार्गणा के भेद अनाहारक में मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरतसम्यग्दृष्टि, सयोगि केवली और अयोगि केवली गुणस्थान की तरह और आहारक में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक की तरह बंधादि का विधान जानना चाहिये।[1]

इस प्रकार से सत्पदप्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब बंधापेक्षा द्रव्य प्रमाण का कथन करने के लिये चौदह गुणस्थानों में कर्मप्रकृतियों की बंधसंख्या बतलाते हैं।

गुणस्थानों में बंध-प्रकृतियों की संख्या

सत्तरसुत्तरमेगुत्तरं तु चोहत्तरीउ सगसयरी।
सत्तट्ठी तिगसट्ठी गुणसट्ठी अट्ठवन्ना य ॥१४३॥
निद्दादुगे छवण्णा छव्वीसा णामतीसविरमंमि।
हासरईभयकुच्छाविरमे बावीस पुव्वंमि ॥१४४॥
पुंवेयकोहमाइसु अबज्झमाणेसु पंचठाणाणि।
बारे सुहुमे सत्तरस पगतिओ सायमियरेसु ॥१४५॥

शब्दार्थ—**सत्तरसुत्तरमेगुत्तरं**—सत्रह और एक अधिक सौ अर्थात् एक सौ सत्रह, एक सौ एक, **तु**—और, **चोहत्तरीउ**—चोहत्तर, **सगसयरी**—सत्तहत्तर,

---

१. मार्गणा स्थानों में आठकर्मों की मूल एवं उत्तर प्रकृतियों के बंधादि स्थानों के प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तट्ठी—सड़सठ, **तिगसट्ठी**—त्रेसठ, **गुणसट्ठी**—उनसठ, **अट्ठवन्ना**—अट्ठावन, **य**—और।

निद्दादुगे—निद्राद्विक, **छवण्णा**—छप्पन, **छव्वीस**—छब्बीस, **णामतीसविरमंमि**—नामकर्म की तीस प्रकृतियों का विच्छेद होने पर, **हासरईभयकुच्छाविरमे**—हास्य, रति, भय, जुगुप्सा का विच्छेद होने पर, **बावीस**—बाईस, **पुव्वंमि**—अपूर्वकरण में।

पुंवेयकोहमाइसु—पुरुषवेद क्रोधादि का, **अबज्झमणेसु**—बंध नहीं होने पर, **पंच ठाणाणि**—पांच बंधस्थान, **बारे**—बादर संपराय में, **सुहुमे**—सूक्ष्मसंपराय में, **सत्तरस**—सत्रह, **पगतिओ**—प्रकृतियां, **सायमियरेसु**—अन्य गुणस्थानों में एक सातावेदनीय।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में यथाक्रम से पहले में एक सौ सत्रह, दूसरे में एक सौ एक, तीसरे में चौहत्तर, चौथे में सतहत्तर, पाँचवें में सड़सठ, छठे में त्रेसठ, सातवें में उनसठ, अपूर्वकरण में अट्ठावन, निद्राद्विक का विच्छेद होने पर छप्पन, नाम की तीस प्रकृतियों का विच्छेद होने पर छब्बीस और हास्य, रति, भय, जुगुप्सा का बंधविच्छेद होने के बाद अनिवृत्तिबादरसंपराय में बाईस प्रकृतियों का बंध होता है तथा वहीं पुरुषवेद और क्रोधादि का अनुक्रम से बंध विच्छेद होने पर इक्कीस आदि पाँच बंधस्थान होते हैं, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में सत्रह प्रकृतियों का और शेष तीन गुणस्थान में एक सातावेदनीय का बंध होता है। (अयोगिकेवली गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का बंध नहीं होता है।)

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओं में गुणस्थानों में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या का निर्देश किया है। यथाक्रम से जिसका विस्तृत स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

बंधापेक्षा ज्ञानावरण आदि आठों मूल कर्म की एक सौ बीस प्रकृतियाँ मानी जाती हैं। उनमें से पहले मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर नाम इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। क्योंकि तोर्थंकर-नाम के बंध में सम्यक्त्व और आहारकद्विक के बंध में संयम हेतु है। परन्तु मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान में सम्यक्त्व या चारित्र में से एक भी हेतु नहीं है। इसलिए इन तीन प्रकृतियों के सिवाय शेष एक सौ सत्रह प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टि को बंधती है।

सासादन गुणस्थान में एक सौ एक बंधती हैं। क्योंकि मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकत्रिक, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, सेवार्त संहनन, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधा-रण और आतप इन सोलह प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध विच्छेद होता है तथा तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक रूप तीन प्रकृतियाँ पूर्वोक्त युक्ति से यहाँ भी नहीं बंधती हैं। इसलिए सासादन गुणस्थान में एक सौ एक प्रकृतियाँ बंधती हैं।

मिश्र गुणस्थान में चौहत्तर प्रकृतियाँ बंधती हैं। इसका कारण यह है कि पूर्वोक्त एक सौ एक प्रकृतियों में से स्त्यानर्द्धित्रिक, स्त्रीवेद, अनन्तानुबंधिचतुष्क, तिर्यंचत्रिक, मध्यम चार संहनन, चार संस्थान, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर और नीच गोत्र इन पच्चीस प्रकृतियों का सासादन गुणस्थान में बंधविच्छेद होता है तथा मिश्रदृष्टि तथास्वभाव से किसी भी आयु का बंध आरम्भ नहीं करता है, जिससे यहाँ मनुष्यायु और देवायु का भी बंध नहीं होता है। इसलिए एक सौ एक में से सत्ताईस प्रकृतियों को कम करने पर मिश्रदृष्टि गुणस्थान में चौहत्तर प्रकृतियों का बंध होता है।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सतहत्तर प्रकृतियाँ बंधयोग्य हैं। इनमें चौहत्तर तो पूर्व में कही जा चुकी हैं और इस गुणस्थान में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकरनाम ये तीन प्रकृतियाँ भी बंधयोग्य अध्यवसाय होने से बंधती हैं। जिससे इस गुणस्थान में सतहत्तर प्रकृतियाँ बंधती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशविरत गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, मनुष्यत्रिक, प्रथम संहनन और औदारिकद्विक इस प्रकार दस प्रकृतियों के कम करने पर सड़सठ प्रकृतियों का बंध होता है। इस गुणस्थान में देशविरति रूप गुण के निमित्त से अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय का अभाव होने से ये दस प्रकृतियाँ बंधती नहीं हैं, इसलिए सड़सठ प्रकृतियाँ बंध योग्य हैं।

इनमें से प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क का विच्छेद होने पर प्रमत्तसंयत गुणस्थान में त्रेसठ प्रकृति बंधयोग्य हैं। प्रत्याख्यानावरण कषाय का बंध नहीं होने का कारण उनके उदय का अभाव है। इस गुणस्थान में सर्वविरति साधु को उन कषायों का उदय नहीं होता है।

इन प्रकृतियों में से अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, असातावेदनीय, शोक और अरति मोहनीय इन छह प्रकृतियों को कम करने पर और आहारकद्विक को मिलाने पर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उनसठ प्रकृतियों का बंध होता है। अप्रमत्त यति, विशुद्ध संयमी होने से अस्थिरादि छह प्रकृतियों को नहीं बाँधता है और तद्योग्य विशुद्ध अध्यवसाय होने से आहारकद्विक का बंध करता है। इसलिए अप्रमत्तयति को उनसठ प्रकृतियों का बंध होता है।

देवायु के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव अट्ठावन प्रकृतियों का बंध करता है। अपूर्वकरणादि गुणस्थानवर्ती अतिविशुद्ध परिणाम के योग से आयु के बंध को प्रारम्भ ही नहीं करता है। इन अट्ठावन प्रकृतियों का बंध अपूर्वकरण के सात भाग में पहले भाग तक ही होता है। पहले भाग के चरम समय में निद्रा और प्रचला का बंधविच्छेद होता है, जिससे दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे भाग तक छप्पन प्रकृति बंधती हैं और छठे भाग के अंत में देवद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, तैजस, कार्मण, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, त्रसनवक, प्रशस्त विहायोगति, निर्माण और तीर्थंकरनाम इन तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है। इन तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने के बाद छब्बीस प्रकृतियों का बंध होता है और वह अपूर्वकरण के चरम समय पर्यन्त होता है।

उस चरम समय में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने से अनिवृत्तिबादर-संपराय गुणस्थान के प्रथम समय में बाईस प्रकृतियाँ बंधयोग्य होती हैं। इन बाईस प्रकृतियों का बंध वहाँ तक होता है कि अनिवृत्तिकरण के संख्यात भाग जायें और एक भाग शेष रहे। तत्पश्चात् पुरुषवेद का बंधविच्छेद होने पर इक्कीस प्रकृति बंधयोग्य होती हैं और वे भी वहाँ तक बंधती हैं कि शेष रहे संख्यातवें भाग प्रमाण काल के संख्यात भाग जायें और एक भाग शेष रहे। उसके बाद संज्वलन क्रोध का बंध विच्छेद होने से बीस प्रकृति बंधयोग्य होती हैं और वे भी शेष रहे काल के संख्यात भाग जायें और एक भाग शेष रहे। तत्पश्चात संज्वलन मान का बंधविच्छेद होने से उन्नीस प्रकृति बंधयोग्य होती हैं। वे भी शेष रहे काल के संख्यात भाग जायें और एक भाग शेष रहे, वहाँ तक बंधती हैं। तत्पश्चात् संज्वलन माया का भी बंध-विच्छेद होने से अठारह प्रकृतियाँ बंधयोग्य होती हैं और वे अनिवृत्ति-बादरसंपराय गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त बंधती हैं। उस चरम समय में संज्वलन लोभ का भी बंधविच्छेद होने से सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के प्रथम समय में सत्रह प्रकृति बंधती हैं।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के चरम समय में ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, अन्तरायपंचक, यशःकीर्ति नाम और उच्च गोत्र इन सोलह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है, जिससे उपशांत मोह, क्षीणमोह और सयोगि केवली इन तीन गुणस्थान में मात्र एक सातावेदनीय का ही बंध होता है, अन्य किसी भी प्रकृति का बंध होता है।

इस प्रकार गुणस्थानों में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या जानना चाहिये। अब नरकगति आदि में गुणस्थान के क्रम से बंधसंख्या का कथन करते हैं। नरकगति में बंध-प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकगति में बंधयोग्य प्रकृति

मिच्छे नरएसु सयं छण्णउई सासणो सयरि मीसो।
बावत्तरिं तु सम्मो चउराइसु बंधति अतित्था ॥१४६॥
मणुयदुगुच्चागोयं भवपच्चइयं न होइ चरिमाए।
गुणपच्चइयं तु बज्झइ मणुयाऊ ण सव्वहा तत्थ ॥१४७॥

शब्दार्थ—**मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान में, **नरएसु**—नारकों में, **सयं**—सौ, **छण्णउई**—छियानवै, **सासणो**—सासादन, **सयरि**—सत्तर, **मीसो**—मिश्र गुणस्थान, **बावत्तरिं**—बहत्तर, **तु**—और, **सम्मो**—अविरतसम्यग्दृष्टि में, **चउराइसु**—चौथी आदि पृथ्वियों में, **बंधति अतित्था**—तीर्थंकरनाम के बिना (इकहत्तर) बंधती हैं।

मणुयदुगुच्चागोयं—मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र, **भवपच्चइयं**—भवप्रत्यय से ही, **न होइ**—नहीं बंधते हैं, **चरिमाए**—अन्तिम नरक-पृथ्वी में, **गुणपच्चइयं**—गुणप्रत्यय से, **तु**—और, **बज्झइ**—बंधती है, **मणुयाऊ**—मनुष्यायु, **ण**—नहीं, **सव्वहा**—सर्वथा, **तत्थ**—वहाँ।

गाथार्थ—नरकगति में वर्तमान मिथ्यादृष्टि नारक सौ, सासासन छियानवै, मिश्रगुणस्थान वाला सत्तर और अविरत सम्यग्दृष्टि बहत्तर प्रकृतियों का बंध करता है और चौथी आदि पृथ्वियों में तीर्थंकरनाम के बिना इकहत्तर प्रकृति बँधती हैं।

अन्तिम नरक पृथ्वी (सातवीं नरक) में मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र भवप्रत्यय से ही नहीं बँधते हैं गुणप्रत्यय से तो बँधते हैं। मनुष्यायु का तो सर्वथा बंध होता ही नहीं है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में गुणस्थानापेक्षा नरकगति में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या बताई है। नरकगति में आदि के चार गुणस्थान होते हैं। जिनमें यथाक्रम से बंध प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है—

नरकगति में वर्तमान मिथ्यादृष्टि सौ प्रकृतियों का बंध करता है। इसका कारण यह है कि नारक के भवप्रत्यय से ही वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, देवत्रिक, नरकत्रिक, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, एके-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्द्रियादि चार जाति, स्थावर और आतप ये उन्नीस प्रकृतियाँ नहीं बंधती हैं तथा मिथ्यादृष्टि नारक तीर्थंकर नामकर्म का बंध नहीं करते हैं। क्योंकि इसके बंध में सम्यक्त्व निमित्त है। जिससे बीस प्रकृति कम करने पर शेष सौ प्रकृतियाँ ही मिथ्यादृष्टि नारक के बँधती हैं।

सासादनगुणस्थान में वर्तमान नारक छियानवै प्रकृतियों का बंध करते हैं। क्योंकि उनके मिथ्यात्वमोहनीय, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और सेवार्त संहनन इन चार प्रकृतियों का गुणप्रत्यय से ही बंध नहीं होता है।

मिश्रदृष्टि नारक सत्तर प्रकृतियों का बंध करते हैं। क्योंकि मिश्र-दृष्टि स्त्यानर्द्धित्रिक, दुःस्वर, दुर्भग, अनादेय, तिर्यंचत्रिक, मध्यम संहननचतुष्क, मध्यम संस्थानचतुष्क, अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, उद्योत, नीचगोत्र और मनुष्यायु इस प्रकार छब्बीस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि नारक बहत्तर प्रकृति बाँधते हैं। क्योंकि वे मनुष्यायु और तीर्थंकरनाम का बंध करते हैं। किन्तु चौथी से छठी नरकपृथ्वी तक के नारक तीर्थंकरनाम का बंध नहीं करने वाले होने से इकहत्तर प्रकृतियों का बंध करते हैं। उनके पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान के बंध में कुछ भी अन्तर नहीं है। तथाप्रकार के भवस्वभाव से चौथी आदि पृथ्वी वाले नारक तीर्थंकरनाम का बंध करते ही नहीं हैं। तथा—

सातवीं नरकपृथ्वी में भवप्रत्यय से ही मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र बंधयोग्य नहीं, जिससे सातवीं नरकपृथ्वी में मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थान में इन तीन प्रकृति से न्यून प्रकृतियाँ बंधयोग्य समझना चाहिये। जिससे पूर्व में पहले और दूसरे गुणस्थान में नारकों को जो बंध कहा है, उससे इन तीन प्रकृतियों से न्यून बंध सातवीं नरक पृथ्वी में जानना चाहिये।

परन्तु तीसरे और चौथे गुणस्थान में गुणप्रत्यय से मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र का बंध होता है जिससे इन दोनों गुणस्थान में सातवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकपृथ्वी में इकहत्तर प्रकृतियाँ बंधयोग्य हैं, लेकिन सातवीं नरकपृथ्वी में भवप्रत्यय या गुणप्रत्यय से मनुष्यायु का बंध ही नहीं होता है जिससे उनको पहले गुणस्थान में छियानवै, दूसरे गुणस्थान में इक्यानवै और तीसरे, चौथे गुणस्थान में सत्तर प्रकृतियों का बंध होता है।

इस प्रकार से गुणस्थानापेक्षा नरकगति में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या जानना चाहिए। अब देवगति में बंधयोग्य प्रकृतियों को बतलाते हैं।

देवगति में बंधयोग्य प्रकृतियां

सामण्ण सुराजोग्गा आजोइसिया ण बंधंति सतित्था।
इगिथावरायवजुया सणंकुमारा ण बंधंति ॥१४८॥

शब्दार्थ—**सामण्ण सुराजोग्गा**—सामान्य से देवों के अयोग्य, **आजोइसिया**—ज्योतिष्क तक के देव, **ण**—नहीं, **बंधंति**—बांधते, **सतित्था**—तीर्थंकर नाम युक्त, **इगिथावरायवजुया**—एकेन्द्रिय स्थावर, आतप सहित, **सणंकुमारा**—सनत्कुमारादि, **ण बंधंति**—नहीं बांधते हैं।

गाथार्थ—सामान्य से देवों के बंध अयोग्य जो प्रकृतियाँ हैं, उनको तीर्थंकर नाम सहित ज्योतिष्क तक के देव नहीं बाँधते हैं, तथा एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप युक्त उन प्रकृतियों को सनत्कुमार आदि के देव नहीं बाँधते हैं।

विशेषार्थ—सामान्य से देवों के बंध-अयोग्य जो सोलह प्रकृतियाँ पूर्व में कहीं गई हैं,[1] वे इस प्रकार हैं—वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, देवत्रिक, नरकत्रिक, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और विकलत्रिक। इन सोलह प्रकृतियों के साथ तीर्थंकर नामकर्म को मिलाने पर कुल सत्रह प्रकृतियाँ ज्योतिष्क तक के देव अर्थात् भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष्क देव भव-स्वभाव से ही नहीं बाँधते हैं।

---

१ बंधविधि अधिकार गाथा ३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त सोलह प्रकृतियों में एकेन्द्रियजाति, स्थावर और आतप नाम को मिलाने पर उन्नीस प्रकृतियों को सनत्कुमारादि देव नहीं बांधते हैं। तथा—

तिरितिगउज्जोवजुया आणयदेवा अणुत्तरसुरा उ।

अणमिच्छणीयदुब्भगथीणतिगं अपुमथीवेयं ॥१४६॥

संघयणा संठाणा पण-पण अपसत्थविहगई न तेसिं।

शब्दार्थ—**तिरितिग**—तिर्यंचत्रिक, **उज्जोवजुया**—उद्योत के साथ, **आणयदेवा**—आनत आदि के देव, **अणुत्तरसुरा**—अनुत्तर विमानवासी देव, **उ**—और, **अणमिच्छ**—अनन्तानुबंधिचतुष्क, मिथ्यात्व, **णीय**—नीचगोत्र, **दुब्भग**—दुर्भग, **थीणतिगं**—स्त्यानर्द्धित्रिक, **अपुमथीवेयं**—नपुंसक और स्त्रीवेद।

संघयणा संठाणा पण पण—पाँच संहनन और पाँच संस्थान, **अपसत्थविहगइ**—अप्रशस्त विहायोगति, **न**—नहीं, **तेसिं**—उनको।

गाथार्थ—तिर्यंचत्रिक और उद्योत युक्त पूर्वोक्त प्रकृतियाँ आनतादि देव नहीं बांधते हैं। अनुत्तर विमानवासी देव अनन्तानुबंधि कषायचतुष्क, मिथ्यात्व, नीचगोत्र, दुर्भगत्रिक, स्त्यानर्द्धित्रिक, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद तथा पहले के सिवाय पांच संहनन, पहले के सिवाय पांच संस्थान और अप्रशस्त विहायोगति का भी बंध नहीं करते हैं।

विशेषार्थ—पूर्व में सनत्कुमारादि देवों के बंध-अयोग्य जो उन्नीस प्रकृतियाँ कही हैं, उनमें तिर्यंचत्रिक (तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु) और उद्योतनाम को मिलाने पर कुल तेईस प्रकृतियाँ आनतादि देवों के भवप्रत्यय से बंधती ही नहीं हैं तथा गुणप्रत्यय से जो प्रकृति नहीं बंधती हैं, उनको गुणस्थान क्रम से समझ लेना चाहिये।

अनुत्तरविमानवासी देव अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क, मिथ्यात्व, नीचगोत्र, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, स्त्यानर्द्धित्रिक, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और 'तु' शब्द से ग्रहीत दुःस्वर नाम को नहीं बांधते हैं एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनको पहले के सिवाय शेष पांच संहनन और पहले के सिवाय शेष पांच संस्थान और अप्रशस्त विहायोगति का भी बंध नहीं होता है। क्योंकि ये अनुत्तरविमानवासी देव सम्यग्दृष्टि हैं और सम्यग्दृष्टि उक्त प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं तथा आनतादि देवों के लिये जो तेईस प्रकृति बंध के अयोग्य कही हैं, उनको भी अनुत्तरदेव नहीं बांधते हैं। इस प्रकार से कुल मिलाकर अनुत्तरविमानवासी देवों के उनचास (४९) प्रकृतियाँ बंध-अयोग्य हैं। जिससे उनको चौथे गुणस्थान में इकहत्तर प्रकृतियाँ बंधती हैं।

इस प्रकार से देवगतियोग्य बंधप्रकृतियाँ जानना चाहिये। अब शेष रही तिर्यंचगति, मनुष्यगति सम्बन्धी बंधप्रकृतियों का निर्देश करते हैं।

तिर्यंच और मनुष्यगति योग्य बंधप्रकृति

पज्जत्ता बंधंति उ देवाउमसंखवासाऊ ॥१५०॥

तित्थायवउज्जोयं नारयतिरिविगलतिगतिगेगिंदी।

आहार थावरचऊ आउ णासंखपज्जत्ता ॥१५१॥

शब्दार्थ—**पज्जत्ता**—पर्याप्त, **बंधंति**—बांधते हैं, **उ**—और, **देवाउं**—देवायु को, **असंखवासाऊ**—असंख्यात वर्षायुष्क।

तित्थायवउज्जोयं—तीर्थंकरनाम, आतप, उद्योत, **नारयतिरिविगलतिगतिग**—नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, **एगिंदी**—एकेन्द्रियजाति, **आहार**—आहारकद्विक, **थावरचऊ**—स्थावरचतुष्क, **आउ**—आयु, **णासंखपज्जत्ता**—असंख्यात वर्षायुष्क अपर्याप्त बंध नहीं करते हैं।

गाथार्थ—असंख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य देवायु का बंध करते हैं।

असंख्य वर्षायुष्क अपर्याप्त तीर्थंकरनाम, आतप, उद्योत, नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रियजाति, आहारकद्विक स्थावरचतुष्क और आयु का बंध नहीं करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—मनुष्य और तिर्यंच दो प्रकार के हैं—संख्यात वर्षायुष्क और असंख्यात वर्षायुष्क। इनमें से संख्यात वर्षायुष्क वाले तिर्यंच और मनुष्यों के लिये तो जैसा पहले गुणस्थानों में बंध प्रकृतियों का कथन किया है, तदनुरूप ही जानना चाहिये लेकिन असंख्यात वर्षायुष्कों विषयक विशेष का यहाँ उल्लेख करते हैं—

असंख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त मनुष्य और तिर्यंच देवायु का बंध करते हैं, अन्य किसी भी आयु को नहीं बांधते हैं तथा अपर्याप्त-अपर्याप्तावस्था में वर्तमान मनुष्य और तिर्यंच तीर्थंकर, आतप, उद्योत, नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रियजाति, आहारकद्विक, स्थावरचतुष्क, देव-मनुष्यायु कुल मिलाकर इक्कीस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। तथा—

पज्जतिगया दुभगतिगणीयमपसत्थविहनपुंसाणं।
संघयणउरलमणुदुगपणसंठाणाण अबन्धा ॥१५२॥

शब्दार्थ—**पज्जतिगया**—पर्याप्त, **दुभगतिग**—दुर्भगत्रिक, **णीयं**—नीचगोत्र, **अपसत्थविह**—अप्रशस्त विहायोगति, **नपुंसाणं**—नपुंसक वेद का, **संघयण**—सहनननाम, **उरल**—औदारिकद्विक, **मणुदुग**—मनुष्यद्विक, **पणसंठाणाण**—पाँच संस्थान के, **अबंधा**—अबंधक हैं।

गाथार्थ—सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त युगलिक दुर्भगत्रिक, नीचगोत्र, अप्रशस्त विहायोगति, नपुंसकवेद, संहनन नाम, औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, अन्तिम पाँच संस्थान के अबंधक हैं।

विशेषार्थ—समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य अथवा तिर्यंच दुर्भगत्रिक—दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र, अप्रशस्त विहायोगति, नपुंसकवेद, छह संहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, समचतुरस्र संस्थान के बिना शेष पाँच संस्थान, इस प्रकार इक्कीस प्रकृति तथा पूर्वगाथा में कही देवायु के बिना शेष बीस प्रकृति कुल इकतालीस प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इस प्रकार से चतुर्गति में बंध सम्बन्धी विशेषता जानना चाहिये। अब शेष मार्गणाओं सम्बन्धी विशेषता का प्रतिपादन करते हैं।

शेष मार्गणाओं में बंधयोग्य प्रकृतियाँ

किण्हाइतिगे अस्संजमे य वेउव्विजुगे न आहारं।
बंधइ न उरलमीसे नरयतिगं छट्ठममराउं ॥१५३॥
कम्मजोगि अणाहारगो य सहिया दुगाउ णेयाओ।
सगवण्णा तेवट्ठी बंधति आहारमुभएसुं ॥१५४॥
तेउलेसाईया बंधंति न निरयविगलसुहुमतिगं।
सेगिंदिथावरायवतिरियतिगुज्जोय नव बारं ॥१५५॥

शब्दार्थ—**किण्हाइतिगे**—कृष्णादि तीन लेश्याओं में, **अस्संजमे**—असंयम में, **य**—और, **वेउव्विजुगे**—वैक्रियद्विक मार्गणा में, **न**—नहीं, **आहारं**—आहारकद्विक, **बंधइ**—बंधती हैं, **न**—नहीं, **उरलमीसे**—औदारिकमिश्र मे, **नरयतिग**—नरकत्रिक, **छट्ठं**—छठी, **अमराउं**—देवायु को।

कम्मजोगि—कार्मणकाययोग में, **अणाहारगो**—अनाहारक मार्गणा में, **य**—और, **सहिया**—सहित, **दुगाउ**—दो आयु, **णेयाओ**—इनका नहीं **सगवण्णा**—सत्तावन, **तेवट्ठी**—त्रेसठ, **बंधति**—बांधते हैं, **आहारमुभएसुं**—दोनों आहारकशरीर मार्गणा में।

तेउलेसाईया—तेजोलेश्यातीत, **बंधंति**—बांधते हैं, **न**—नहीं, **निरयविगलसुहुमतिगं**—नरकत्रिक, विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, **सेगिंदिथावरायव**—एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप सहित, **तिरियतिगुज्जोय**—तिर्यंचत्रिक, उद्योत, **नव**—नौ, **बारं**—बारह।

गाथार्थ—कृष्णादि तीन लेश्याओं, असंयम, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र मार्गणा में वर्तमान आहारकद्विक का बंध नहीं करते हैं। औदारिकमिश्रयोग में वर्तमान आहारकद्विक, नरकत्रिक और छठी देवायु इन छह का बंध नहीं करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणकाययोग और अनाहार मार्गणा में वर्तमान दो आयु सहित इनका (पूर्वोक्त छह) कुल आठ का बंध नहीं करते हैं। आहारककाययोग मार्गणा में वर्तमान सत्तावन और आहारक-मिश्र मार्गणा में वर्तमान त्रेसठ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

तेजोलेश्यातीत नरकत्रिक, विकलत्रिक और सूक्ष्मत्रिक इन नौ प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं, पद्म लेश्यातीत एकेन्द्रिय स्थावर और आतप के साथ बारह का तथा शुक्ल लेश्यातीत तिर्यंचत्रिक और उद्योत का भी बंध नहीं करते हैं।

विशेषार्थ—गति मार्गणा की उत्तरवर्ती इन्द्रिय और कायमार्गणा के सम्बन्ध में द्रव्य प्रमाण 'नरयतिगं देवतिगं इगिविगलाणं' गाथा द्वारा कहा जा चुका है। शेष मार्गणाओं में मनुष्य की तरह समझना चाहिये। लेकिन उनमें जो विशेष है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

लेश्यामार्गणा के कृष्ण, नील, कापोत इन तीन भेदों में, संयम-मार्गणा के भेद असंयम में, योगमार्गणा के भेद वैक्रिय और वैक्रिय-मिश्रमार्गणा में वर्तमान जीव आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग नाम का बंध नहीं करते हैं। क्योंकि इन मार्गणाओं में विशिष्ट संयम नहीं होने से आहारकद्विक का बंध नहीं होता है।

औदारिकमिश्रयोग में वर्तमान आहारकद्विक, नरकत्रिक और देवायु इन छह प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। इसका कारण यह है कि औदारिकमिश्रयोग अपर्याप्तावस्था में होता है। उस समय मनःपर्याप्ति से अपर्याप्त होने के कारण देवायु एवं नरकत्रिक के बंधयोग्य अध्यव-साय सम्भव नहीं हैं तथा विशिष्ट संयम की प्राप्ति भी उस समय नहीं होती है जिससे आहारकद्विक का भी बंध सम्भव नहीं है। इस-लिये औदारिकमिश्रकाययोगी को इन छह प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। तिर्यंचायु और मनुष्यायु अल्प अध्यवसाय द्वारा बंधयोग्य हैं। वैसे अध्यवसाय अपर्याप्तावस्था में हो सकने से उस अवस्था में—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिकमिश्रयोगी को इन दो आयु का बंध सम्भव है।

योगमार्गणा के भेद कार्मणकाययोग में तथा आहारकमार्गणा के भेद अनाहारक में पूर्वोक्त छह प्रकृतियों के साथ दो आयु को मिलाने पर आठ प्रकृति बंध के अयोग्य हैं। अर्थात् कार्मणकाययोगी और अनाहारक के आहारकद्विक, नरकत्रिक, देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु इन आठ प्रकृतियों का बंध नहीं होता है।

आहारककाययोग में वर्तमान सत्तावन और आहारकमिश्रयोग में वर्तमान त्रेसठ प्रकृतियों का बंध करते हैं। जिसका अर्थ यह हुआ कि ये दोनों अनुक्रम से त्रेसठ और सत्तावन प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। इसका तात्पर्य यह है—

आहारकमिश्रकाययोग में वर्तमान आदि की बारह कषाय, मिथ्यात्वमोहनीय, तिर्यंचद्विक, मनुष्यद्विक, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, स्त्यानर्द्धित्रिक, विकलत्रिक, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, नरकत्रिक, संहननषटक्, प्रथम के बिना अन्तिम पाँच संस्थान, औदारिकद्विक, आहारकद्विक, स्थावर, एकेन्द्रियजाति, आतप, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, उद्योत, नीचगोत्र, और अशुभ विहायोगति इन सत्तावन प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं तथा आहारकशरीर में वर्तमान प्रमत्त या अप्रमत्त संयत उक्त सत्तावन तथा अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, अरति, शोक और असातावेदनीय इन छह प्रकृतियों को भी नहीं बांधते हैं। इसलिये कुल मिलाकर त्रेसठ प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

लेश्यामार्गणा के तेज आदि तीन लेश्याओं के बंध के विचार का यह रूप है कि तेजोलेश्या के पहला, दूसरा और तीसरा (मंद, तीव्र, अतितीव्र) इस प्रकार विशुद्धि की अपेक्षा यह तीन विभाग हैं। उनमें तेजोलेश्या के पहले भाग को पार कर चुके यानि दूसरे और तीसरे भाग में वर्तमान (तीव्र और अतितीव्र तेजोलेश्या वाले) जीव नरकत्रिक, विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, इन नौ प्रकृतियों का बंध नहीं करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। क्योंकि तेजोलेश्या वाले मनुष्य और तिर्यंच नरकादि में उत्पन्न नहीं होते हैं। देव भी उक्त नौ प्रकृति के उदय वाले जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं। जिससे तेजोलेश्या वालों के इन प्रकृतियों के बंध का निषेध किया है।

शुद्ध पद्मलेश्या वाले जीव एकेन्द्रिय, और आतप सहित उक्त नौ प्रकृतियों को नहीं बांधते हैं। अर्थात् बारह प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं। इसका कारण यह है कि पद्मलेश्या वाले मनुष्य या तिर्यंच देवों में ही उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रियादि में उत्पन्न नहीं होते हैं तथा पद्मलेश्या युक्त देव भी एकेन्द्रियादि में उत्पन्न नहीं होते हैं, जिससे शुद्ध पद्मलेश्या वाले के उक्त बारह प्रकृतियों के बंध का निषेध किया है।

शुद्ध शुक्ललेश्या वाले जीव के उक्त बारह प्रकृतियों में तिर्यंच-त्रिक और उद्योत नाम को मिलाने पर कुल सोलह प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। क्योंकि परमविशुद्ध शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच, मनुष्य और देव उक्त प्रकृतियों के उदय वाले जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं, इसलिये शुद्ध शुक्ललेश्या वाले के इन सोलह प्रकृतियों के बंध का निषेध किया है।

इस प्रकार से प्रसक्तानुप्रसक्त समस्त अभिधेय का निरूपण करने के अनन्तर आचार्य उपसंहार रूप में अन्त मंगल करते हुए ग्रन्थ पूर्ण करने का संकेत करते हैं—

सुयदेविपसायाओ पगरणमेयं समासओ भणियं।
समयाओ चंदरिसिणा समईविभवाणुसारेण ॥१५६॥

शब्दार्थ—सुयदेविपसायाओ—श्रुतदेवी की कृपा से, **पगरणमेयं**—यह प्रकरण, **समासओ**—संक्षेप में, **भणियं**—कहा है, **समयाओ**—सिद्धान्त में से, **चंदरिसिणा**—चन्द्रर्षि के द्वारा, **समईविभवाणुसारेण**—अपने बुद्धि वैभव के अनुसार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—श्रुतदेवी की कृपा से अपने बुद्धिवैभव के अनुसार सिद्धान्त में से संक्षिप्त करके चन्द्रर्षि द्वारा यह प्रकरण कहा गया है।

विशेषार्थ—गाथा में ग्रन्थकार ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रन्थ समाप्ति का संकेत किया है—

द्वादशांग रूप श्रुतदेवी के प्रसाद-भक्ति के कारण होने वाले कर्म क्षयोपशम से मैंने—चन्द्रर्षि ने–सिद्धान्त में से दोहन करके इस पंचसंग्रह नामक प्रकरण का कथन किया है।

यद्यपि सिद्धान्त में अनेक अर्थों की विस्तार से प्ररूपणा की गई है, लेकिन मेरे द्वारा उन सबका कथन किया जाना शक्य नहीं होने से मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षिप्त करके इस पंचसंग्रहात्मक प्रकरण में कतिपय अमुक अर्थों पर प्रकाश डाला है। जिससे तत्त्व जिज्ञासु लाभ प्राप्त करें। यही हार्दिक इच्छा है।

अन्त में वर्तमान शासनपति श्रमण भगवान महावीर का पुण्य स्मरण करते हुए श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार इस सप्ततिका अधिकार की समाप्ति के साथ श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तर विरचित पंचसंग्रह ग्रन्थ की वक्तव्यता समाप्त हुई।

॥ जैनं जयतु शासनम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट (१)

सप्ततिका अधिकार की मूल गाथायें

मूलुत्तर पगईणं, साइ-अणाई—परूवणाणुगयं ।
भणियं बंधविहाणं, अहुणा संवेहगं भणिमो ।।१।।

आउम्मि अट्ठ मोहेट्ठ सत्त एक्कं च छाइ वातइए ।
बज्झंतयंमि बज्झंति सेसएसु छ सत्तट्ठ ।।२।।

मोहस्सुदए अट्ठवि सत्तय लब्भन्ति सेसयाणुदए ।
सन्तोइण्णाणि अघाइयाणं अड सत्त चउरो य ।।३।।

बंधइ छ सत्त अट्ठ य मोहुदए सेसयाण एक्कं च ।
पत्तेयं संतेहिं बंधइ एगं छ सत्तट्ठ ।।४।।

सत्तट्ठ छ बंधेसु उदओ अट्ठण्ह होइ पयडीणं ।
सत्तण्ह चउण्हं वा उदओ सायस्स बंधंमि ।।५।।

दो संतट्ठाणाइं बंधे उदए य ठाणयं एक्कं ।
वेयणियाउयगोए एगं नाणंतराएसु ।।६।।

नाणंतरायबंधा आसुहुमं उदयसंतया खीणं ।
आइमदुगचउसत्तम नारयतिरिमणुसुराऊणं ।।७।।

नारयसुराउ उदओ चउ पंचम तिरि मणुस्स चोद्दसमं ।
आसम्मदेसजोगी उवसंता संतयाऊणं ।।८।।

अब्बंधे इगि संतं दो दो बद्धाउ बज्झमाणाणं ।
चउसुवि एक्कस्सुदओ पण नव नव पंच इइ भेया ।।९।।

नव छच्चउहा बज्झइ दुगटठ्दसमेण दंसणावरणं ।
नव बायरम्मि सन्तं छक्कं चउरो य खीणम्मि ।।१०।।

नवभेए भंगतियं वे छावट्ठिउ छव्विहस्स ठिई ।
चउ समयाओ अंतो अंतमुहूत्ताउ नव छक्के ।।११।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसण सनिद्ददंसणउदओ समयं तु होइ जा खीणो।
जाव पमत्तो नवण्ह उदओ छसु चउसु जा खीणो ॥१२॥

चउ पण उदओ बंधेसु तिसुवि अब्बंधगेवि उवसंते।
नव संतं अट्ठेवं उइण्ण संताइं चउ खीणे ॥१३॥

खवगे सुहुमंमि चउ बंधगंमि अबंधगंमि खीणम्मि।
छस्संतं चउरुदओ पंचण्हवि केइ इच्छंति ॥१४॥

बंधो आदुग दसमं उदओ पण चोद्दसं तु जा ठाणं।
निच्चुच्चगोत्तकम्माण संतया होइ सव्वेसु ॥१५॥

बंधइ ऊइण्णयं चिय इयरं वा दोवि संत चउ भंगा।
नीएसु तिसुवि पढमो अबंधगे दोण्णि उच्चुदए ॥१६॥

तेरसमछट्ठएसु सायासायाण बंधवोच्छेओ।
संतउइण्णाइ पुणो सायासायाई सव्वेसु ॥१७॥

बंधइ उइण्णयं चिर इयरं वा दोवि संत चउ भंगा।
संतमुइण्णमबंधे दो दोण्णि दुसंत इइ अट्ठ ॥१८॥

दुगइगवीसा सत्तरस तेरम नव पंच चउर ति दु एगो।
बंधो इगिदुग चउत्थय पणट्ठणवमेसु मोहस्स ॥१९॥

हासरइअरइसोगाण बंधया आणवं दुहा सव्वे।
वेयविभज्जंता पुण दुगइगवीसा छहा चउहा ॥२०॥

मिच्छा बंधिगवीसो सत्तर तेरो नवो कसायाणं।
अरईदुगं पमत्ते ठाइ चउक्कं नियट्टिंमि ॥२१॥

देसूणपुव्वकोडी नव तेरे सत्तरे उ तेत्तीसा।
बावीसे भंगतिगं ठितिसेसेसु मुहुत्तंतो ॥२२॥

इगिदुगचउएगुत्तर आदसगं उदयमाहु मोहस्स।
संजलणवेयहासरइभयदुगुंछतिकसायदिट्ठी य ॥२३॥

दुगआइ दसंतुदया कसायभेया चउव्विहा ते उ।
बारसहा वेयवसा अदुगा पुण जुगलओ दुगुणा ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणसम्मभयदुगंछाण णोदओ संभवेवि वा जम्हा।
उदया चउवीसा विय एक्केक्कगुणे अओ बहूहा ॥२५॥

मिच्छे सगाइ चउरो सासणमीसे सगाइ तिण्णुदया।
छप्पंचचउरपुव्वा चउरो तिअ अविरयाईणं ॥२६॥

दसगाइसु चउवीसा एक्क छिक्कारदससग चउक्कं।
एक्का य नवसयाइं सट्ठाइं एवमुदयाणं ॥२७॥

बारस चउरो ति दु एक्कगाउ पंचाइबंधगे उदया।
अब्बंधगे वि एक्को तेसीया नवसया एवं ॥२८॥

चउबंधगेवि बारस दुगोदया जाण तेहिं छूढेहिं।
बंधगभेएणेवं पंचूणसहस्समुदयाणं ॥२९॥

बारस दुगोदएहिं भंगा चउरो य संपराएहिं।
सेसा तेच्चिय भंगा नवसय छावत्तरा एवं ॥३०॥

मिच्छाइ अप्पमत्तंतयाण अट्ठट्ठ होंति उदयाणं।
चउवीसाओ सासाण—मीसअपुव्वाण चउ चउरो ॥३१॥

चउवीसगुणा एए बायरसुहुमाण सत्तरस अण्णे।
सव्वेसुवि मोहुदया पण्णसट्ठा बारससयाओ ॥३२॥

उदयविगप्पा जे जे उदीरणाएवि होंति ते ते उ।
अंतमुहुत्तिय उदया समयादारब्भ भंगा य ॥३३॥

मिच्छत्तं अणमीसं चउरो चउरो कसाय वा संमं।
ठाइ अपुव्वे छक्कं वेयकसाया तओ लोभं ॥३४॥

अट्ठगसत्तगछक्कगचउतिगदुगएक्कगाहिया वीसा।
तेरस बारेक्कारस संते पंचाइ जा एक्कं ॥३५॥

अणमिच्छमीससम्माण अविरया अप्पमत्त जा खवगा।
समयं अट्ठकसाए नपुंसइत्थी कमा छक्क ।३६॥

पुंवेयं कोहाइ नियट्टि नासेइ सुहुम तणुलोभं।
तिण्णेगतिपण चउसु तेक्कारस चउति संताणि ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छव्वीसणाइमिच्छे उव्वलणाए व सम्ममीसाणं ।
चउवीस अणविजोए भावो भूओ वि मिच्छाओ ॥३८॥

सम्ममीसाणं मिच्छो सम्मो पढमाण होइ उव्वलगो ।
बंधावलियाउप्पि उदओ संकंतदलियस्स ॥३९॥

बावीसं बंधते मिच्छे सत्तोदयंमि अडवीसा ।
संतं छसत्तवीसा य होंति सेसेसु उदएसु ॥४०॥

सत्तरसबंधगे छोदयम्मि संतं इगट्ठ चउवीसा ।
सगति दुवीसा य सगट्ठगोदये नेयरिगिवीसा ॥४१॥

देसाइसु चरिमुदए इगिवीसा वज्जियाइ संताइं ।
सेसेसु होंति पंचवि तिसुवि अपुव्वंमि संततिगं ॥४२॥

पंचाइबंधगेसु इगट्ठचउवीसऽबंधगेगं च ।
तेरसबारेक्कारस य होंति पणबंधि खवगस्स ॥४३॥

एगाहियाय बंधा चउबंधगमाइयाण संतंसा ।
बंधोदयाण विरमे जं संतं छुभइ अण्णत्थ ॥४४॥

सत्तावीसे पल्लासंखंसो पोग्गलद्ध छब्बीसे ।
बे छावट्ठी अडचउवोसिगिवीसे उ तेत्तीसा ॥४५॥

अंतमुहुत्ता उ ठिई तमेव दुहओ विसेससंताणं ।
होइ अणाइ अणंतं अणाइ संतं च छव्वीसा ॥४६॥

अपज्जत्तगजाई पज्जत्तगईहि पेरिया बहुसो ।
बंधं उदयं च उवेंति सेसपगइउ नामस्स ॥४७॥

उदयप्पत्ताणुदओ पएसओ अणुवसंतपगईणं ।
अणुभागओ उ निच्चोदयाण सेसाण भइयव्वो ॥४८॥

अथिरासुभचउरंसं परघायदुगं तसाइ धुवबंधी ।
अजसपणिंदि विउव्वाहारग सुभखगइ सुरगइया ॥४९॥

बंधइ तित्थनिमित्ता मणुउरलदुरिसभदेवजोगाओ ।
नो सुहुमतिगेण जसं नो अजसऽथिराऽसुभाहारे ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तगबन्धं दूसरपरघायसासपज्जत्तं ।
तसअपसत्थाखगइं वेउव्वं नरयगइहेऊ ॥५१॥

हुण्डोरालं धुवबंधिणीउ अथिराइदूसरविहूणा ।
गइ आणुपुव्वि जाई बायरपत्तेयऽपज्जत्ते ॥५२॥

बंधइ सुहुमं साहारणं च थावरतसंगछेवट्ठं ।
पज्जत्ते उ सथिरसुभजससासुज्जोवपरघायं ॥५३॥

आयावं एगिंदियअपसत्थविहदूसरं व विगलेसु ।
पंचिंदिएसु सुसराइखगइसंघयणसंठाणा ॥५४॥

तेवीसा पणुवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीस एगो बंधट्ठाणाइ नामऽट्ठ ॥५५॥

मणुयगईए सव्वे तिरियगईए य छ आइमा बंधा ।
नरए गुणतीस तीसा पंचछवीसा य देवेसु ॥५६॥

अडवीस नरयजोग्गा अउवीसाई सुराण चत्तारि ।
तिगपणछव्वीसेगिंदियाण तिरिमणुय बंधतिगं ॥५७॥

मिच्छम्मि सासणाइसु तिअट्ठवीसाइ नामबंधाओ ।
छत्तिण्णि दोति दोदो चउपण सेसेसु जसबंधो ॥५८॥

तग्गयणुपुव्विजई थावरमाईय दूसरविहूणा ।
धुवबंधि हुण्डविग्गह तेवीसाऽपज्जथावरए ॥५९॥

पगईणं वच्चासो होइ गइइंदियाइ आसज्ज ।
सपराघाऊसासा पणवीस छवीस सायावा ॥६०॥

तग्गइयाइदुवीसा संघयणतसंग तिरियपणुवीसा ।
दूसर परघाउस्सासखगइ गुणतीस तीसमुज्जोवा ॥६१॥

तिरिबंधा मणुयाणं तित्थगरं तीसमंति इह भेओ ।
संघयणूणिगुतीसा अडवीसा नारए एक्का ॥६२॥

तित्थयराहारगदोतिसंजुओ बंधो नारयसुराणं ।
अनियट्टीसुहुमाणं जसकित्ती एस इगिबंधो ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहारणाइ मिच्छो सहुमायवथावरं सनरयदुगं।
इगिविगलिंदियजाई हुण्डमपज्जत्तछेवट्ठं ॥६४॥

सासायणेऽपसत्थाविहगगई दूसरदुभगुज्जोवं।
अणाएज्जं तिरियदुगं मज्झिमसंघयणसंठाणा ॥६५॥

मीसो सम्मोरालमणुयदुगयाइ आइसंघयणं।
बंधइ देसो विरओ अथिरासुभअजसपुव्वाणि ॥६६॥

अपमत्तो सनियट्टि सुरदुगवेउव्वजुयलधुवबंधी।
परघाउसासखगई तसाइचउरंस पंचेंदि ॥६७॥

विरए आहारुदओ बंधो पुण जा नियट्टि अपमत्ता।
तित्थस्स अविरयाओ जा सुहुमो ताव कित्तीए ॥६८॥

उज्जोवआयवाणं उदओपुव्विंपि होइ पच्छावि।
ऊसाससरेहिंतो सुहुमतिगुज्जोय नायावं ॥६९॥

उज्जोवेनायावं सुहुमतिगेण न बज्झए उभयं।
उज्जोवजसाणुदए जायइ साहारणस्सुदओ ॥७०॥

दुभगाईणं उदए बायरपज्जो विउव्वए पवणो।
देवगईए उदओ दुभगअणाएज्ज उदएवि ॥७१॥

सूसरउरओ विगलाण होइ विरयाण देसविरयाणं।
उज्जोवुदओ जायइ वेउव्वाहारगद्धाए ॥७२॥

अडनववीसिगवीसा चउवीसेगहिय जाव इगितीसा।
चउगइएसु बारस उदयट्ठाणाइं नामस्स ॥७३॥

मणुएसु अचउवीसा वीसडनववज्जियाउ तिरिएसु।
इगपण सगट्ठनववीस नारए सुरे सतीसा ते ॥७४॥

इगवीसाई मिच्छे सगट्ठवीसा य सासणे हीणा।
चउवीसूणा सम्मे सपंचवीसाए जोगिम्मि ॥७५॥

पणवीसाए देसे छव्वीसूणा पमत्ति पुण पंच।
गुणतीसाई मीसे तीसिगुतीसा य अपमत्ते ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठो नवो अजोगिस्स वीसओ केवलीसमुग्घाए।
इगिवीसो पुण उदओ भवंतरे सव्वजीवाणं ॥७७॥

चउवीसाई चउरो उदया एगिंदिएसु तिरिमणुए।
अडवीसाइ छव्वीसा एक्केक्कूणा विउव्वंति ॥७८॥

गइआणुपुव्विजाई थावरदुभगाइतिण्णि धुवउदया।
एगिंदियइगिवीसा सेसाण व पगइ वच्चासो ॥७९॥

सा आणुपुव्विहीणा अपज्जएगिंदितिरियमणुयाणं।
पत्तेउवघायसरीरहुण्ड सहिया उ चउवीसा ॥८०॥

परघाय सासआयवजुत्ता पणछक्कसत्तवीसा सा।
संघयण अंगजुत्ता चउवीस छवीस मणुतिरिए ॥८१॥

परघायखगइजुत्ता अडवीसा गुणतीस सासेणं।
तीसा सरेण सुज्जोव तित्थ तिरिमणुय इगतीसा ॥८२॥

तिरिउदय छव्वीसाइ संघयणविवज्जियाउ ते चेव।
उदया नरतिरियाणं विउव्वगाहारगजईणं ॥८३॥

देवाणं सव्वेवि हु ते एव विगलोदया असंघयणा।
संघयणुज्जोयविवज्जिया उ ते नारएसु पुणो ॥८४॥

तसबायरपज्जत्तं सुभगाएज्जं पंचिंदिमणुयगई।
जसकीत्तितित्थयरं अजोगिजिण अट्ठगं नवगं ॥८५॥

निच्चोदयपगइजुआ चरिमुदया केवलीसमुग्घाए।
संठाणेसु सव्वेसु होंति दुसरावि केवलिणो ॥८६॥

पत्तेउवघायउरालदु छ य संठाण पढमसंघयणा।
छूढे छसत्तवीसा पुव्वुत्ता सेसया उदया ॥८७॥

तित्थयरे इगतीसा तीसा सामण्णकेवलीणं तु।
खीणसरे गुणतीसा खीणुस्सासम्मि अडवीसा ॥८८॥

साहारणाउ मिच्छे सुहुअपमज्जत्त आयवाणुदओ।
सासायणंमि थावरएगिंदिविगलजाईणं ॥८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मे विउव्विछक्कस्स दुभगणाएज्जअजसपुव्वीणं।
विरयाविरए उदओ तिरिगइउज्जोयपुव्वाणं ॥६०॥

विरयापमत्तएसुं अंततिसंघयणपुव्वगाणुदओ।
अपुव्वकरणमादिसु दुइयतइज्जाण खीणाओ ॥६१॥

नामधुवोदय सूसरखगई ओरालदुव य पत्तेयं।
उवघायति संठाणा उसभ जोगम्मि पुव्वुत्ता ॥६२॥

पिंडे तित्थगरुणे आहारुणे तहोभयविहूणे।
पढमचउक्कं तस्सउ तेरसगखए भवे बीयं ॥६३॥

सुरदुगवेउव्वियगइदुगे य उव्वट्टिए चउत्थाओ।
मणुदुगेय नवट्ठ दुहा भवे संतयं एक्कं ॥६४॥

थावरतिरिगइदोदो आयावेगेंदि विगलसाहारं।
नरयदुगुज्जोवाणि य दसाइमेगंततिरिजोगा ॥६५॥

एगिंदिएसु पढमदुगं वाऊतेऊसु तइयगमणिच्चं।
अहवा पणतिरिएसुं तस्संतेगिंदियाइसुं ॥६६॥

पढमं पढमगहीणं नरए मिच्छंमि अधुवतियजुत्त।
देवेसाइचउक्कं तिरिएसु अतित्थमिच्छसंतागि ॥६७॥

पढमचउक्कं सम्मा बीयं खीणाउ बार सुहुमे अ।
सासणमीसि वितित्थं पढममजोगंमि अट्ठ नव ॥६८॥

नवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नवसत्तिगुणतीसतीसे य ॥६९॥

एक्केक्के इगतीसे एक्के एक्कुदय अट्ठ संतंसा।
उवरयबंधे दस दस नामोदयसंतठाणाणि ॥१००॥

बंधोदयसंतेसुं पण पण पढमंतिमाण जा सुहुमो।
संतोइण्णाइं पुण उवसमखीणे परे नत्थि। १०१॥

मिच्छा सासायणेसुं नवबंधुवलक्खिया उ दो भंगा।
मीसाओ य नियट्टी जा छब्बंधेण दो दो उ ॥१०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउबंधे नवसंते दोण्णि अपुव्वाउ सुहुमरागो जा।
अब्बंधे णवसंते उवसंते हुन्ति दो भंगा ॥१०३॥

चउबंधे छस्संते बायरसुहुमाणमेगुक्खवयाणं।
छसु चउसु व संतेसु दोण्णि अबंधंमि खीणस्स ॥१०४॥

चत्तारि जा पमत्तो दोण्णि उ जा जोगि सायबंधेणं।
सेलेसि अबंधे चउ इगि संते चरिमसमए दो ॥१०५॥

अट्ठछलाहियवीसा सोलस वीसं च बारस छ दोसु।
दो चउसु तीसु एक्कं मिच्छाइसु आउए भंगा ॥१०६॥

नरतिरिउदए नारयबंधविहूणा उ सासणि छव्वीसा।
बंधसमऊण सोलस मीसे चउ बंध जुय सम्मे ॥१०७॥

देसविरयम्मि बारस तिरिमणुभंगा छबंधपरिहीणा।
मणुभंगतिबंधूणा दुसु सेसा उभयसेढीसु ॥१०८॥

पंचादिमा उ मिच्छे आदिमहीणा उ सासणे चउरो।
उच्चबन्धेणं दोण्णि उ मीसाओ देसविरयं जा ॥१०९॥

उच्चेणं बन्धुदए जा सुहुमोऽबंधि छट्ठओ भंगो।
उवसंता जाऽजोगीदुचरिम चरिमंमि सत्तमओ ॥११०॥

ओहम्मि मोहणीए बंधोदयसंतयाणि भणियाणि।
अहुणाऽवोग्गडगुणउदयपयसमूहं पवक्खामि ॥१११॥

जा जंमि चउव्वीसा गुणियाओ ताउ तेण उदएणं।
मिलिया चउवीसगुणा इयरपएहिं च पयसंखा ॥११२॥

सत्तसहस्सा सट्ठीए वज्जिया अहव ते तिवण्णाए।
इगुतीसाए अहवा बंधगभेएण मोहणिए ॥११३॥

अटठ्टठ्ठी बत्तीसा बत्तीसा सटिठ्मेव बावन्ना।
चउयाला चउयाला वीसा मिच्छाउ पयधुवगा ॥११४॥

तिण्णिसया बावण्णा मिलिया चउवीस ताडिया एए।
बायरउदयपएहिं सहिया उ गुणेसु पयसंखा ॥११५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेवीसूणा सत्तरस वज्जिया अहव सत्तअहियाइं।
पंचासीइसयाइं उदयपयाइं तु मोहस्स ॥११६॥

एवं जोगुवओगालेसाईभेयओ बहुभेया।
जा जस्स जंमि उ गुणे संखा सा तंमि गुणगारो ॥११७॥

उदयाणुवयोगेसु सगसयरिसया तिउत्तरा होंति।
पण्णासपयपहस्सा तिण्णिसया चेव पण्णरसा ॥११८॥

तिगहीणा तेवन्नसया उ उदयाण होंति लेसाणं।
अडतीससहस्साइं पयाण सय दो य सगतीसा ॥११९॥

चोद्दस उ सहस्साइं सयं च गुणहत्तरं उदयमाणं।
सत्तरसा सत्तसया पणनउइ सहस्स पयसंखा ॥१२०॥

मीसदुगे कम्मइए अणउदयविवज्जियाउ मिच्छस्स।
चउवीसाउ ण चउरो तिगुणाओ तो रिणं ताओ ॥१२१॥

वेउव्वियमीसम्मि नपुंसवेओ न सासणे होइ।
चउवीसचउक्काओ अओ तिभागा रिणं तस्स ॥१२२॥

कम्मयविउव्विमीसे इत्थीवेओ न होइ सम्मस्स।
अपुमित्थि उरलमीसे तच्चउवीसाण रिणमेय ॥१२३॥

आहारगमीसेसु इत्थीवेओ न होइ उ पमत्ते।
दोण्णि तिभागाउ रिणं अपमत्तजइस्स उ तिभागो ॥१२४॥

उदएसु चउवीसा धुवगाउ पदेसु जोगमाईहिं।
गुणिया मिलिया चउवीसताडिया इयरसंजुत्ता ॥१२५॥

अपमत्तसासणेसु अड सोल पमत्त सम्म बत्तीसा।
मिच्छंमि य छण्णउई ठावेज्जा सोहणनिमित्तं ॥१२६॥

जोगतिगेणं मिच्छे नियनियचउवीसगाहिं सेसाणं।
गुणिऊणं पिंडेज्जा सेसा उदयाण परिसंखा ॥१२७॥

चउवीसाइगुणेज्जा पयाणि अहिगिच्च मिच्छ छन्नउइ।
सेसाणं धुवगेहिं एगीकिच्चा तओ सोहे ॥१२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधोदयसंताइं गुणेसु कहियाइ नामकम्मस्स ।
गइसु य अव्वगडंमि वोच्छामि इंदिएसु पुणो ॥१२९॥

इगि विगले पण बंधा अडवीसूणा उ अट्ठ इयरंमि ।
पंच छ एक्कारुदया पण-पण बारस उ संताणि ॥१३०॥

नाणंतरायदंसण बंधोदयसंत भंग जे मिच्छे ।
ते तेरसठाणेसु सण्णिम्मि गुणासिया सव्वे ॥१३१॥

तेरससु वेयणीयस्स आइमा होंति भंगया चउरो ।
निच्चुदय तिण्णि गोए सव्वे दोण्हंपि सण्णिस्स ॥१३२॥

तिरिउदए नव भंगा जे सव्वे असण्णि पज्जत्ते ।
नारयसुरचउभंगायरहिया इगिविगलदुविहाणं ॥१३३॥

असण्णि अपज्जत्ते तिरिउदए पंच जह उ तह मणुए ।
मणपज्जत्ते सव्वे इयरे पुण दस उ पुव्वुत्ता ॥१३४॥

बंधोदयसंताइं पुण्णाइं सण्णिणो उ मोहस्स ।
बायर विगलासण्णिसु पज्जेसु दु आइमा बंधा ॥१३५॥

अट्ठसु बावीसोच्चिय बंधो अट्ठाइ उदय तिण्णेव ।
सत्तगजुया उ पंचसु अडसत्तछब्बीस संतंमि ॥१३६॥

सण्णिम्मि अट्ठसण्णिम्मि छाइमा तेऽट्ठवीस परिहीणा ।
पज्जत्तविगलबायरसुहुमेसु तहा अपज्जाणं ॥१३७॥

इगवीसाई दो चउ पण उदया अपज्जसुहुमबायराणं ।
सण्णिस्स अचउवीसा इगिछडवीसाइ सेसाणं ॥१३८॥

तेरससु पंच संता तिण्णुधुवा अट्ठसीइ बाणउइ ।
सण्णिस्स होंति बारस गुणठाणकमेण नामस्स ॥१३९॥

बज्झंति सत्त अट्ठ य नारयतिरिसुरगईसु कम्माइं ।
उदीरणावि एवं संतोइण्णाइं अट्ठ तिसु ॥१४०॥

गुणभिहियं मणुएसु सगलतसाणं च तिरियपडिवक्खा ।
मणजोगी छउमाइ व कायवई जह सजोगीणं ॥१४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेई नवगुणतुल्ला तिकसाइवि लोभ दसगुणसमाणो।
सेसाणिवि ठाणाइं एएण कमेण नेयाणि ॥१४२॥

सत्तरसुत्तरमेगुत्तरं तु चोहत्तरीउ सगसयरी।
सत्तट्ठी गुणसट्ठी गुणसट्ठी अट्ठवन्ना य ॥१४३॥

निद्दादुगे छवण्णा छव्वीसा णामतीसविरमंमि।
हासरईभयकुच्छाविरमे बावीस पुव्वंमि ॥१४४॥

पुंवेयकोहमाइसु अबज्झमाणेसु पंच ठाणाणि।
बारे सुहुमे सत्तरस पगतिओ सायमियरेसु ॥१४५॥

मिच्छे नरएसु सयं छण्णउई सासणो सयरि मीसो।
बावत्तरिं तु सम्मो चउराइसु बंधति अतित्था ॥१४६॥

मणुयदुगुच्चागोयं भवपच्चइयं न होइ चरिमाए।
गुणपच्चइयं तु बज्झइ मणुयाऊ ण सव्वहा तत्थ ॥१४७॥

सामण्णसुराजोग्गा आजोइसिया ण बंधंति सतित्था।
इगिथावरायवजुया सणंकुमारा ण बंधंति ॥१४८॥

तिरितिगउज्जोवजुया आणयदेवा अणुत्तरसुरा उ।
अणमिच्छणीयदुब्भगथीणतिगं अपुमथीवेयं ॥१४९॥

संघयणा संठाणा पण पण अपसत्थविहगइ न तेसिं।
पज्जत्ता बंधंति उ देवाउमसंखवासाऊ ॥१५०॥

तित्थायवउज्जोयं नारयतिरिविगल तिगतिगेगिंदी।
आहार थावरचऊ आउ णासंखपज्जत्ता ॥१५१॥

पज्जतिगया गतिगणीयमपसत्थविहनपुंसाणं।
संघयणउरलमणुदुगपणसंठाणाणं अबंधा ॥१५२॥

किण्हाइतिगे अस्संजमे य वेउव्विजुगे न आहारं।
बंधइ न उरलमीसे नरयतिगं छट्ठममराउं ॥१५३॥

कम्मजोगि अणाहारगो य सहिया दुगाउ णेयाओ।
सगवण्णा तेवट्ठी बंधति आहारमुभएसुं ॥१५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउलेसाईया बंधंति न निरयविगलसुहुमतिगं।
सेगिंदिथावरायवतिरियतिगुज्जोय नव बारं ॥१५५॥
सुयदेविपसायो पगरणमेयं समासओ भणियं।
समयाओ चंदरिसिणा समईविभवाणुसारेण ॥१५६॥

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २ :

मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

स्थान	स्थानगत प्रकृतियां	गुणस्थान	बंध प्रकार	काल प्रमाण	
				जघन्य	उत्कृष्ट
२२ प्र.	मि., १६ क. १वे, २यु.भ.जु.	पहला	६ प्रकार २ युगल और वेदत्रिक के गुणाकार से	अन्तमुहूर्त	देशोनार्ध पुद्गल परावर्तन
२१ प्र.	× ,, ,, ,, ,, ,,	दूसरा	४ प्रकार २ वेद × यु० २	एक समय	६ आवलिका
१७ प्र.	×१२क. ,, ,, ,, ,,	तीसरा चौथा गुणस्थान	२ प्रकार (युगल द्वारा)	अन्तमुहूर्त	साधिक ३३ सागर
१३ प्र.	×८क. ,, ,, ,, ,,	पांचवां	२ प्रकार (युगल द्वारा)	,,	देशोन पूर्व कोटि वर्ष
९ प्र.	×४क. ,, ,, ,, ,,	६, ७, ८ गुणस्थान	१ प्रकार छठे गुणस्थान में २ प्रकार	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान	स्थानगत प्रकृतियां	गुणस्थान	बंध प्रकार	काल प्रमाण	
				जघन्य	उत्कृष्ट
५ प्र.	X ४क. पुरुषवेद	९वें के प्रथम भाग पर्यन्त	१ प्रकार	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४ प्र.	X ४क.	९वें के दूसरे भाग पर्यन्त	"	"	"
३ प्र.	संज्व. मान, माया, लोभ	९वें के तीसरे भाग पर्यन्त	"	"	"
२ प्र.	संज्व. माया, लोभ	९वें के चौथे भाग पर्यन्त	"	"	"
१ प्र.	संज्व. लोभ	९वें के पांचवें भाग पर्यन्त	"	"	"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिशिष्ट ३ :

मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

यस्थान	स्थानगत प्रकृतियाँ	उदयस्थान प्रकार	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल
प्र.	अन्यतम संज्वलन कषाय	४ प्र॰ ःर (क्रोधादि के द्वारा)	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
प्र.	अन्यतम वेद का प्रक्षेप	१२ प्रकार (४ कषाय × ३ वेद)	,,	,,
प्र.	हास्य युगल या शोक युगल के प्रक्षेप से	२४ प्रकार (४ क. × ३वे × २ यु.)	,,	,,
प्र.	भय के प्रक्षेप से	,,	,,	,,
प्र.	कुत्सा के प्रक्षेप से	,,	,,	,,
प्र.	अन्यतम प्रत्या. कषाय के प्रक्षेप से	,,	,,	,,
प्र.	,, अप्रत्या. के प्रक्षेप से	,,	,,	,,
प्र.	,, अनन्ता. के प्रक्षेप से	,,	,,	,,
प्र.	मिथ्यात्व के प्रक्षेप से	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ४ : गुणस्थानापेक्षा मोहनीयकर्म के उदयस्थानों के संभव भंगों का प्रारूप

गुणस्थान	उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियाँ: मिथ्यात्व	अनन्ता. ४	अप्रत्या. ४	प्रत्या. ४	संज्व. ४	वेद ३	युगल ४	भय	जुगुप्सा	चौबीसी भंग	कुल भंग
मिथ्यात्व	७ प्र.	१	०	१	१	१	१	२	०	०	२४	१९२ भंग
	८ प्र.	१	०	१	१	१	१	२	१	०	२४	८ चौबीसी
	८ प्र.	१	०	१	१	१	१	२	०	१	२४	
	८ प्र.	१	१	१	१	१	१	२	०	०	२४	
	९ प्र.	१	०	१	१	१	१	२	१	१	२४	
	९ प्र.	१	१	१	१	१	१	२	१	०	२४	
	९ प्र.	१	१	१	१	१	१	२	०	१	२४	
	१० प्र.	१	१	१	१	१	१	२	१	१	२४	
सासादन	७ प्र.	०	१	१	१	१	१	२	०	०	२४	९६ भंग
	८ प्र.	०	१	१	१	१	१	२	०	१	२४	४ चौबीसी
	८ प्र.	०	१	१	१	१	१	२	१	०	२४	
	९ प्र.	०	१	१	१	१	१	२	१	१	२४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्र.	७ प्र.	मिश्र.	०	१	१	१	१	२	०	०	२४	९६ भंग ४ चौबीसी
	८ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	१	०	२४	
	८ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	०	१	२४	
	९ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	१	१	२४	
अवि. सम्य.	६ प्र.	०	०	१	१	१	१	२	०	०	२४	१९२ भंग ८ चौबीसी
	७ प्र.	०	०	१	१	१	१	२	१	०	२४	
	७ प्र.	०	०	१	१	१	१	२	०	१	२४	
	७ प्र.	सम्य.	०	१	१	१	१	२	०	०	२४	
	८ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	१	०	२४	
	८ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	०	१	२४	
	८ प्र.	,,	०	१	१	१	१	२	१	१	२४	
	९ प्र.	सम्य.	०	१	१	१	१	२	१	२	२४	
देशविरत	५ प्र.	०	०	०	१	१	१	२	०	०	२४	१९२ भंग ८ चौबीसी
	६ प्र.	०	०	०	१	१	१	२	१	०	२४	
	६ प्र.	०	०	०	१	१	१	२	०	१	२४	
	६ प्र.	सम्य.	०	०	१	१	१	२	०	०	२४	
	७ प्र.	,,	०	०	१	१	१	२	१	०	२४	
	७ प्र.	,,	०	०	१	१	१	२	०	१	२४	
	७ प्र.	,,	०	०	१	१	१	२	१	१	२४	
	८ प्र.	सम्य.	०	०	१	१	१	२	१	१	२४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान	उदयस्थान	उदयस्थान प्रकृतियां									चौबीसी भंग	कुल भंग
		मिथ्यात्व	अनंता. ४	अप्रत्या. ४	प्रत्या. ४	संज्व. ४	वेद ३	युगल ४	भय	जुगुप्सा		
प्रमत्त	४ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	०	०	२४	१९२ भंग
अप्रमत्त	५ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	१	०	२४	८ चौबीसी
संयत	५ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	०	१	२४	प्रमत्त और
	५ प्र.	सम्य.	०	०	०	१	१	२	०	०	२४	अप्रमत्त संयत
	६ प्र.	,,	०	०	०	१	१	२	१	०	२४	गुणस्थानों की
	६ प्र.	,,	०	०	०	१	१	२	०	१	२४	समस्त वक्त-
	६ प्र.	,,	०	०	०	१	१	२	१	१	२४	व्यता जानना
	७ प्र.	सम्य.	०	०	०	१	१	२	१	१	२४	चाहिए।
अपूर्व.	४ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	०	०	२४	९६ भंग
	५ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	१	०	२४	४चौबीसी
	५ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	०	१	२४	
	६ प्र.	०	०	०	०	१	१	२	१	१	२४	

आगे के गुणस्थानों में चौबीसी प्राप्त नहीं होती हैं। अतः उनका वर्णन पृष्ठ ३६५ के प्रारूप के अनुसार जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(बंधकाल में) मोहनीयकर्म के उदयविकल्प

बंध	उदय प्रकृतियां		भंग	भंगोत्पत्ति
	संज्वलनकषाय	वेद		
५ प्र.	१	१	१२	क. ४ × वे. ३ = १२
४ प्र.	१	(१ मतान्तर से)	४ (१२)	अन्यतम संज्वलन (सं० ४ × वे. ३ = १२ मतान्तर से)
३ प्र.	१	×	३	संज्वलनत्रिक से
२ प्र.	१	×	२	संज्व. माया, लोभ से
१ प्र.	१	×	१	संज्व. लोभ
०	१	×	१	,,
			२३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ५ : गुणस्थानापेक्षा मोहनीयकर्म के पूर्वोक्त उदयस्थानों की चौबीसी की प्राप्ति का प्रारूप

उदयस्थान	चौबीसी	मिथ्या.	सासा.	मिश्र.	अवि.	देशवि.	प्रमत्त	भंग
१० प्र.	१	१	०	०	०	०	०	२४
९ प्र.	६	३	१	१	१	०	०	१४४
८ प्र.	११	३	२	२	३	१	०	२६४
७ प्र.	१०	१	१	१	३	३	१	२४०
६ प्र.	७	०	०	०	१	३	३	१६८
५ प्र.	४	०	०	०	०	१	३	९६
४ प्र.	१	०	०	०	०	०	१	२४
योग	४० चौ.	८	४	४	८	८	८	९६०

इन ९६० भंगों में पूर्वोक्त २३ भंगों को मिलाने से मोहनीयकर्म के उदयस्थानों के सर्व भंग ९८३ होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ६ : मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

सत्तास्थान	प्रकृतियां	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल
२८ प्र.	सभी प्रकृतियां	अन्तर्मुहूर्त	पल्य का असं. भागाधिक ६६ सागर
२७ प्र.	सम्यक्त्व की उद्वलना	पल्य. असं. भाग	पल्य. असं. भाग
२६ प्र.	मिश्र की उद्वलना अथवा अनादिमिथ्यादृष्टि	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन (अनादि-सांत, अनादि-अनन्त)
२४ प्र.	अनन्ता. की उद्वलना, क्षय	,,	६६ सागर
२३ प्र.	मिथ्यात्व का क्षय	,,	अन्तर्मुहूर्त
२२ प्र.	मिश्रमोह का क्षय	,,	,,
२१ प्र.	सम्यक्त्वमोह का क्षय	,,	मनुष्यभवद्वयाधिक ३३ सागर
१३ प्र.	कषायाष्टक का क्षय	,,	अन्तर्मुहूर्त
१२ प्र.	नपु. वेद का क्षय	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्थान	प्रकृतियां	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल
११ प्र.	स्त्रीवेद का क्षय	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
५ प्र.	हास्यषट्क क्षय	,,	,,
४ प्र.	पुरुषवेद का क्षय	,,	,,
३ प्र.	संज्व. क्रोध क्षय	,,	,,
२ प्र.	,, मान क्षय	,,	,,
१ प्र.	,, माया क्षय	,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ७ : गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थान दर्शक प्रारूप

गुणस्थान	सत्तास्थान
पहला	२८, २७, २६ प्र.
दूसरा	२८ प्र.
तीसरा	२८, २७, २४ प्र.
चौथा	२८, २४, २३, २२, २१ प्र.
पांचवां	,, ,, ,, ,, ,, प्र.
छठा	,, ,, ,, ,, ,, प्र.
सातवां	,, ,, ,, ,, ,, प्र.
आठवां	२८, २४, २१ प्र.
नौवां	२८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, २, १ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान	सत्तास्थान
दसवां	२८, २४, २१, १ प्र.
ग्यारहवां	२८, २४, २१ प्र.
बारहवां	०
तेरहवां	०
चौदहवां	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ८ : मोहनीयकर्म के बंध-उदय-सत्तास्थानों का संवेध दर्शक प्रारूप

बंध	उदय	सत्ता	स्वामित्व
२२ प्र.	७ प्र.	२८ प्र.	मिथ्यादृष्टि
२२ प्र.	८, ९, १० प्र.	२८, २७, २६ प्र.	,,
२१ प्र.	७, ८, ९ प्र.	२८ प्र.	सासादनी
१७ प्र.	६ प्र.	२८, २४ प्र.	चतुर्थ गुण. औप. सम्यक्त्वी
१७ प्र.	६ प्र.	२१ प्र.	,, क्षायिक ,,
१७ प्र.	७, ८ प्र.	२८, २४, २३, २२, २१ प्र.	,, सम्यग्दष्टि
१७ प्र.	७, ८, ९ प्र.	२८, २७, २४ प्र.	मिश्रदृष्टि
१७ प्र.	९ प्र.	२८, २४, २३, २२ प्र.	चतुर्थ गुण. क्षायो. सम्यक्त्वी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध	उदय	सत्ता	स्वामित्व
१३ प्र.	५, ६, ७, ८ प्र.	२८ प्र.	औप. तिर्यंच पांचवें गुणस्थान.
१३ प्र.	,,	२४ प्र.	क्षायो. ,, ,,
१३ प्र.	५ प्र.	२१, २४, २८ प्र.	देशविरत मनुष्य
१३ प्र.	६, ७ प्र.	२८, २४, २३, २२, २१ प्र.	,, ,,
१३ प्र.	८ प्र.	२८, २४, २३, २२ प्र.	क्षायो. देशविरत मनुष्य
९ प्र.	४ प्र.	२८, २४, २१ प्र.	प्रमत्ताप्रमत्त
९ प्र.	५ प्र.	२८, २४, २३, २२, २१ प्र.	,,
९ प्र.	७ प्र.	२८, २४, २३, २२ प्र.	,,
९ प्र.	४, ५, ६ प्र.	२८, २४, २१ प्र.	अपूर्वकरण गुणस्थान.
५ प्र.	२ प्र.	२८, २४, २१, १३, १२, ११ प्र.	अनिवृत्ति. गुणस्थान.
४ प्र.	२, १ प्र.	२८, २४, २१, ११, ४, ५ प्र.	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध	उदय	सत्ता	स्वामित्व
३ प्र.	१ प्र.	२८, २४, २१, ४, ३ प्र.	अनिवृत्ति. गुणस्थान
२ प्र.	१ प्र.	२८, २४, २१, ३, २ प्र.	,,
१ प्र.	१ प्र.	२८, २४, २१, २, १ प्र.	,,
अबंध	१ प्र.	२८, २४, २१, १ प्र.	सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ६ : गुणस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

गुणस्थान	बंधस्थान	बंधक जीव	गतिप्रायोग्य
मिथ्यात्व	२३ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	एकेन्द्रियप्रायोग्य
,,	२५, २६ प्र.	नारकों के अतिरिक्त सभी	,,
,,	२५ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	तिर्यंच, मनुष्य प्रायोग्य
,,	२८ ,,	,,	देव, नारक प्रायोग्य
,,	२९, ३० प्र.	चातुर्गतिक जीव	तिर्यंच, मनुष्य प्रायोग्य
सासादन	२८ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	देव प्रायोग्य
,,	२९ प्र.	देव, नारक	तिर्यंच, मनुष्य प्रायोग्य
,,	३० प्र.	,,	तिर्यंच प्रायोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्र	२८ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	देव प्रायोग्य
,,	२६ प्र.	देव, नारक	मनुष्य प्रायोग्य
अवि. सम्य.	२८ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	देव प्रायोग्य
,,	२६ प्र.	मनुष्य	,,
,,	२६ प्र.	देव, नारक	मनुष्य प्रायोग्य
,,	३० प्र.	,,	,,
देशविरत	२८ प्र.	तिर्यंच, मनुष्य	देव प्रायोग्य
,,	२६ प्र.	मनुष्य	,,
प्रमत्तविरत	२८, २६, प्र.	,	,,
अप्रमत्तविरत	२८, २६, ३०, ३१ प्र.	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान	बंधस्थान	बंधक जीव	गति प्रायोग्य
अपूर्वकरण	२८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	मनुष्य	देव प्रायोग्य
अनिवृत्तिकरण	१ प्र.	,,	,,
सूक्ष्मसंपराय	१ प्र.	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १० : तत् तत् गतिप्रायोग्य नामकर्म के बंधस्थानों के भंग

बंधस्थान	भंग	भंग प्राप्ति	प्रायोग्य बंध में
		एकेन्द्रियप्रायोग्य बंध में (४०)	
२३ प्र.	४	बा. सू./२ × साधा. प्र./२ = ४	अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य बंध
२५ प्र.	२०	यश. अयश./२ × शुभ. अशु./२ × स्थिर. अस्थि./२ = ८	पर्याप्त बादर प्रत्येक
		अयश के स्थि. अस्थि./२ × शु. अशु./२ = ४	,, ,, साधारण
		,, स्थि. अस्थि./२ × शु. अशु./२ × सा.प्र.सू./२ × ८	सूक्ष्म साधा. सू. प्र. प्रायोग्य बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधस्थान	भंग	भंग प्राप्ति	प्रायोग्य बंध में
२६ प्र.	१६	$\frac{\text{आत. उद्यो.}}{२} \times \frac{\text{स्थि. अस्थि.}}{२} \times \frac{\text{शु. अशु.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = १६$	पर्याप्त प्रत्येक बादर प्रायोग्य बंध
	४०		
		विकलेन्द्रिय प्रायोग्य बंध में (१७,१७,१७)	
२५ प्र.	१	प्रतिपक्ष प्रकृति के अभाव से	अपर्याप्त विकलेन्द्रिय प्रायोग्यबंध
२९ प्र.	८	$\frac{\text{स्थि. अस्थि.}}{२} \times \frac{\text{शु. अशु.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ८$	पर्याप्त ,, ,,
३० प्र.	८	,, ,, ,, = ८	,, ,,
	१७	ये १७ भंग द्वीन्द्रिय प्रायोग्य हैं। इसी प्रकार से त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय प्रायोग्य में भी जानना चाहिये। अतः विकलेन्द्रिय प्रायोग्य बंध का कुल योग ५१ होता है।	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

		तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रायोग्य में (९२१७)	
२५ प्र.	१	प्रतिपक्ष प्रकृति का अभाव होने से	अपर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रा.
२९ प्र.	४६०८	$\frac{\text{संस्थान}}{६} \times \frac{\text{संहनन}}{६} \times \frac{\text{खगति}}{२} \times \frac{\text{स्थिर. अस्थिर}}{२} \times$ $\frac{\text{शुभेतर}}{२} \times \frac{\text{सुभगेतर}}{२} \times \frac{\text{सुस्वर. दुःस्वर}}{२} \times$ $\frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ४६०८$	पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रायोग्य.
३० प्र.	४६०८	२९ प्रकृतिक बंधस्थानवत	,, ,,
	९२१७		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधस्थान	भंग	भंग प्राप्ति	प्रायोग्य बंध में
		मनुष्यगतिप्रायोग्य बंध में (४६१७)	
२५ प्र.	१	प्रतिपक्ष प्रकृति के अभाव से	अपर्याप्त मनुष्यगति प्रायोग्यबंध
२६ प्र.	४६०८	तिर्यंच पंचेन्द्रियवत्	पर्याप्त मनुष्यगति प्रायोग्यबंध
३० प्र.	८	स्थिर.अस्थिर/२ × शुभ. अशुभ/२ × यश. अयश./२ = ८	तीर्थं. सह. प. प्रा.
	४६१७		
		नरकगति प्रायोग्य बंध में (१)	
२८ प्र.	१	सर्व अशुभ प्रकृतियां होने से	नारक प्रायोग्य बंध में
	१		
		देवगति प्रायोग्य बंध में (१८)	
२८ प्र.	८	स्थिर-अस्थिर/२ × शुभ-अशुभ/२ × यश.अयश./२ = ८	देवप्रायोग्य बंध में
२९ प्र.	८	,, ,, ,, = ८	,, ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३० प्र.	१	सर्व शुभ प्रकृति होने से	देवप्रायोग्य बंध में
३१ प्र.	१	,,	,, ,,
	१८		
		सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान (१)	
१ प्र.	१	यशःकीर्ति मात्र के बंध की अपेक्षा	यशःकीर्ति बंध मात्र से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ११ : जीवस्थानों में नामकर्म के उदयस्थान और भंगों का प्रारूप

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियाँ	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
	(एकेन्द्रिय के उदयस्थान ५. भंग ४२)			
२१ प्र.	तै. का. अगु. स्थि., अस्थि. शु. अशु. वर्णचतुष्क. निर्माण यह १२ ध्रुवादेया. तथा तिर्यंचद्विक, स्था. एके. बा. सू. प. अप. दुर्भगनाम, यशः, अयशः इति ९ सहित २१ प्रकृतियां। (परस्पर विरोधी प्रकृतियों में सर्वत्र विकल्प से एक प्रकृति ग्रहण करना चाहिये।	५	$\frac{\text{बा. सू.}}{२} \times \frac{\text{पर्या. अपर्या.}}{२} = ४$ बाद. पर्याप्त यशः. १	पर्याप्त अपर्याप्त एकेन्द्रिय
२४ प्र.	औ. हुं. उप. प्रत्ये. साधा. सहित तिर्यंचगत्यानुरहित पूर्वोक्त	१०	$\frac{\text{प्र. आ.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ४$ $\frac{\text{प्र. सा.}}{२} = २$ अयश. के साथ	बादर पर्याप्त शरीरस्थ बादर अपर्याप्त शरीरस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

			$\frac{\text{पर्या. अप.}}{२} \times \frac{\text{प्र. सा.}}{२} = ४$ अयश. के साथ	सूक्ष्म शरीरस्थ
२४ प्र.	वैक्रियद्विक सहित औदा. द्विक-रहित पूर्वोक्त	१	बा. पर्या. प्र. अयश. के साथ	वैक्रिय बा. वायु काय
२५ प्र.	पूर्वोक्त २४ में पराघात को मिलाने से	७	$\frac{\text{प्र. सा.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ४$	देह पर्याप्त बादर
			$\frac{\text{प्र. सा.}}{२} = २$ अयश. के साथ	देह पर्या. सूक्ष्म
			बादर पर्याप्त प्र. अयश. के द्वारा १	वैक्रिय वायुकाय
२६ प्र.	पूर्वोक्त २५ में उच्छ्वास को मिलाने से	७	पूर्ववत्	उच्छ्वास पर्याप्त
२६ प्र.	उच्छ्वास के पूर्व आतप या उद्योत अधिक	६	$\frac{\text{प्र. सा.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश}}{१} = ४$ उद्योत के द्वारा	देह पर्याप्त बादर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियाँ	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
			$\frac{\text{प्र.}}{१} \times \frac{\text{यश. अयश}}{२} = २$	देहपर्याप्त बादर
२७ प्र.	सोच्छ्वास (आतप या उद्योत के साथ)	६	पूर्वोक्त वत	उच्छ्वास पर्याप्त
	(द्वीन्द्रिय के उदयस्थान भंग २२)			
२१ प्र.	ध्रुवोदय १२, तिर्यंचद्विक, द्वी. प्र. बा. अप. पर्या., दुर्भग, अना. यश. अयश. ६=२१	३	अयश का १ अपर्या. के यश. अयश. २ पर्याप्त के	गत्यन्तराल से ,,
२६ प्र.	तिर्यंचानु. रहित पूर्वोक्त २१ तथा औदा. आदि ६	३	पूर्ववत्	देहस्थ
२८ प्र.	परा. अशुभ खगति अधिक २६ प्रकृति	२	यश. अयश. के पर्याप्त के	देह पर्याप्त
२९ प्र.	उच्छ्वास अधिक २८ प्रकृति	२	,,	उच्छ्वास पर्याप्त
२९ प्र.	उद्योत सहित २८ प्र. उच्छ्वास से पूर्व	२	,,	देह पर्याप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३० प्र.	स्वर सहित २९ प्रकृति	४	$\frac{\text{सुस्वर, दुःस्वर}}{२} \times \frac{\text{यश. अय.}}{२} = ४$	भाषा पर्याप्त
३० प्र.	उद्योत सहित २९ प्र. स्वर से पूर्व	२	यश. अयश. द्वारा	उच्छ्वास पर्याप्त
३१ प्र.	उद्योत सहित ३० प्रकृति	४	$\frac{\text{यश. अय.}}{२} \times \frac{\text{स्वर द्विक}}{२} = ४$	भाषा पर्याप्त
	इसी प्रकार से त्रीन्द्रिय के २२, चतुरिन्द्रिय के २२ कुल मिलाकर विकलेन्द्रियों के ६६ भंग होते हैं।			
	सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय उदयस्थान भंग (४९०६)			
	सामान्य मनुष्य उदयस्थान भंग (२६०२) मनुष्य को उद्योत संबन्धी भंग नहीं होते।			

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृति	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
२१ प्र.	१२ ध्रुवोदया, गतिद्विक, पंचे. त्रस. बा. पर्या. अप. सुभग, आदे. यश. अयश. ९	६	$\frac{\text{सुभग दुर्भग}}{२} \times \frac{\text{आदे. अना.}}{२} \times$ $\frac{\text{यश. अयश.}}{२}$ = ८ पर्याप्त	गत्यन्तराल में मनुष्य, तिर्यंच
			दुर्भग, अना. अय. १ अपर्याप्त	,,
		मतान्तर से ५	$\frac{\text{सुभगादेय-दुर्भगाना.}}{२} \times$ $\frac{\text{यश. अयश}}{२}$ = ४ पर्याप्त	,,
			दुर्भगानादेयायश. १ अपर्याप्त को	,,
२६ प्र.	औ. २, संह. संस्था. उप. प्रत्ये. सहित आनु. रहित पूर्वोक्त २१	२०१	$\frac{\text{संह.}}{६} \times \frac{\text{संस्था.}}{६} \times \frac{\text{सुभ. दुर्भ.}}{२} \times$	देहस्थ म. ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

			$\frac{\text{आदे. अना.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} =$ २८८ पर्याप्त के	
२८ प्र.	पराघात खगति युक्त २६ प्र.	५७६	पूर्वोक्त २८८ × २ खगति = ५७६ पर्याप्त के	देह पर्याप्त म. ति.
२६ प्र.	उच्छ्वास युक्त २८ प्रकृति	५७६	पूर्ववत्	उच्छ्वा. पर्याप्त म. ति.
२६ प्र.	उद्योत युक्त २८ प्रकृति	५७६	,,	देह पर्या. म. ति.
३० प्र.	स्वर युक्त २६ प्र. (उच्छ्वास सहित)	११५२	५७६ × २ स्वर से गुणित ११५२	भाषा पर्या. म. ति.
३० प्र.	उद्योत युक्त २६ प्र. (उच्छ्वास सहित)	५७६	पूर्वोक्तानुसार	उच्छ्वा. पर्या. ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियां	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
३१ प्र.	उद्योत युक्त ३० प्र. (स्वर सहित) इस प्रकार सामान्य तिर्यंच पचेन्द्रिय के ४६०६ भंग तथा सामान्य मनुष्य के २६०२ भंग जानना चाहिये। मनुष्यों में उद्योत सम्बन्धी ३१ प्रकृतिक स्थान का अभाव है।	११५२	पूर्वोक्तवत्	भाषा पर्या. ति.
	वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के उदय भंग (५६)			
२५ प्र.	वै. २, समच., उप. प्रत्येक युक्त तिर्यंचानुपूर्वी रहित ति. पं. प्रायोग्य २१ प्र.	८	$\frac{\text{सुभग-दुर्भग}}{२} \times \frac{\text{आदे.-अना-}}{२} \times \frac{\text{यश.-अयश.}}{२} = ८$	देहस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७ प्र.	पराघात, सुखगति युक्त १५ प्र.	८	पूर्वोक्तवत्	देह पर्याप्त
२८ प्र.	उच्छ्वास युक्त २७ प्र.	८	,,	उच्छ्. पर्याप्त.
२८ प्र.	उद्योत युक्त २७ प्र.	८	,,	देह पर्याप्त
२९ प्र.	सुस्वर सहित २८ प्र. (उच्छ्वास युक्त)	८	,,	भाषा पर्याप्त
२९ प्र.	उद्योत युक्त २८ प्र. (उच्छ्वास युक्त)	८	,,	उच्छ्वास पर्या.
३० प्र.	उद्योत युक्त २९ प्र. (स्वर सहित	८	,,	भाषा पर्याप्त
	वैक्रिय मनुष्य के उदय भंग (३५)			
२५ प्र.	मनु. ग. पंचे. वै. २, समच. उप. त्रसादि ४, सुभग. आदे. यश. ध्रुवोदया १२	८	$\frac{\text{सुभग-दुर्भग}}{२} \times \frac{\text{आदे. अना.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ८$	वैक्रि. देहस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियां	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
२७ प्र.	परा. सुखगति सहित २५ प्रकृति	८	पूर्ववत्	वै. देह-पर्याप्त
२८ प्र.	उच्छ्वास सहित २७ प्र.	८	,,	वै. उच्छ्वा. पर्याप्त
२८ प्र.	उद्योत सहित २७ प्र.	१	सुभग-आदेय-यश. १ (संयत)	वै. देह-पर्याप्त
२९ प्र.	सुस्वर सहित २८ प्रकृति (उच्छ्वास युक्त)	८	पूर्वोक्त रीति से	वै. भाषा पर्या.
२९ प्र.	उद्योत सहित २८ प्रकृति (उच्छ्वास युक्त) स्वर से पूर्व	१	सुभग-आदेय-यश. १ (संयत)	वै. उच्छ्वास पर्याप्त
३० प्र.	उद्योत सहित २९ प्रकृति (स्वर युक्त)	१	,,	वै. भाषा पर्या.
	आहारक मनुष्य उदयस्थान भंग (७)			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५ प्र.	आहा. २. समच. उप. प्र. युक्त मनुष्यानुपूर्वी रहित सामान्य मनुष्य योग्य २१ प्र.	१	सभी प्रशस्त पदों से १	आहा. देहस्थ
२७ प्र.	परा. सुखगति सहित २५ प्र.	१	,,	आहा. देह पर्या.
२८ प्र.	उच्छ्वास सहित २७ प्र.	१	,,	उच्छ्वा. पर्याप्त
२८ प्र.	उद्योत सहित २७ प्र.	१	,,	आहा. देह पर्या.
२९ प्र.	सुस्वर युक्त २८ प्र. (उच्छ्वास सहित)	१	,,	भाषा पर्या.
२९ प्र.	उद्योत युक्त २८ प्र. (,,)	१	,,	उच्छ्वा. पर्या.
३० प्र.	उद्योत युक्त २९ प्र. (सुस्वर सहित)	१	,,	भाषा पर्याप्त
	केवलि के उदयस्थान भंग (६२)			
२० प्र.	म. गति. पंचे. प. बा. पर्या. सुभ. आदे. यश., ध्रुवोदया १२	१	सर्व प्रशस्त पद (समुद्घात में कार्मणयोगि के)	अजिन

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियां	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
२१ प्र.	जिन नाम सहित पूर्वोक्त २०	१	पूर्ववत्	जिन
२६ प्र.	औदा. २, संस्था. १, वज्रऋ. सं. प्र. उप. युक्त २० प्रकृति	६	६ संस्थान द्वारा ६ (समुद्घात में औदा. मिश्रयोगि)	अजिन
२७ प्र.	जिन नाम सहित २६ प्र.	१	समच. संस्था. १ (समुद्घात में औदा. मिश्रयोगि)	जिन
३० प्र.	परा. उच्छ्वास, खगति १ स्वर १ युक्त २६ प्रकृति	२४	$\frac{\text{संस्था.}}{६} \times \frac{\text{खगति}}{२} \times \frac{\text{स्वर}}{२} =$ २४ (औदारिक काययोगि)	अजिन
३१ प्र.	जिन नाम युक्त ३०	१	सर्व प्रशस्त पद (औदा. काययोगि)	जिन
३० प्र.	स्वर रहित ३१ (जिन युक्त)	१	,, निरुद्ध काययोग	जिन

२९ प्र.	उच्छ्वास रहित ३० (जिन युक्त)	१	पूर्वोक्त (निरुद्ध उच्छ्वास)	जिन
२९ प्र.	स्वर रहित ३० (जिन रहित)	१२	$\frac{\text{संस्था.}}{६} \times \frac{\text{खगति}}{२} = १२$ (निरुद्ध वाक्योग)	अजिन
२८ प्र.	स्वर रहित २१ प्र.	१२	पूर्ववत् (निरुद्ध उच्छ्वास)	अजिन
९ प्र.	मनु. ग. पंचे. त्रसत्रिक. सुभग त्रिक, जिन.	१	प्रशस्त पद होने से (अयोगि चरम समय)	जिन
८ प्र.	जिन रहित पूर्वोक्त		,,	अजिन
	देवों के उदयस्थान भंग (६४)			
२१ प्र.	देव. २, त्रसत्रिक. पंचे. सुभग त्रिक, १२ ध्रुवोदया	८	$\frac{\text{सुभगदुर्भग}}{२} \times \frac{\text{आदे. अना.}}{२} \times \frac{\text{यश. अयश.}}{२} = ८$	गत्यन्तराल में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृतियां	भंग	भंगोत्पत्ति	किसको
२५ प्र.	वैक्रि. २, उप., प्र. समच. युक्त आनुपूर्वी रहित पूर्वोक्त २१ प्र.	८	पूर्ववत्	देहस्थ
२७ प्र.	परा. सुखगति युक्त २५ प्रकृति	८	,,	देह पर्याप्त
२८ प्र.	उच्छ्वास युक्त २७ प्र.	८	,,	उच्छ. पर्याप्त
२८ प्र.	उद्योत युक्त २७ प्र.	८	,,	देह पर्याप्त
२९ प्र.	सुस्वर युक्त २८ प्र. (उच्छ्वास सहित)	८	,,	भाषा पर्याप्त
२९ प्र.	उद्योत युक्त २८ प्र. (,,)	८	,,	उच्छ्. पर्याप्त
३० प्र.	उद्योत युक्त २९ प्र. (सुस्वर सहित)	८	,,	भाषा पर्याप्त
	नारकों के उदयस्थान भंग (५)			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१ प्र.	नरकद्विक. पंचे. त्रसत्रिक. दुर्भग, अनादेय, अयश., १२ ध्रुवोदया	१	सर्व अप्रशस्त पद	गत्यन्तराल
२५ प्र.	वै. २, हुं. उप. प्र. युक्त, आनु. रहित २१ प्रकृति	१	,,	देहस्थ
२७ प्र.	परा. कुखगति युक्त २५ प्र.	१	,,	देह पर्याप्त
२८ प्र.	उच्छ्वास युक्त २७ प्र.	१	,,	उच्छ्. पर्याप्त
२९ प्र.	दुस्वर युक्त २८ प्र.	१	,,	भाषा पर्याप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १२ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार मूल एवं उत्तर प्रकृतियों के बंध-उदय-सत्त्व के संवेध भंगों के प्रारूप

कर्म विचारणा में यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि प्रतिसमय कितनी प्रकृतियों का बंध, उदय और सत्त्व संभव है। इसीलिये दोनों जैन परम्पराओं ने एतद् विषयक विचार किया है। इस प्रक्रिया में दृष्टिकोण की भिन्नता की अपेक्षा अधिकांश समानता होते हुए भी कतिपय अन्तर भी आ गये हैं। जो अपेक्षाओं के सूचक तो हैं, लेकिन विरोध के नहीं। ग्रन्थ में श्वेताम्बराचार्यों के विचारों को तो प्रस्तुत कर दिया है और अब तुलनात्मक अध्ययन के लिये दिगम्बर आचार्यों की दृष्टि को प्रारूपों द्वारा स्पष्ट करते हैं। आशा है, विज्ञजन कारण सहित मीमांसा के लिये उन आचार्यों के ग्रन्थों का अवलोकन करेंगे।

मूल प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्त्वस्थानों के संभव भंगों का प्रारूप

बंध	उदय	सत्त्व
८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
७ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
६ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
१ प्र.	७ प्र.	८ प्र.
१ प्र.	७ प्र.	७ प्र.
१ प्र.	४ प्र.	४ प्र.
अबन्ध	४ प्र.	४ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १३ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्त्व का संवेध

गुणस्थान नाम	बंध	उदय	सत्त्व
मिथ्यात्व	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
सासादन	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
मिश्र.	७ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
अवि. सम्य.	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
देशवि.	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
प्रमत्तवि.	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
अप्रमत्तवि.	७/८ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
अपूर्व.	७ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
अनिवृत्ति.	७ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
सूक्ष्मसंपराय	६ प्र.	८ प्र.	८ प्र.
उपशांतमो.	१ प्र.	७ प्र.	८ प्र.
क्षीणमोह	१ प्र.	७ प्र.	७ प्र.
सयोगि. केवलि	१ प्र.	४ प्र.	४ प्र.
अयोगि केवलि	अबंध	४ प्र.	४ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १४ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार चौदह जीवस्थानों में मूल प्रकृतियों के बंध-उदय-सत्त्व स्थान

आदि के तेरह जीवस्थानों (एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त से संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त पर्यन्त) में सात प्रकृतिक बंधस्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान तथा आठ प्रकृतिक बंध-स्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान ये दो भंग होते हैं तथा चौदहवें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में पांच भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. आठ का बंध, आठ का उदय, आठ का सत्त्व।

२. सात का बंध, आठ का उदय, आठ का सत्त्व।

३. छह का बंध, सात का उदय, आठ का सत्त्व।

४. एक का बंध, सात का उदय, आठ का सत्त्व।

५. एक का बंध, सात का उदय, सात का सत्त्व।

सयोगि केवली में एक (साता वेदनीय) का बंध, चार (अघाति चतुष्क) का उदय व सत्त्व तथा इसी प्रकार अयोगिकेवली में अबंध तथा चार प्रकृतियों उदय और सत्त्व होता है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में केवली भगवान भी गर्भित हैं। लेकिन उनकी विशेष स्थिति होने से पृथक् उल्लेख किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १५ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बंधादि स्थान

गुणस्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
मिथ्यात्वादि सूक्ष्मसंपराय पर्यन्त दस	५ प्र.	५ प्र.	५ प्र.
उपशांतमोह	×	५ प्र.	५ प्र.
क्षीणमोह	×	५ प्र.	५ प्र.
सयोगि के.	×	×	×
अयोगि के.	×	×	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १६ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बंधादि स्थान

गुणस्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
मिथ्यात्व	९ प्र.	४/५ प्र.	९ प्र.,,
सासादन	९ ,,	४/५ ,,	९ ,,
मिश्र.	६ ,,	४/५ ,,	९ ,,
अवि. सम्य.	६ ,,	४/५ ,,	९ ,,
देशविरत	६ ,,	४/५ ,,	९ ,,
प्रमत्तविरत	६ ,	४/५ ,,	९ ,,
अप्रमत्तविरत	६ ,,	४/५ ,,	९ ,,
अपूर्वकरण	६/४,,	४/५ ,,	९ ,,
अनिवृत्तिकरण	४ ,,	४/५ ,,	९/६ ,,
सूक्ष्मसंपराय	४ ,,	४/५ ,,	९/६ ,,
उपशांतमोह	×	४/५ ,,	९ ,,
क्षी. मो.उपा. समय	×	४/५ ,,	६ ,,
क्षी. मो. च. समय	×	४ ,,	४ ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १७ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में वेदनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादिस्थान

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान	गुणस्थान
असाता वे.	असाता वे.	असाता वे. साता वे.	१, २, ३, ४, ५, ६
,,	साता वे.	,, ,,	१, २, ३, ४, ५, ६
साता वे.	असाता वे.	,, ,,	१ से १३ तक
,,	साता वे.	,, ,,	१ से १३ तक
×	असाता वे.	,, ,,	१४वें के उपान्त्य समय तक
×	साता वे.	,, ,,	१४वें के उपान्त्य समय तक
×	असाता वे.	असाता वेदनीय	१४वें के अन्तिम समय में
×	साता वेद.	साता वेदनीय	१४वें के अन्तिम समय में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १८ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादिस्थान

गुणस्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान	
मिथ्यात्व	२२ प्र.	१०, ९, ८, ७ प्र.	२८, २७, २६ प्र.	
सासादन	२१ ,,	९, ८, ७ प्र.	२८ ,,	
मिश्र.	१७ ,,	९, ८, ७ ,,	२८, २४ ,,	
अवि सम्य.	१७ ,,	९, ८, ७, ६ ,,	२८, २४, २३, २२, २१ प्र.	
देशविरत	१३ ,,	८, ७, ६, ५ ,,	२८, २४, २३, २२, २१ ,,	
प्रमत्तविरत	९ ,,	७, ६, ५, ४ ,,	२८, २४, २३, २२, २१ ,,	
अप्रमत्तविरत	९ ,,	७, ६, ५, ४ ,,	२८, २४, २३, २२, २१ ,,	
			उपशम श्रेणी	क्षपक श्रेणी
अपूर्वकरण	९ ,,	६, ५, ४ ,,	२८, २४, २१ प्र.	२१ प्र.
अनिवृत्तिक.	५ ,,	२ ,,	२८, २४, २१ ,,	२१, १३, १२, ११
,,	४ ,,	२, १ ,,	२८, २४, २१ ,,	१३, १२, ११, ५
,,	३,२,१ प्र.	१ ,,	२८, २४, २१ ,,	४, ३, २, १ प्र.
सूक्ष्मसंपराय	×	१ ,,	२८, २४, २१ ,,	१ प्र.
उपशांतमोह	×	×	२८, २४, २१ ,,	×
क्षीणमोह	×	×	×	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १९ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों के बंधादिस्थानों का प्रारूप

गुणस्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
मिथ्यात्व	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
सासादन	२८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ प्र.	९० प्र.
मिश्र.	२८, २९ प्र.	२९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९० प्र.
अवि. सम्य.	२८, २९, ३० प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
देशविरत	२८, २९ प्र.	३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
प्रमत्तविरत	२८, २९ प्र.	२५, २७, २८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
अप्रमत्तविरत	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
अपूर्वकरण	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
अनिवृत्तिक.	१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र. उप.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
सूक्ष्मसंपराय	१ प्र.	३० प्र.	८०, ७९, ७८, ७७ प्र. क्षपक ८०, ७९, ७८, ७७ प्र. क्षपक ९३, ९२, ८९, ८८ प्र. उप.
उपशांतमोह	×	३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
क्षीणमोह	×	३०	८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
सयोगि के.	×	३०, ३१ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
अयोगि के.	×	९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २० : दिगम्बर सप्ततिकानुसार गुणस्थानों में गोत्रकर्म के बंधादिस्थानों के भंग

बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान	गुणस्थान
नीचगोत्र	नीचगोत्र	नीचगोत्र	पहला
,,	,,	नी.गो. उ.गो.	पहला, दूसरा
,,	उच्चगोत्र	,, ,,	,, ,,
उच्चगोत्र	नीचगोत्र	,, ,,	पहले से पांचवें तक
,,	उच्चगोत्र	,, ,,	पहले से दसवें तक
×	,,	,, ,,	११, १२, १३, तथा १४ का उ.स.
×	,,	उच्चगोत्र	१४ का अन्तिम समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २१ : दिगम्बर सप्ततिकानुसार मार्गणास्थान भेदों में नामकर्म के बंधादिस्थानों का प्रारूप

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
१ गतिमार्गणा			
नरकगति	२९, ३० प्र.	२१, २५, २७, २८, २९ प्र.	९२, ९१, ९० प्र.
तिर्यंचगति	२३, २४, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
मनुष्यगति	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
देवगति	२५, २६, २९, ३० प्र.	२१, २५, २७, २८, २९ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
२ इन्द्रिय मार्गणा			
एकेन्द्रिय	२३, २५, २६, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७ प्र.	९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
विकलत्रिक	२३, २५, २६, २९, ३० प्र.	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
सकलेन्द्रिय	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.

३ कायमार्गणा			
पृथ्वी.	२३, २५, २६, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७ प्र.	९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र
अप्.	पृथ्वीकायवत्	पृथ्वीकायवत्	पृथ्वीकायवत्
तेज.	पृथ्वीकायवत्	२१,२४,२५, २६ प्र.	पृथ्वीकायवत्
वायु.	पृथ्वीकायवत्	२१,२४,२५, २६ प्र.	पृथ्वीकायवत्
वनस्पति.	पृथ्वीकायवत्	पृथ्वीकायवत्	पृथ्वीकायवत्
त्रस.	सकलेन्द्रियवत्	सकलेन्द्रियवत	सकलेन्द्रियवत्
४ योगमार्गणा			
मनोयोग	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
वचनयोग	मनोयोगवत्	मनोयोगवत्	मनोयोगवत्
औदारिककाय	मनोयोगवत्	२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
औदारिकमिश्र	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२४, २६ प्र.	औदारिककायवत्
वैक्रिय काय.	२५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२७, २८, २९ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
वैक्रियमिश्र.	२९, ३० प्र.	२५ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
आहारककाय	२८, २६ प्र.	२७, २८, २९ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
आहारकमिश्र	२८, २६, प्र.	२५ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
कार्मणकाय	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
५ वेद मार्गणा			
त्रय वेद	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७७, ७८, ७७ प्र.
६ कषाय मार्गणा			
कषाय चतुष्क	२३, २५, २६, २८ २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
७ ज्ञान मार्गणा			
मति-श्रुत-अज्ञान	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
विभंगज्ञान	मति-श्रुत-अज्ञानवत्	२८, ३०, ३१ प्र.	९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मति-श्रुत-अवधि ज्ञान	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
मनपर्यव ज्ञान	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
केवलज्ञान	×	३०, ३१, ९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
८ संयम मार्गणा			
सामा. छेदो.	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२५, २७, २८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
परिहार वि.	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
सूक्ष्मसंपराय	१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
यथाख्यात	×	३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
देशसंयम	२८, २९ प्र.	३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
असंयम.	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
९ दर्शन मार्गणा			
चक्षुदर्शन.	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१. २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
अचक्षुदर्शन.	चक्षुदर्शनवत्	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	चक्षुदर्शनवत्
अवधिदर्शन.	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ३२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
केवलदर्शन.	×	३०, ३१, ९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
१० लेश्या मार्गणा			
कृष्णादि तीन लेश्या	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
तेज-पद्म लेश्या	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	२१, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
शुक्ल लेश्या	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	तेजपद्मलेश्यावत्	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलेश्य	×	९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
११ भव्य मार्गणा			
भव्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
अभव्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
नोभव्य नोअभव्य	×	३०, ३१, ९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
१२ सम्यक्त्व मार्गणा			
उपशम सम्य.	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २९, ३०, ३१, प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
वेदक सम्य.	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९० प्र.
क्षायिक सम्य.	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
सासादनसम्य.	२८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ प्र.	९० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
मिश्र. सम्य	२८, २९ प्र.	२९. ३०, ३१ प्र.	९२, ९० प्र.
मिथ्यात्व	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्र.
१३ संज्ञी मार्गणा			
संज्ञी,	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
असंज्ञी	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ९०, ८८. ८४, ८२ प्र.
नोसंज्ञी नोअसंज्ञी	×	३१, ३०, ९, ८ प्र.	८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्र.
१४ आहा. मार्गणा			
आहारक	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ प्र.
अनाहारक	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ८७, ७७, १०, ९ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २२ : ग्रन्थानुसार मार्गणाभेदों में नामकर्म के बंधादिस्थानों का प्रारूप

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
१ गति मार्गणा			
नरकगति	२९ प्र.	२१, २५, २७, २८, २९ प्र.	९२, ८९, ८८ प्र.
तिर्यंचगति	२३ प्र.	२१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२४ प्र.	,,
		२५ प्र.	,,
		२६ प्र.	,,
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
		२८ प्र.	,,
		२९ प्र.	,,
		३० प्र.	,,
		३१ प्र.	,,
	२५ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र. २७ से ३१ प्र. तक	९२,८८,८६, ८०,७८ प्र. ९२, ८८, ८६, ८० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
	२६ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८प्र.
		२७ से ३१ प्र. तक	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२८ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९ प्र.	९२, ८८ प्र.
		३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६ प्र.
	२९ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० ७८ प्र.
		२७ से ३१ प्र. तक	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	३० प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ से ३१ प्र. तक	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
मनुष्यगति	२३ प्र.	२१, २६, २८, २९, ३० प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२५ प्र.	२१, २६, २८, २९, ३० प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२६ प्र.	२१, २६, २८, २९, ३० प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
	२८ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९ प्र.	९२, ८८ प्र.
		३० प्र.	९२, ८९, ८८, ८६ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	२९ प्र.	२१, २६, २८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० प्र.
		२५, २७ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
	३० प्र.	२१, २६, २८, २९, ३० प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
	३१ प्र.	३० प्र.	९३ प्र.
	१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.
देवगति	२५, २६, २९ प्र.	२१, २५, २७, २८, २९, ३० प्र.	९२, ८८ प्र.
	३० प्र.	२१, २५, २७, २८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
२ इन्द्रिय मार्गणा			
एकेन्द्रिय	२३ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२५ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२६ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
	२९ प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	३० प्र.	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
विकलत्रिक	२३ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२५ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२६ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२९ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	३० प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय	२३ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२५ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२६ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२५, २७ प्र.	९२, ८८ प्र.
		२८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८० प्र.
	२८ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९ प्र.	९२, ८८ प्र.
		३० प्र.	९२, ८९, ८८, ८६ प्र.
		३१ प्र.	९२, ८८, ८६ प्र.
	२९ प्र.	२१, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८, ९३, ८९ प्र.
		२५, २७ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
		२८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० प्र.
		३१ प्र.	९३, ८८, ८६, ८० प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
	३० प्र.	२१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२५, २७ प्र,	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
		२६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
		२८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० प्र.
		३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८० प्र.
	३१ प्र.	३० प्र.	९३ प्र.
	१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९ प्र.
३ कायमार्गणा			
पृथ्वी अप्काय	एकेन्द्रियवत्	एकेन्द्रियवत्	एकेन्द्रियवत्
तेजस्काय	एकेन्द्रियवत्	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
वायुकाय	एकेन्द्रियवत्	२१, २४, २५, २६ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
वनस्पतिकाय	एकेन्द्रियवत	२१, २४, २५, २६, २७ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रसकाय	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१, ६, ८ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७५, ७६, ६, ८ प्र.
४ योगमार्गणा			
मन-वचन योग	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२५, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७६, ७५ प्र.
काययोग	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७६, ७५ प्र.
५ वेद[1] मार्गणा			
पुरुष वेद	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७६, ७५ प्र.
स्त्री वेद	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७६, ७५ प्र.
नपुंसक वेद	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७६, ७५ प्र.
६ कषाय मार्गणा			
क्रोधादि-चतुष्क	२३, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१ प्र.	६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७८, ७६, ७५ प्र.

१ यहाँ भाववेद की विवक्षा है, द्रव्यवेद की नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
७ ज्ञान मार्गणा			
मति, श्रुत, अवधि	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.
मनपर्याय ज्ञान	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२५, २७, २८, २९, ३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७८, ७६ प्र,
केवलज्ञान	×	२०, २१, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ८, ९ प्र.	८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
मति-श्रुत-अज्ञान	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
विभंगज्ञान	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र. (प्रथम मत)	९२, ८९, ८८ प्र.
		२१, २५, २७, २८, २९, ३० ३१ प्र. (द्वितीय मत)	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ संयम मार्गणा			
अविरत	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
देशविरति	२८, २९, प्र.	२५, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
सामा. छेदोप.	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२५, २७, २८, २९, ३०, प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.
परिहार विशुद्धि	२८, २९, ३०, ३१ प्र	३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
सूक्ष्मसंपराय	१ प्र.	३० प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र. (उपशम श्रेणि अपेक्षा) ८०, ७९, ७८, ७६ प्र. (क्षपक श्रेणि-अपेक्षा)
यथाख्यात	×	२०, २१, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
९ दर्शन मार्गणा			
चक्षुदर्शन	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२५, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
अचक्षुदर्शन	चक्षुदर्शनवत्	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५ प्र.
अवधिदर्शन	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.
केवलदर्शन	×	२०, २१, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ८, ९ प्र.	८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
१० लेश्या मार्गणा			
कृष्णादि लेश्यात्रिक	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९ प्र.
तेज.	२५, २६, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, प्र.
पद्म.	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० प्र.
शुक्ल	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११ भव्य मार्गणा			
भव्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २४ २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
अभव्य	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
१२ सम्यक्त्व मार्गणा			
मिथ्यात्व	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.
सासादन	२७, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८ प्र.
मिश्र.	२८, २९ प्र.	२९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८ प्र.
क्षायोपशमिक	२८, २९, ३०, ३१ प्र.	२१, २५, २६, २७, २८, २९; ३०, ३१प्र.	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.
औपशमिक	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२९, ३०, ३१ प्र. २१, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र. (मतान्तर से)	९३, ९२, ८९, ८८ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणास्थान	बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
क्षायिक	२८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
१३ संज्ञी मार्गणा			
संज्ञी	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ८, ९ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८ प्र.
		(केवली को संज्ञी मानने पर और)	(केवली को संज्ञी मानने पर और)
		२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५ प्र.
		(केवली को संज्ञी की विवक्षा न करने पर)	(केवली को संज्ञी की विवक्षा न करने पर)
असंज्ञी	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९२, ८८, ८६, ८०, ७८ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४ आहार मार्गणा			
आहारी	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ प्र.	२४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५ प्र.
अनाहारी	२३, २५, २६, २८, २९, ३० प्र.	२०, २९, ९, ८ प्र.	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २३ : मार्गणाभेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	एकेन्द्रिय जाति	द्वीन्द्रिय जाति
क्रम	१	२	३	४	५	६
८ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
७ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
६ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
१ का बंध ७ का उदय ८ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
१ का बंध ७ का उदय ७ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
१ का बंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	२	२	७	२	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्म-प्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

त्रीन्द्रिय जाति	चतुरिन्द्रिय जाति	पंचेन्द्रिय जाति	पृथ्वीकाय	अपकाय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति काय	त्रसकाय
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
२	२	७	२	२	२	२	२	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

मनोयोग	वचनयोग	काययोग	पुरुषवेद	स्त्रीवेद	नपुंसकवेद	क्रोधकषाय	मानकषाय	माया कषाय
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	२	२	२	२	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

लोभ कषाय	मतिज्ञान	श्रुतज्ञान	अवधि ज्ञान	मनपर्याय ज्ञान	केवलज्ञान	मतिअज्ञान
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
०	०	०	०	०	१	०
०	०	०	०	०	१	०
३	५	५	५	५	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	श्रुत अज्ञान	विभंग ज्ञान	सामायिक चारित्र	छेदोपस्थापनीय चा.	परिहारविशुद्धि चा.	सूक्ष्मसंपराय चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
८ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	१	१	१	१	१	०
७ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	१	१	१	१	१	०
६ का बंध ८ का उदय ८ की सत्ता	०	०	०	०	०	१
१ का बंध ७ का उदय ८ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
१ क बंध ७ का उदय ७ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
१ का बंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	२	२	२	२	२	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

यथाख्यात चारित्र	देशविरत	अविरत	चक्षुदर्शन	अचक्षु दर्शन	अवधि दर्शन	केवल दर्शन	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
४	२	२	५	५	५	२	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्मलेश्या	शुक्ल लेश्या	भव्य	अभव्य	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोप. सम्यक्त्व	औपशमिक सम्यक्त्व
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	१	१	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१/०	०	१	०	०
०	०	०	०	१/०	०	१	०	०
२	२	२	६	७/५	२	७	२	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मूल कर्मप्रकृतियों के संवेध का प्रारूप

मिश्र सम्यक्त्व	सासा. सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारक	अनाहारक	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	१	१	१	१	१	०	५५
१	१	१	१	१	१	१	५८
०	०	०	१	०	१	०	२१
०	०	०	१	०	१	०	२०
०	०	०	१	०	१	०	१९
०	०	०	१/०	०	१	१	१५
०	०	०	१/०	०	०	१	१०
१	२	२	७/५	२	६	३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २४ : मार्गणा भेदों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्मों के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वी. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
५ का बंध ५ का उदय ५ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
अबंध ५ का उदय ५ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	१	१	२	१	१	१

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस का.
क्रम	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
५ का बंध ५ का उदय ५ की सत्ता	१	१	१	१	१	१	१	१	१
अबंध ५ का उदय ५ की सत्ता	०	०	१	०	०	०	०	०	१
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	१	१	२	१	१	१	१	१	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्मों के संवेध का प्रारूप

मनो यो.	वचन यो.	काय यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपु. वे.	क्रोध क.	मान. क.	माया. क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
२	२	२	१	१	१	१	१	१

लो. क.	मति ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अव. ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	१	०	१
०	१	१	१	१	०	०
१	२	२	२	२	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्मों के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	श्रु. अ.	विभंग	सा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म. चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
५ का बंध ५ का उदय ५ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
अबंध ५ का उदय ५ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा मे कुल संवेध	१	१	१	१	१	१

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	यथा. चा.	देश. वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
क्रम	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
५ का बंध ५ का उदय ५ की सत्ता	१	१	१	१	१	१	०	१	१
अबंध ५ का उदय ५ की सत्ता	०	०	०	१	१	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा मे कुल संवेध	१	१	१	२	२	२	०	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्मों के संवेध का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल ले.	भव्य.	अभव्य.	क्षायि. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
१	१	१	२	२	१	२	१	२

मिश्र. स.	सासा. स.	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणा में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
१	१	१	१	१	१	१	५९
०	०	०	१	०	१	०	२०
१	१	१	२	१	२	१	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २५ : मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
९ का बंध ४ का उदय ९ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
९ का बंध ५ का उदय ९ की सत्ता	१	१	१	१	१	१
६ का बंध ४ का उदय ९ की सत्ता	१	१	१	१	०	०
६ का बंध ५ का उदय ९ की सत्ता	१	१	१	१	०	०
४ का बंध ४ का उदय ९ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
४ का बंध ५ का उदय ९ की सत्ता	०	०	१	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस. का
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

मनो. यो.	वच. यो.	काय. यो.	पु. वे,	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रो. क.	मान क.	माया क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

लो. क.	मति. ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अवधि.ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति. अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	श्रु. अज्ञा.	विभंग.	सामा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
९ का बंध, ४ का उदय, ९ की सत्ता	१	१	०	०	०	०
९ का बंध, ५ का उदय, ९ की सत्ता	१	१	०	०	०	०
६ का बंध, ४ का उदय, ९ की सत्ता	०	०	१	१	१	०
६ का बंध, ५ का उदय, ९ की सत्ता	०	०	१	१	१	०
४ का बंध, ४ का उदय, ९ की सत्ता	०	०	१	१	०	१
४ का बंध, ५ का उदय, ९ की सत्ता	०	०	१	१	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण धर्म के संवेध का प्रारूप

यथा. चा.	देश वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

कापो. ले.	तेज. ले.	पद्म ले.	शुक्ल. ले.	भव्य	अभव्य	क्षा. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र.	सासा. स.	मिथ्या.	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	१	१	१	१	१	१	४५
०	१	१	१	१	१	१	४५
१	०	०	१	०	१	१	४२
१	०	०	१	०	१	१	४२
०	०	०	१	०	१	०	२९
०	०	०	१	०	१	०	२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	एकेन्द्रिय जाति	द्वीन्द्रिय जाति
क्रम	१	२	३	४	५	६
४ का बंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध ५ का उदय ६ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा मे कुल संवेध	४	४	११	४	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

त्रीन्द्रिय जाति	चतुरिन्द्रिय जाति	पंचेन्द्रिय जाति	पृथ्वीकाय	अप्काय	तेजकाय	वायुकाय	वनस्पति काय	त्रसकाय
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
२	२	११	२	२	२	२	२	११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

मनोयोग	वचनयोग	काययोग	पुरुषवेद	स्त्रीवेद	नपुंसकवेद	क्रोधकषाय	मानकषाय	माया कषाय
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१	१	१	०	०	०	०	०	०
११	११	११	७	७	७	७	७	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणाभेदों में दर्शनावरणकर्म के संवेध का प्रारूप

लोभ कषाय	मतिज्ञान	श्रुतज्ञान	अवधि ज्ञान	मनपर्यव ज्ञान	केवलज्ञान	मतिअज्ञान
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
०	१	१	१	१	०	०
७	९	९	९	९	०	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	श्रुत अज्ञान	विभंग ज्ञान	सामायिक चारित्र	छेदोपस्थापनीय चा.	परिहार विशुद्धि चा.	सूक्ष्मसंपराय चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
४ का बंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	१	१	०	१
अबंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध ५ का उदय ६ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध ४ का उदय ६ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध ४ का उदय ४ की सत्ता	०	०	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	२	२	५	५	२	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

यथाख्यात चारित्र	देशविरत	अविरत	चक्षुदर्शन	अचक्षु दर्शन	अवधि दर्शन	केवल दर्शन	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
१	०	०	१	१	१	०	०	०
४	२	४	११	११	९	०	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्मलेश्या	शुक्ल लेश्या	भव्य	अभव्य	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोप. सम्यक्त्व	औपशमिक सम्यक्त्व
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
४	४	४	११	११	२	९	२	६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में दर्शनावरण कर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र सम्यक्त्व	सासा. सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारक	अनाहारक	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	०	०	१	०	१	०	२८
०	०	०	१	०	१	०	२०
०	०	०	१	०	१	०	२०
०	०	०	१	०	१	०	१९
०	०	०	१	०	१	०	१९
२	२	२	११	२	११	४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २६ : मार्गणा भेदों में वेदनीय कर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
असाता का बंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
असाता का बंध साता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
साता का बंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
साता का बंध साता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
अबंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध साता का उदय दोनों की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध असाता का उदय असाता की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध साता का उदय साता की सत्ता	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	४	४	८	४	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	तै. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
४	४	८	४	४	४	४	४	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

मनो यो.	वचन यो.	काय यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रोध क.	मान. क.	माया. क.
१६	१७	१८	१६	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
४	४	४	४	४	४	४	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

लो. क.	मति ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अव. ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	०	०	१	०
०	०	०	०	०	१	०
०	०	०	०	०	१	०
०	०	०	०	०	१	०
४	४	४	४	४	६	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	शु. ल.	विभंग	सा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म. चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
असाता का बंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	०
असाता का बंध साता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	०
साता का बंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
साता का बंध साता का उदय दोनों की सत्ता	१	१	१	१	१	१
अबंध असाता का उदय दोनों की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध साता का उदय दोनों की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध असाता का उदय असाता की सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध साता का उदय साता की सत्ता	०	०	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	४	४	४	४	४	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

यथा. चा.	देश. वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	०	०	०	०	०	१	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
६	४	४	४	४	४	६	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल ले.	भव्य.	अभव्य.	क्षायि. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
४	४	४	८	८	४	८	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में वेदनीयकर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र. स.	सासा. स.	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणा में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
१	१	१	१	१	१	१	५८
१	१	१	१	१	१	१	५८
१	१	१	१	१	१	१	६२
१	१	१	१	१	१	१	६२
०	०	०	१	०	०	१	१०
०	०	०	१	०	०	१	१०
०	०	०	१	०	०	१	१०
०	०	०	१	०	०	१	१०
४	४	४	८	४	४	८	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २७ : मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक बंधस्थान / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
२२ प्र.	१	१	१	१	१	१
२१ प्र.	१	१	१	१	१	१
१७ प्र.	१	१	१	१	०	०
१३ प्र.	०	१	१	०	०	०
९ प्र.	०	०	१	०	०	०
५ प्र.	०	०	१	०	०	०
४ प्र.	०	०	१	०	०	०
३ प्र.	०	०	१	०	०	०
२ प्र.	०	०	१	०	०	०
१ प्र.	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल बंधस्थान	३	४	१०	३	२	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन.का.	त्रस. का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
२	२	१०	२	२	१	१	२	१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

मनो. यो.	वच. यो.	काय. यो.	पुं. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रो. क.	मान क.	माया क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१०	१०	१०	६	६	६	७	८	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

लो. क.	मति. ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अवधि.ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति. अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१/०
१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१०	८	८	८	६	०	३/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक बंधस्थान / मार्गणा	श्रु. अज्ञा.	विभंग.	सामा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
२२ प्र.	१	१	०	०	०	०
२१ प्र.	१	१	०	०	०	०
१७ प्र.	१/०	१/०	०	०	०	०
१३ प्र.	०	०	०	०	०	०
९ प्र.	०	०	१	१	१	०
५ प्र.	०	०	१	१	०	०
४ प्र.	०	०	१	१	०	०
३ प्र.	०	०	१	१	०	०
२ प्र.	०	०	१	१	०	०
१ प्र.	०	०	१	१	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल बंधस्थान	३/२	३/२	६	६	१	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

यथा. चा.	देश वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	१	०	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	१	३	१०	१०	८	०	५	५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल. ले.	भव्य	अभव्य	क्षा. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
५	५	५	१०	१०	१	८	३	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का प्रारूप

मिश्र.	सासा. स.	मिथ्या.	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक बंधस्थान कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	०	१	१	१	१	१	४४
०	१	०	१	१	१	१	४१
१	०	०	१	०	१	१	४०/३७
०	०	०	१	०	१	०	३३
०	०	०	१	०	१	०	३५
०	०	०	१	०	१	०	२८
०	०	०	१	०	१	०	२५
०	०	०	१	०	१	०	२४
०	०	०	१	०	१	०	२३
०	०	०	१	०	१	०	२२
१	१	१	१०	२	१०	३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २८ : मार्गणाभेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक उदयस्थान मार्गणा	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	एकेन्द्रिय जाति	द्वीन्द्रिय जाति
क्रम	१	२	३	४	५	६
१० प्र.	१	१	१	१	१	१
९ प्र.	१	१	१	१	१	१
८ प्र.	१	१	१	१	१	१
७ प्र.	१	१	१	१	१	१
६ प्र.	१	१	१	१	०	०
५ प्र.	०	१	१	०	०	०
४ प्र.	०	०	१	०	०	०
२ प्र.	०	०	१	०	०	०
१ प्र.	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल उदयस्थान	५	६	९	५	४	४

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

त्रीन्द्रिय जाति	चतुरिन्द्रिय जाति	पंचेन्द्रिय जाति	पृथ्वीकाय	अप्काय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति काय	त्रसकाय
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
४	४	९	४	४	३	३	४	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

मनोयोग	वचनयोग	काययोग	पुरुषवेद	स्त्रीवेद	नपुंसकवेद	क्रोधकषाय	मानकषाय	माया कषाय
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	१	१	१
९	९	९	८	८	८	९	९	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

लोभ कषाय	मतिज्ञान	श्रुतज्ञान	अवधि ज्ञान	मनपर्याय ज्ञान	केवलज्ञान	मतिअज्ञान
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
९	८	८	८	६	०	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक उदयस्थान / मार्गणा	श्रुत अज्ञान	विभंग ज्ञान	सामायिक चारित्र	छेदोपस्था पनीय चा.	परिहार विशुद्धि चा.	सूक्ष्मसंप- राय चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
१० प्र.	१	१	०	०	०	०
९ प्र.	१	१	०	०	०	०
८ प्र.	१	१	०	०	०	०
७ प्र.	१	१	१	१	१	०
६ प्र.	०	०	१	१	१	०
५ प्र.	०	०	१	१	१	०
४ प्र.	०	०	१	१	१	०
२ प्र.	०	०	१	१	०	०
१ प्र.	०	०	१	१	०	१
प्रत्येक मार्गणा में कुल उदयस्थान	४	४	६	६	४	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

यथाख्यात चारित्र	देशविरत	अविरत	चक्षुदर्शन	अचक्षु दर्शन	अवधि दर्शन	केवल दर्शन	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	०	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	४	५	९	९	८	०	७	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्मलेश्या	शुक्ल लेश्या	भव्य	अभव्य	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोप. सम्यक्त्व	औपशमिक सम्यक्त्व
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	१	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
७	७	७	९	९	३	७	५	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का प्रारूप

मिश्र सम्यक्त्व	सासा. सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारक	अनाहारक	प्रत्येक उदयस्थान कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	०	१	१	१	१	१	४४
१	१	१	१	१	१	१	५१
१	१	१	१	१	१	१	५४
१	१	१	१	१	१	१	५५
०	०	०	१	१	१	१	४१
०	०	०	१	०	१	०	३७
०	०	०	१	०	१	०	३४
०	०	०	१	०	१	०	२८
०	०	०	१	०	१	०	२६
३	३	४	९	४	९	५	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २९ : मार्गणाभेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक सत्तास्थान / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
२८ प्र.	१	१	१	१	१	१
२७ प्र.	१	१	१	१	१	१
२६ प्र.	१	१	१	१	१	१
२४ प्र.	१	१	१	१	०	०
२३ प्र.	०	०	१	०	०	०
२२ प्र.	१	१	१	१	०	०
२१ प्र.	१	१	१	१	०	०
१३ प्र.	०	०	१	०	०	०
१२ प्र.	०	०	१	०	०	०
११ प्र.	०	०	१	०	०	०
५ प्र.	०	०	१	०	०	०
४ प्र.	०	०	१	०	०	०
३ प्र.	०	०	१	०	०	०
२ प्र.	०	०	१	०	०	०
१ प्र.	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल सत्ता.	६	६	१५	६	३	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमश:) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
३	३	१५	३	३	३	३	३	१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

मनो यो.	वचन यो.	काय. यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रोध क.	मान. क.	माया. क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	०	०	१	१	१
१	१	१	०	०	०	१	१	१
१	१	१	०	०	०	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
१५	१५	१५	१०	९	८	१२	१३	१४

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

लो. क.	मति ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अव. ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	१	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	०	१/०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	९	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१	१	१	१	१	०	०
१५	१३	१३	१३	१३	०	४/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

प्रकृतिक सत्ता. मार्गणा	श्रु. अ.	विभंग	सा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म. चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
२८ प्र.	१	१	१	१	१	१
२७ प्र.	१	१	०	०	०	०
२६ प्र.	१	१	०	०	०	०
२४ प्र.	१/०	१/०	१	१	१	१
२३ प्र.	०	०	१	१	१	०
२२ प्र.	०	०	१	१	१	०
२१ प्र.	०	०	१	१	१	१
१३ प्र.	०	०	१	१	०	०
१२ प्र.	०	०	१	१	०	०
११ प्र.	०	०	१	१	०	०
५ प्र.	०	०	१	१	०	०
४ प्र.	०	०	१	१	०	०
३ प्र.	०	०	१	१	०	०
२ प्र.	०	०	१	१	०	०
१ प्र.	०	०	१	१	०	१
प्रत्येक मार्गणा में कुल सत्ता.	४/३	४/३	१३	१३	५	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थान का प्रारूप

यथा. चा.	देश. वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३६	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
१	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
१	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	०	०
०	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
०	०	०	१	१	१	०	०	०
३	५	७	१५	१५	१३	०	६	६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल ले.	भव्य.	अभव्य.	क्षायि. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	०	०	१	१
१	१	१	१	१	०	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	१	१	१	१	०	०	१	०
१	१	१	१	१	०	०	१	०
१	१	१	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
०	०	०	१	१	०	१	०	०
६	७	७	१५	१५	१	९	४	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों का प्रारूप

मिश्र. स.	सासा. स.	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	अहारी	अनाहारी	प्रत्येक सत्तास्थान कुल मार्गणा में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
१	१	१	१	१	१	१	५८
१	०	१	१	१	१	१	४४
०	०	१	१	१	१	१	४४
१	०	०	१	०	१	१	४६/४३
०	०	०	१	०	१	०	३२
०	०	०	१	०	१	१	३९
०	०	०	१	०	१	१	४१
०	०	०	१	०	१	०	२७
०	०	०	१	०	१	०	२६
०	०	०	१	०	१	०	२५
०	०	०	१	०	१	०	२४
०	०	०	१	०	१	०	२४
०	०	०	१	०	१	०	२३
०	०	०	१	०	१	०	२२
०	०	०	१	०	१	०	२२
३	१	३	१५	३	१५	६	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ३० : मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
अबंध न. का उदय न. की सत्ता	१	०	०	०	०	०
ति. का बंध न. का उदय न. ति. की सत्ता	१	०	०	०	०	०
मनुष्य का बंध न. का उदय न. म. की सत्ता	१	०	०	०	०	०
अबंध न. का उदय न. ति. की सत्ता	१	०	०	०	०	०
अबंध न. का उदय न. म. की सत्ता	१	०	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. की सत्ता	०	१	०	०	१	१
न. का बंध ति. का उदय न. ति. की सत्ता	०	१	०	०	०	०
ति. का बंध ति. का उदय ति. ति. की सत्ता	०	१	०	०	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

श्रो. ज्ञा.	चक्षु. ज्ञा.	पंचे. ज्ञा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस. का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मनो. यो.	वच. यो.	काय. यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रो. क.	मान क.	माया क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	०	०	१	१	१	१
१	१	१	०	०	१	१	१	१
१	१	१	०	०	१	१	१	१
१	१	१	०	०	१	१	१	१
१	१	१	०	०	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

लो. क.	मति. ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अवधि.ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति. अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	१	१	१	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ मार्गणा	श्रु. अज्ञा.	विभंग.	सामा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
अबंध न. का उदय न. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
ति. का बंध न. का उदय न. ति. का सत्ता	१	१	०	०	०	०
म. का बंध न. का उदय न. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध न. का उदय न. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध न. का उदय न. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
न. का बंध ति. का उदय न. ति. का सत्ता	१	१	०	०	०	०
ति. का बंध ति. का उदय ति. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

यथा. चा.	देश वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल. ले.	भव्य	अभव्य	क्षा. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	०	०	०	१	१	१	१	१
१	०	०	०	१	१	०	०	०
१	०	०	०	१	१	१	१	०
१	०	०	०	१	१	०	१	१
१	०	०	०	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	०	०	०	१	१	०	०	०
१	१	१	१/०	१	१	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र.	सासा. स.	मिथ्या.	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
१	१	१	१	०	१	१	३५
०	१	१	१	०	१	०	२६
०	१	१	१	०	१	०	३२
१	१	१	१	०	१	०	३३
१	१	१	१	०	१	०	३४
१	१	१	१	१	१	१	५१
०	०	१	१	१	१	०	२८
०	१	१	१	१	१	०	४१/४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणाभेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ मार्गणा	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	एकेन्द्रिय जाति	द्वीन्द्रिय जाति
क्रम	१	२	३	४	५	६
म. का बंध ति. का उदय म. ति. की सत्ता	०	१	०	०	१	१
दे. का बंध ति. का उदय दे. ति. की सत्ता	०	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय न. ति. की सत्ता	०	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. ति की सत्ता	०	१	०	०	१	१
अबंध ति. का उदय ति. म. की सत्ता	०	१	०	०	१	१
अबंध ति. का उदय ति. दे. की सत्ता	०	१	०	०	०	०
अबंध म. का उदय म. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
न. का बंध म. का उदय न. म. की सत्ता	०	०	१	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में वायुकर्म के संवेध का प्रारूप

त्रीन्द्रिय जाति	चतुरिन्द्रिय जाति	पंचेन्द्रिय जाति	पृथ्वीकाय	अप्काय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति काय	त्रसकाय
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मनोयोग	वचनयोग	काययोग	पुरुषवेद	स्त्रीवेद	नपुंसकवेद	क्रोधकषाय	मानकषाय	माया कषाय
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

लोभ कषाय	मतिज्ञान	श्रुतज्ञान	अवधि ज्ञान	मनपर्यय ज्ञान	केवलज्ञान	मतिअज्ञान
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	०	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ मार्गणा	श्रुत अज्ञान	विभंग ज्ञान	सामायिक चारित्र	छेदोपस्थापनीय चा.	परिहार विशुद्धि चा.	सूक्ष्मसंपराय चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
म. का बंध ति. का उदय म. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
दे. का बंध ति. का उदय दे. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय न. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध ति. का उदय ति. दे. का सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध म. का उदय म. की सत्ता	१	१	१	१	१	१
न. का बंध म. का उदय न. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

यथाख्यात चारित्र	देशविरत	अविरत	चक्षुदर्शन	अचक्षु दर्शन	अवधि दर्शन	केवल दर्शन	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्मलेश्या	शुक्ल लेश्या	भव्य	अभव्य	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोप. सम्यक्त्व	औपशमिक सम्यक्त्व
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	०
१	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	०	०	०	१	१	०	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (२) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र सम्यक्त्व	सासा. सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारक	अनाहारक	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	१	१	१	१	१	०	३९
०	१	१	१	१	१	०	३९
१	१	१	१	१	१	०	४०
१	१	१	१	१	१	०	४९
१	१	१	१	१	१	०	४७
१	१	१	१	१	१	०	४१
१	१	१	१	१	१	१	५०
०	०	१	१	०	१	०	३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
ति. का बंध म. का उदय म. ति. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
म. का बंध म. का उदय म. म. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
दे. का बंध म. का उदय दे. म. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध म. का उदय म. न. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध म. का उदय म. ति. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध म. का उदय म. म. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध म. का उदय म. दे. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध दे. का उदय दे. की सत्ता	०	०	०	१	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	तेउ. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस. का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मनो. यो.	वच. यो.	काय. यो.	पुं. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रो. क.	मान क.	माया क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

लो. क.	मति ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अव. ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	१	०	१
१	१	१	१	०	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृति / मार्गणा	श्रु. अ.	विभंग	सा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म. चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
ति. का बंध म. का उदय ति. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
म. का बंध म. का उदय म. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
दे. का बंध म. का उदय दे. म. की सत्ता	१	१	१	१	१	०
अबंध म. का उदय म. न. की सत्ता	१	१	१	१	१	०
अबंध म. का उदय म. ति. की सत्ता	१	१	१	१	१	०
अबंध म. का उदय म. म. की सत्ता	१	१	१	१	१	०
अबंध म. का उदय म. दे. की सत्ता	१	१	१	१	१	०
अबंध दे. का उदय दे. की सत्ता	१	१	१	१	१	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

यथा. चा.	देश. वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	कृ. ले.	नी. ले.	का. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल ले.	भव्य.	अभव्य.	क्षायि. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	१/०	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (३) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र. स.	सास. स.	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	अहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणा में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	१	१	१	१	१	०	३२/२१
०	१	१	१	१	१	०	३२
०	१	१	१	०	१	०	४२
१	१	१	१	०	१	०	४४
१	१	१	१	१	१	०	४५
१	१	१	१	१	१	०	४५
१	१	१	१	०	१	०	४६
१	१	१	१	०	१	०	३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणाभेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ / मार्गणा	न. ग.	ति. ग.	म. ग.	दे. ग.	ए. जा.	द्वि. जा.
क्रम	१	२	३	४	५	६
ति. का बंध दे. का उदय ति. दे. की सत्ता	०	०	०	१	०	०
म. का बंध दे. का उदय म. दे. की सत्ता	०	०	०	१	०	०
अबंध दे. का उदय दे. ति. की सत्ता	०	०	०	१	०	०
अबंध दे. का उदय दे. म. की सत्ता	०	०	०	१	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	५	९	९	५	५	५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

त्री. जा.	चतु. जा.	पंचे. जा.	पृ. का.	अप्. का.	ते. का.	वा. का.	वन. का.	त्रस का.
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
५	५	२८	५	५	३	३	५	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मनो यो.	वचन यो.	काय. यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रोध क.	मान. क.	माया. क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
१	१	१	१	१	०	१	१	१
२८	२८	२८	२३	२३	२३	२८	२८	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

लो. क.	मति. ज्ञा.	श्रु. ज्ञा.	अवधि ज्ञा.	मन. ज्ञा.	के. ज्ञा.	मति. अ.
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
२८	२१	२१	२१	६	१	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ / मार्गणा	श्रु. अज्ञा.	विभंग.	सामा. चा.	छेदो. चा.	परि. चा.	सूक्ष्म चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
ति. का बंध दे. का उदय ति. दे. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
म. का बंध दे. का उदय म. दे. का सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध दे. का उदय दे. ति. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
अबंध दे. का उदय दे. म. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	२८	२८	६	६	६	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

यथा. चा.	देश वि.	अवि.	च. द.	अच. द.	अव. द.	के. द.	कृ. ले.	नी. ले.
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
०	०	१	१	१	१	०	१	१
२	१२	२८	२८	२८	२०	१	२८	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

का. ले.	ते. ले.	पद्म ले.	शुक्ल. ले.	भव्य	अभव्य	क्षा. स.	क्षायो. स.	औप. स.
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	१	१	०	१/०	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	०
१	१	१	१/०	१	१	०	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
२८	२१	२१	२१/१७	२८	२८	१५	२०	१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) (४) मार्गणा भेदों में आयुकर्म के संवेध का प्रारूप

मिश्र.	सासा. स.	मिथ्या.	संज्ञी	असंज्ञी	आहारी	अनाहारी	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	१	१	१	०	१	०	३०/२९
०	१	१	१	०	१	०	३६
१	१	१	१	०	१	०	३७/३६
०	१	१	१	०	१	०	३८
१६	२६	२८	२८	१४	२८	४	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ३१ : मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ / मार्गणा	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्यगति	देवगति	एकेन्द्रिय जाति	द्वीन्द्रिय जाति
क्रम	१	२	३	४	५	६
नीच का बंध नीच का उदय नीच की सत्ता	०	१	०	०	१	१
नीच का बंध नीच का उदय नी. उ. की सत्ता	१	१	१	१	१	१
नीच का बंध उच्च का उदय नी. उ. की सत्ता	०	०	१	१	०	०
उच्च का बंध नीच का उदय नी. उ. की सत्ता	१	१	१	१	१	१
उच्च का बंध उच्च का उदय नी. उ. की सत्ता	०	०	१	१	०	०
अबंध उच्च का उदय नी. उ. की सत्ता	०	०	१	०	०	०
अबंध उच्च का उदय उच्च की सत्ता	०	०	१	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	२	३	६	४	३	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) **मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप**

त्रीन्द्रिय जाति	चतुरिन्द्रिय जाति	पंचेन्द्रिय जाति	पृथ्वीकाय	अप्काय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति काय	त्रसकाय
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
०	०	१	०	०	०	०	०	१
३	३	७	३	३	२	२	३	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप

मनो. यो.	वच. यो.	काय. यो.	पु. वे.	स्त्री. वे.	नपुं. वे.	क्रो. क.	मान क.	माया क.
१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
०	०	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
५	५	६	५	५	५	५	५	५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) **मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप**

लोभ कषाय	मतिज्ञान	श्रुतज्ञान	अवधि ज्ञान	मनपर्याय ज्ञान	केवलज्ञान	मतिअज्ञान
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	०	०	०	०	०	१
१	१	१	१	०	०	१
१	१	१	१	१	०	१
०	१	१	१	१	१	०
०	०	०	०	०	१	०
५	३	३	३	२	२	५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप

संवेधगत प्रकृतियाँ / मार्गणा	श्रुत अज्ञान	विभंग ज्ञान	सामायिक चारित्र	छेदोपस्थापनीय चा.	परिहार विशुद्धि चा.	सूक्ष्मसंपराय चा.
क्रम	३२	३३	३४	३५	३६	३७
नीच का बंध नीच का उदय नीच की सत्ता	१	०	०	०	०	०
नीच का बंध नीच का उदय नीच उ. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
नीच का बंध उच्च का उदय नी. उ. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
उच्च का बंध नीच का उदय नी. उ. की सत्ता	१	१	०	०	०	०
उच्च का बंध उच्च का उदय नी. उ. की सत्ता	१	१	१	१	१	१
अबंध उच्च का उदय नी. उ. का सत्ता	०	०	०	०	०	०
अबंध उच्च का उदय उच्च की सत्ता	०	०	०	०	०	०
प्रत्येक मार्गणा में कुल संवेध	५	४	१	१	१	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) **मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप**

यथाख्यात चारित्र	देशविरत	अविरत	चक्षुदर्शन	अचक्षु दर्शन	अवधि दर्शन	केवल दर्शन	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या
३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६
०	०	१	०	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	०	१	१	१	०	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
०	१	१	१	१	१	०	१	१
१	०	०	१	१	१	१	०	०
१	०	०	०	०	०	१	०	०
२	२	५	५	६	३	२	५	५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप

कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्मलेश्या	शुक्ल लेश्या	भव्य	अभव्य	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायोप. सम्यक्त्व	औपशमिक सम्यक्त्व
४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
१	०	०	०	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	०	०	०
१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१
०	०	०	१	१	०	१	०	१
०	०	०	०	१	०	१	०	०
५	४	४	५	७	५	४	२	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्रमशः) **मार्गणा भेदों में गोत्रकर्म के संवेध का प्रारूप**

मिश्र सम्यक्त्व	सासा. सम्यक्त्व	मिथ्यात्व	संज्ञी	असंज्ञी	आहारक	अनाहारक	प्रत्येक संवेध कुल मार्गणाओं में
५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	
०	०	१	१	१	१	१	३४
०	१	१	१	१	१	१	४५
०	१	१	१	०	१	१	३३
१	१	१	१	१	१	१	५२
१	१	१	१	०	१	१	४७
०	०	०	१	०	१	१	२३
०	०	०	१	०	०	१	१०
२	४	५	७	३	६	७	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ३२

गाथाओं की अकारादि अनुक्रमणिका

अट्ठगसत्तगछक्कग	३५।७०	उच्चेणं बंधुदए	११०।२१७
अट्ठछलाहियवीसा	१०६।२१३	उज्जोव आयवाण	६६।१३५
अट्ठट्ठी बत्तीसा	११४।२२४	उज्जोवेनायावं	७०।१३५
अट्ठसु बावीसोच्चिय	१३६।३१४	उदएसु चउवीसा	१२५।२४४
अट्ठो नवो अजोगिस्स	७७।१४१	उदयप्पत्ताणुदओ	४८।६७
अडनव वीसिगवीसा	७३।१३८	उदयविगप्पा जे जे	३३।६६
अडवीस नरयजोग्गा	५७।१०८	उदयाणुवयोगेसु	११८।२२८
अणमिच्छ मीस सम्माण	३६।७१	एक्केक्के इगतीसे	१००।१८९
अणसम्म भय दुगंछाण	२५।५२	एगहियाय बंधा	४४।८६
अथिरासुभचउरंसं	४९।९८	एगिंदिएसु पढमदुगं	९६।१८४
अपज्जत्तगजाई	४७।९६	एवं जोगुवओगा	११७।२२७
अपज्जत्तगबंधं	५१।१०१	ओहम्मि मोहणीए	१११।२२०
अपमत्तसासणेसु	१२६।२४६	कम्मजोगि अणाहरगो	१५४।३४१
अपमत्तो सनियट्टि	६७।१३२	कम्मयविउव्विमीसे	१२३।२४१
अब्बंधे इगिसंतं	९।२१	किण्हाइतिगे अस्संजमे	१५३।३४१
असण्णि अपज्जत्ते	१३४।३१२	खवगे सुहुमंमि चउ	१४।३२
अंतमुहुत्ता उ ठिई	४६।९२	गइआणुपुव्विजाई	७९।१४८
आउम्मि अट्ठमोहेट्ठ	२।४	गुणभिहियं मणुएसु	१४१।३२५
आयावं एगिंदिय	५४।१०३	चउपण उदओ बंधेसु	१३।३२
आहारगमीसेसु	१२४।२४१	चउबंधगेवि बारस	२९।६४
इगवीसाई दो चउ	१३८।३१७	चउबंधे छस्संते	१०४।२०९
इगवीसाई मिच्छे	७५।१४०	चउबंधे नवसंते	१०३।२०९
इगिदुगचउएगुत्तर	२३।४९	चउवीसाई चउरो	७८।१४७
इगि विगले पण बंधा	१३०।३०८	चउवीसगुणा एए	३२।६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउवीसाइ गुणेज्जा	१२८।२४९
चत्तारि जा पमत्तो	१०५।२११
चोद्दसउ सहस्साइं	१२०।२३४
छव्वीसणाइ मिच्छे	३८।७४
जा जंमि चउव्वीसा	११२।२२०
जोगतिगेणं मिच्छे	१२७।२४६
तग्गइयाइदुवीसा	६१।१२०
तग्गयणुपुव्वि जाई	५६।११४
तसबायरपज्जत्तं	८५।१६९
तिगहीणा तेवन्नसया	११९।२३१
तिण्णिसया बावण्णा	११५।२२४
तित्थयराहारग दो	६३।१२७
तित्थयरे इगतीसा	८८।१७४
तित्थायव उज्जोयं	१५१।३३९
तिरि उदय छव्वीसाइ	८३।१५९
तिरि उदए नवभंगा	१३३।३१२
तिरितिग उज्जोवजुया	१४९।३३८
तिरिबंधामणुयाणं	६२।१२४
तेउ लेसाईया	१५५।३४१
तेरसमछट्ठएसु	१७।३९
तेरससुपंचसंता	१३९।३१७
तेरससु वेयणीयस्स	१३२।३११
तेवीसा पणुवीसा	५५।१०५
तेवीसूणा सत्तरस	११६।२२५
थावरतिरिगईदोदो	९५।१८३
दसगाई चउवीसा	२७।६१
दुगआइ दसंतुदया	२४।५०
दुगइगवीसा सत्तरस	१९।४[illegible]
दुभगाईणं उदए	७१।१३५
देवाणं सव्वेविहु	८४।१६५
देसविरयम्मि बारस	१०८।२१३
देसाइसु चरिमुदए	४२।८३
देसूण पुव्वकोडी	२२।४६
दो संतट्ठाणाइं	६।१८
दंसण सनिद्द दंसण	१२।३०
नर तिरि उदए नारय	१०७।२१३
नव छच्चउहा बज्झइ	१०।२६
नव पंचोदयसत्ता	९९।१८९
नवभेए भंगतियं	११।२८
नाणंतरायदंसण	१३१।३१०
नाणंतरायबंधा	७।१९
नामधुवोदय सूसर	९२।१७८
नारयसुराउ उदओ	८।२०
निच्चोदयणाइजुआ	८६।१६९
निद्दादुगे छवण्णा	१४४।३३०
पगईणं वच्चासो	६०।११४
पज्जतिगया दुभग	१५२।३४०
पढम चउक्कं सम्मा	९८।१८७
पढमं पढमगहीणं	९७।१८५
पणवीसाए देसे	७६।१४०
पत्तेउवघाय उराल दु	८७।१६९
परघाय खगइजुत्ता	८२।१५४
परघायसास आयव	८१।१५२
पिंडे तित्थगरूणे	९३।१८०
पंचाइ बंधगेसु	४३।८६
पंचादिमा उ मिच्छे	१०९।२१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुंवेय कोहमाइसु	१४५।३३०
पुंवेयं कोहाई नियट्टि	३७।७१
बारस चउरो ति दु	२८।६२
बारस दुगोदएहिं	३०।६४
बावीसं बंधंते	४०।७७
बंधइ उइण्णयं चिर	१८।३९
बंधइ ऊइण्णयं चिय	१६।३६
बंधइ छ सत्त अट्ठ	४।९
बंधइ तित्थनिमित्ता	५०।९९
बंधइ सुहुमं साहारणं	५३।१०३
बंधो आदुग दसमं	१५।३६
बंधोदय संताइं	१२९।२५१
बंधोदय संताई	१३५।३१४
बंधोदय संतेसुं	१०१।२०७
मणुएसु अचउवीसा	७४।१३९
मणुयगईए सव्वे	५६।१०६
मणुयदुगुच्चागोयं	१४७।३३५
मिच्छत्तं अणमीसं	३४।६९
मिच्छम्मि सासणाइसु	५८।१०९
मिच्छाइ अप्पमत्तं	३१।६६
मिच्छाबंधिगवीसो	२१।४३
मिच्छासासायणेसुं	१०२।२०८
मिच्छे नरएसु सयं	१४६।३३५
मिच्छे सगाइ चउरो	२६।४३
मीसदुगे कम्मइए	१२१।२४१
मीसो सम्मोराल	६६।१३२
मूलुत्तर पगईणं	१।३
मोहस्सुदए अट्ठवि	३।७
वज्झंति सत्त अट्ठय	१४०।३२४
विरए आहारुदओ	६८।१३२
विरयापमत्तएसुं	९१।१७८
वेई नवगुणतुल्ला	१४२।३२८
वेउव्वियमीसम्मि	१२२।२४१
सण्णिम्मि अट्ठसण्णिम्मि	१३७।३१७
सत्तट्ठ छ बंधेसु	५।१२
सत्तरसुत्तर मेगुत्तरं	१४३।३३०
सत्तरस बंधगे छोदयम्मि	४१।७९
सत्तसहस्सा सट्ठीए	११३।२२०
सत्तावीसे पल्ला	४५।९२
सम्ममीसाणं मिच्छो	३९।७६
सम्मे विउव्वि छक्कस्स	९०।१७६
सा आणुपुव्विहीणा	८०।१४९
सामण्णसुराजोग्गा	१४८।३३७
सासायणेऽपज्जत्था	६५।१३०
साहारणाइ मिच्छो	६४।१२९
साहारणाउ मिच्छे	८९।१७५
सुयदेवि पसायाओ	१५६।३४४
सुरदुग वेउव्विय	९४।१८०
सूसरउदओ विगलाण	७२।१३५
संघयणा संठाणा	१५०।३३८
हासरइ अरइसोगाण	२०।४३
हुंडोरालं धुववंधिणी	५२।१०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ : एक परिचय

कर्मसिद्धान्त एवं जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य **चन्द्रर्षि महत्तर** (विक्रम ९-१० शती) द्वारा रचित कर्मविषयक पाँच ग्रन्थों का सार संग्रह है—पंचसंग्रह।

इसमें योग, उपयोग, गुणस्थान, कर्मबन्ध, बन्धहेतु, उदय, सत्ता, बन्धनादि आठ करण एवं अन्य विषयों का प्रामाणिक विवेचन है जो दस खण्डों में पूर्ण है।

आचार्य मलयगिरि ने इस विशाल ग्रन्थ पर अठारह हजार श्लोक परिमाण विस्तृत टीका लिखी है।

वर्तमान में इसकी हिन्दी टीका अनुपलब्ध थी। **श्रमणसूर्य मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज** के सान्निध्य तथा मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी की संप्रेरणा से इस अत्यन्त महत्वपूर्ण, दुर्लभ, दुर्बोध ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाष्य प्रस्तुत किया है—जैनदर्शन के विद्वान श्री देवकुमार जैन ने।

यह विशाल ग्रन्थ क्रमशः दस भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन कर्म सिद्धान्त विषयक एक विस्मृतप्रायः महत्वपूर्ण निधि पाठकों के हाथों में पहुँच रही है, इसका एक ऐतिहासिक मूल्य है।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्राप्ति स्थान :—
श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org